# कानपुर विश्वविद्यालय, कानपुर (उ० प्र०)

से

चित्रकला विषय में पी-एच० डी० की उपाधि हेतु प्रस्तुत

# शोध - प्रबन्ध

: शीर्षक :

## "मारवाड़ के लघु चित्रों में संयोजन व्यवस्था"

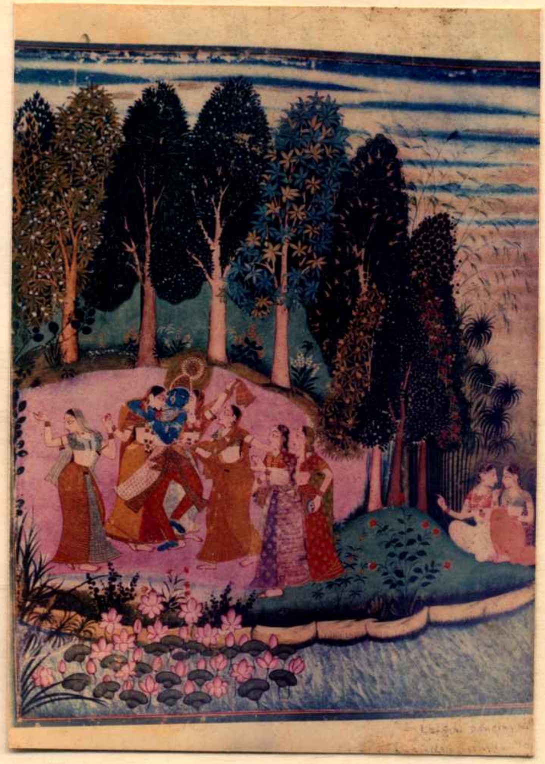


निर्देशक :

डा० राम कुमार विश्वकर्मा

डी० फिल०

चित्रकला विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद


1989


शोधार्थी :

राम किशोर शुक्ल

प्रवक्ता (चित्रकला)

एस० के० आई० सी०, इलाहाबाद

# कानपुर विश्वविद्यालय, कानपुर (उ० प्र०)

से

चित्रकला विषय में पी-एच० डी० की उपाधि हेतु प्रस्तुत

# शोध - प्रबन्ध

: शीर्षक :

## "मारवाड़ के लघु चित्रों में संयोजन व्यवस्था"

निर्देशक :
डा० राम कुमार विश्वकर्मा
डी० फिल०
चित्रकला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

**1989**

शोधार्थी :
राम किशोर शुक्ल
प्रवक्ता (चित्रकला)
एस० के० आई० सी०, इलाहाबाद

डा० रामकुमार विश्वकर्मा
डी॰फिल
विभागाध्यक्ष - चित्रकला विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद ।

दिनांक: 26-12-89

प्रमाणित किया जाता है कि श्री राम किशोर शुक्ल ने मेरे निर्देशन में कानपुर विश्वविद्यालय, कानपुर के अन्तर्गत पी-एच०डी० {चित्रकला} की उपाधि हेतु " मारवाड़ के लघु चित्रों में संयोजन व्यवस्था " विषय पर कार्य किया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पूर्णतया प्रमाणिक एवं मौलिक है। आपने विश्वविद्यालय के नियमानुकूल 200 दिन की उपस्थिति आदि नियमों का पूर्णतया पालन किया है।

{डा० रामकुमार विश्वकर्मा}
निर्देशक:

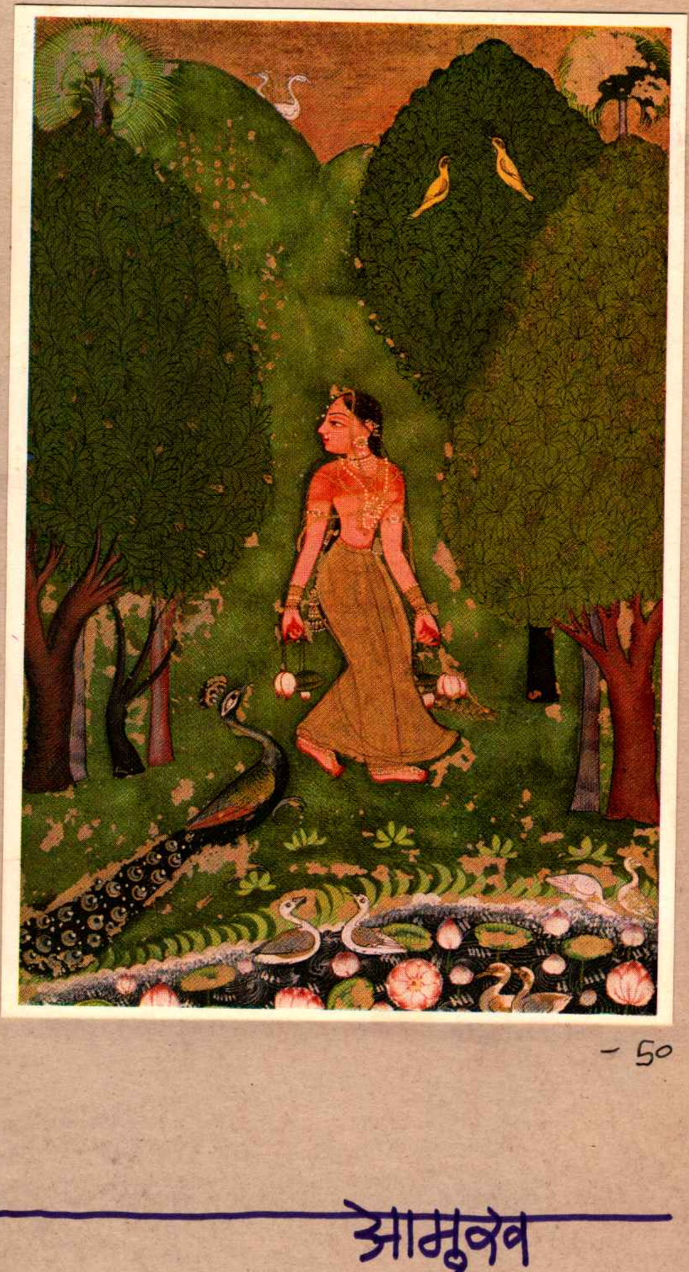

- 50

# आमुख

## आमुख

भारतीय चित्रकला के इतिहास में मध्यकालीन " मारवाड़ की लघु - चित्र शैलियों का महत्वपूर्ण स्थान है । मारवाड़ के अंतर्गत जोधपुर बीकानेर, नागोर, किशनगढ़ एवं जैसलमेर आदि लघु - चित्र शैलियों का विकास हुआ । मारवाड़ में लघु - चित्रों का अक्षय भण्डार है । इन रियासतों व रजवाड़ों के संरक्षण में पनपी विभिन्न लघु - चित्र शैलियों की बहुमूल्य कला - कृतियों ने मात्र भारतवर्ष का ही नहीं, अपितु, संपूर्ण विश्व का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया है । कला - पारखी एवं कलाविद् आये दिन लघु - चित्रों की निधि मारवाड़ में अमूल्य चित्र - कृतियों, उनकी शैलियों एवं उपशैलियों तथा उनकी चित्रण विशिष्टताओं की खोज, अनुशीलन एवं शोध कार्य में तल्लीन हैं ।

मारवाड़ क्षेत्र की चित्रकला ऐतिहासिक परिमाण एवं गुणातत्व के दृष्टिकोण से सम्माननीय है । मारवाड़ के लघु - चित्रों और चित्र-शैलियों का व्यापक प्रचार एवं प्रसार होने के बावजूद भी इन लघु -चित्र शैलियों की संयोजनात्मक व्यवस्था की जानकारी अत्यल्प है । मारवाड़ की इस पारम्परिक, अजस्र सांस्कृतिक कलाधारा का बहाव कहाँ से कहाँ तक है तथा इन शैलियों की अपनी अस्मिता क्या है, इस तथ्य का प्राय: अभाव सा ही दीखता है । अस्तु, प्रस्तुत शोध प्रबंध में "मारवाड़ के लघु - चित्रों में संयोजन व्यवस्था " के गवेषणात्मक एवं आलोचनात्मक अध्ययन की सामग्री प्रस्तुत करने का यत्किंचित प्रयास है ।

मध्यकालीन कला के इतिहास में राजस्थानी शैलियों का वर्गी - करण करते समय पश्चिमी भारत की सम्पूर्ण चित्रकला को मारवाड़ शैली

के नाम से अभिहित किया गया है, जिसका केन्द्र जोधपुर है। यद्यपि मारवाड़ एक सांस्कृतिक इकाई है, जो कालान्तर में राजनैतिक इकाई का स्वरूप ग्रहण कर गयी। इस मरु - प्रदेश का प्राचीन इतिहास अत्यन्त ही गौरवपूर्ण है, जहाँ पर मानव के प्राचीनतम् अधिवासों के चिन्ह से लेकर कुषाण, गुप्त, आमीर, प्रतिहार, चौहान, कछवाहा, और अंततः राठौड़ आदि वंश के शासकों के समय तक का सांस्कृतिक समृद्धि एवं कला के अभिनव स्वरूप का क्रम निरन्तर उपलब्ध होता है। यही नहीं मारवाड़ क्षेत्र के शूर - वीरों के त्याग और बलिदान से भारतवर्ष की गौरव - गाथा गुंजित हो उठी थी।

मारवाड़ के अनेकानेक राजवंशों ने यहाँ ललित - कलाओं के उन्नत मान - दण्ड स्थापित करने वाले कला - मनीषियों को प्रश्रय देकर ललित कला एवं कौशल के प्रमाण स्वरूप अनेकों भव्य स्मारक, जोधपुर, बीकानेर, नागौर, किशनगढ़, जैसलमेर, पाली, बाड़मेर और जालोर आदि स्थानों पर मुक्ता - माणिक्य की भाँति बिखरे पड़े हैं। मारवाड़ क्षेत्र के लिए यह प्रसिद्ध है कि यहाँ प्रत्येक दस मील पर बानी, पानी और पहनावा का रूप परिवर्तित हो जाता है। एतदर्थ चित्रकला का क्षेत्र भी इस वैविध्य से अछूता नहीं रहा। यही कारण है कि सांस्कृतिक एकता के होते हुए भी चित्र एवं मूर्तिकला में स्थानीय विशेषताओं से युक्त विभिन्नताएँ प्राप्त होती हैं।

मारवाड़ के लघु चित्रों का अध्ययन प्रारम्भ में एक ही शैली के अन्तर्गत किया जाता रहा, परन्तु इन चित्रों में जो स्थानीय स्वरूप परिलक्षित होता है, उसे हम संयोजनात्मक मूल्यों, रूपाकारों के गठन, रंग-योजना तथा तकनीकी पक्ष आदि आयामों के आधार पर इस क्षेत्र के

विभिन्न स्थानों, ठिकानों, रजवाड़ों व रियासतों में प्रचलित चित्र - शैलियों के मध्य विभाजक रेखांकन कर सकते हैं। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए " मारवाड़ के लघु - चित्रों में संयोजन व्यवस्था " के विस्तृत अध्ययन की परियोजना पर आधारित यह शोध - प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया है। इस परियोजना पर कार्य करने की प्रेरणा यहाँ के लघु -चित्रों को देखकर जागृत हुयी और 1985 - 86 में श्रेद्धेय डा० रामश्वर जी के प्रोत्साहन से अध्यक्ष - चित्रकला विभाग, कानपुर विश्वविद्यालय, कानपुर के प्रोत्साहन से राजस्थान परिभ्रमण के समय अनेकाने स्थानों, संग्रहों एवं संग्रहालयों में लघु चित्रों के अतिरिक्त भित्ति - चित्रों, फलक चित्रों, पुस्तक चित्रों आदि के चक्षुगत लाभ से तथा अनेकानेक कला - मर्मज्ञों एवम् कला मनीषियों के उदार विचार व सत्प्रेरणा से अत्यन्त ही बलवती हो उठी।

प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध को छ: अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में " मारवाड़ के लघु - चित्रण - परम्परा - उद्भव-विकास एवं विस्तार, भौगोलिक - ऐतिहासिक - सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तथा मारवाड़ क्षेत्र का कला में योगदान " का स - विस्तार विवेचन किया गया है। द्वितीय अध्याय में मारवाड़ शैलियों का विकास क्रम " पूर्ववर्ती शैलियों का अध्ययन, आदि का युक्ति- युक्त विश्लेषण किया गया है। जिससे लघु - चित्रों की शैलियों का स्वरूप का अभिज्ञान प्राप्त होता है। तृतीय अध्याय में " मारवाड़ शैलियों का वर्गीकरण, विशेषताएँ, प्रमुख चित्र एवं चित्रकार तथा महत्व " पर प्रकाश डाला गया है। चतुर्थ अध्याय में " संयोजन का अर्थ - वर्गीकरण तथा स्वरूप एवं विस्तार " का दिग्दर्शन सविस्तार कराया गया है। पंचम

अध्याय में " मारवाड़ लघु चित्रों का संयोजनात्मक अध्ययन उपलब्धियों एवं विशेषताओं का पुंजीभूत विश्लेषण किया गया है । जिसमें संयोजन के सिद्धान्तों के साथ, जोधपुर, बीकानेर, नागौर, किशनगढ़ और जैसलमेर के चित्रों का संयोजनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । षष्टम अध्याय में " मारवाड़ के लघु - चित्रों की संयोजन व्यवस्था " के माध्यम से शैलीगत विशिष्टताओं का अनुशीलन एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है । अन्त में उपसंहार के रूप में " मारवाड़ के लघु - चित्रों की संयोजनात्मक - व्यवस्था के अध्ययन की उपलब्धियों एवं उनके भविष्य के निर्धारित तथा उनकी कला - जगत को देन एवं निष्कर्षों को तात्विक विवेचन का एक लघु प्रयास किया गया है ।

चित्रों, रेखा चित्रों, मानचित्रों का यथास्थान समावेश किया गया है । सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं चित्र सूची तथा चित्रावली शोध - प्रबंध के अन्तिम सोपान पर अंकित है ।

आशा ही नहीं, अपितु विश्वास है कि यह शोध - ग्रन्थ " मारवाड़ के लघु - चित्रों में संयोजन व्यवस्था " पर प्रकाश डाल कर राजस्थानी चित्रकला के एक विशिष्ट सोपान को उजागर करने में समर्थ होगा ।

इस विषय पर अनेक विद्वानों के शोध पत्रों, पुस्तकों, शोध - ग्रन्थों, पत्रिकाओं, लेखों तथा उनकी अवधारणाओं का उपयोग अपनी धारणाओं को परिपुष्ट करने के प्रमाण - स्वरूप ग्रहण किया है, उनका मैं ऋणी एवं कृतज्ञ हूं ।

मैं अपने शोध निर्देशक - श्रद्धेय डा० रामकुमार विश्वकर्मा जी,

अध्यक्ष - चित्रकला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रति श्रद्धावनत हूँ, जिन्होंने इस परियोजना में विशेष रुचि लेकर अपनी अमूल्य सहयोग प्रदान किया । श्रद्धेय गुरुवर डा० रामकुँवर जी विभागाध्यक्ष, चित्रकला विभाग, डी०ए०वी० कालेज, कानपुर का हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने समय - समय पर अपना अमूल्य सुझाव एवं अनेक उलझे हुए प्रश्नों को खोजने में मेरा पथ - प्रदर्शन किया ।

मैं समस्त कला आचार्यों, कला मनीषियों, कला विदों, कला-समालोचकों एवं कला - प्रेमियों का अत्यन्त ही आभारी हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हमारी इस परियोजना में अपनी अमूल्य सहयोग प्रदान करके मेरे प्रयास को सफल दिशा प्रदान किए । इलाहाबाद विश्व-विद्यालय की लायब्रेरी एवं कानपुर विश्वविद्यालय की लायब्रेरी व बीकानेर संग्रहालय, राजकीय संग्रहालय, जयपुर, सरदार संग्रहालय, जोधपुर, राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली, राष्ट्रीय ललित कला अकादमी, नयी दिल्ली, राज्य ललित कला अकादमी, लखनऊ, भारत कला भवन, बनारस, प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम , बम्बई, इलाहाबाद संग्रहालय, इलाहाबाद के अति - रिक्त अनेक व्यक्तिगत संग्रहों कुँ० संग्राम सिंह संग्रह, जयपुर, जोधपुर महाराजा का संग्रह, लालजी संग्रह आदि के माध्यम से जो लघु चित्रों की प्रतियाँ एवं छाया चित्र प्राप्त करने में सहयोग प्राप्त हुआ, उनका मैं आभारी हूँ ।

मैं अपने महाविद्यालय के प्रबन्धक प्रोफेसर डी० डी० खन्ना जी एवं प्रोफेसर अमर नाथ जी कक्कड़, विभागाध्यक्ष - प्रतिरक्षा अध्ययन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद का हार्दिक आभार एवं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने सेवा काल में शोध - कार्य करने की अनुमति

प्रदान करके अनुगृहीत किया । श्रीमती [डा0] आशा सेठ, प्राचार्या - एस0 एस0 खन्ना महिला महाविद्यालय, इलाहाबाद एवं श्री राज देव उपाध्याय जी के सहयोग के लिए उपकृत हूँ । श्री एस0 डी0 त्रिवेदी, लखनऊ म्यूजियम, श्री एस0 बी0 अग्रवाल एवं श्री अजय जैतली - इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद का आभारी हूँ । टंकण एवं मुद्रण कार्य हेतु श्री ए0 बी0 द्विवेदी जी एवं श्री प्रह्लाद सिंह जी का आभारी हूँ, जिनका अमूल्य सहयोग मुझे प्राप्त हुआ ।

अन्त में अपने स्वर्गीय माता - पिता एवं अग्रज पं0 ब्रह्मा दीन जी शुक्ल व श्री राम रूप शुक्ल जी का आभारी हूँ, जिनके आशीर्वाद एवं प्रोत्साहन स्वरूप यह कार्य सफल हो सका ।

रामकिशोर शुक्ल

## विषय अनुक्रमणिका

## "मारवाड़ के लघु चित्रों में संयोजन-व्यवस्था"


पृष्ठ सं0

**अध्याय - 1 :** मारवाड़ क्षेत्र का भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक प्रारूप व उनका कला के विकास में योगदान ।

**अध्याय - 2 :** मारवाड़ चित्र शैलियों का विकासक्रम, प्रतिष्ठान, स्वरूप एवं विवेचना ।

**अध्याय -3 :** मारवाड़ चित्रशैलियों का वर्गीकरण, विशेषताएँ, प्रमुख चित्र, चित्रकार एवं महत्व ।

**अध्याय-4 :** संयोजन का अर्थ, स्वरूप -विस्तार व वर्गीकरण

**अध्याय -5:** मारवाड़ लघु चित्रों की संयोजनात्मक अध्ययन एवं उपलब्धियाँ आदि ।

**अध्याय -6:** उपसंहार -
मारवाड़ चित्र शैलियों की कला को देन व विशिष्टताएँ, आशाएँ तथा भविष्य ।

परिशिष्ट - मानचित्र,
रेखाचित्र,
छायाचित्र ।

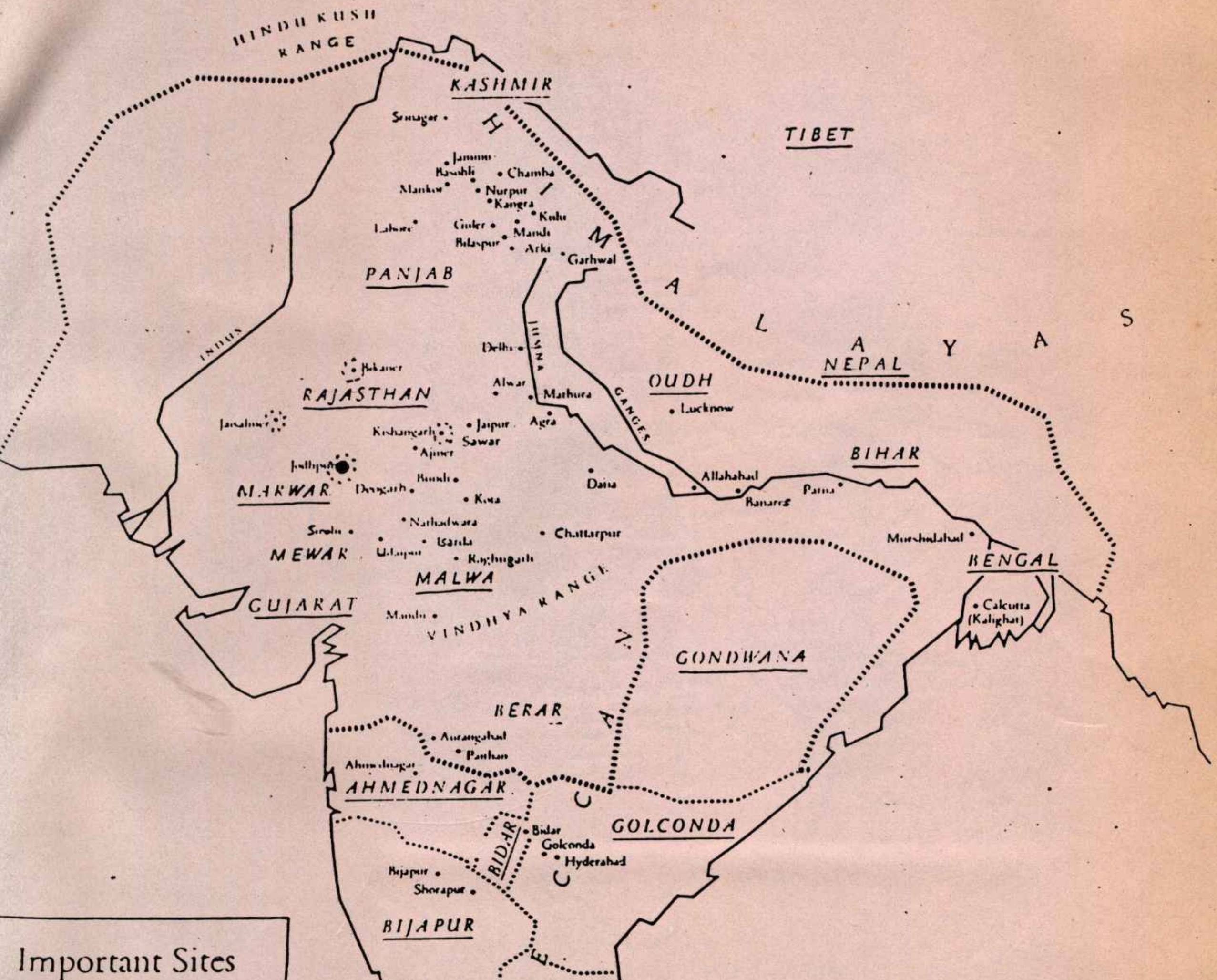


Important Sites
and Schools
of Indian Painting:
…th – 19th Centuries

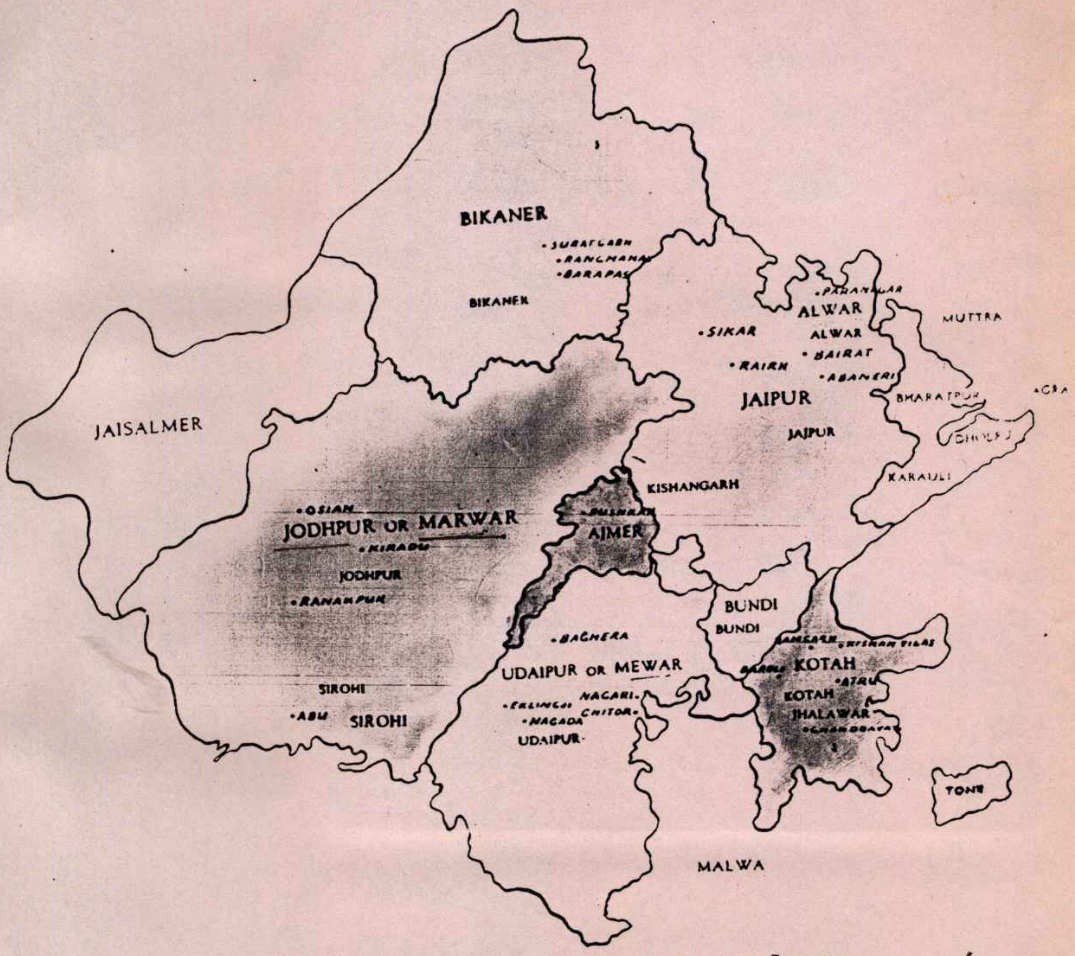


1. Map of Rajasthan Showing the Rajput States

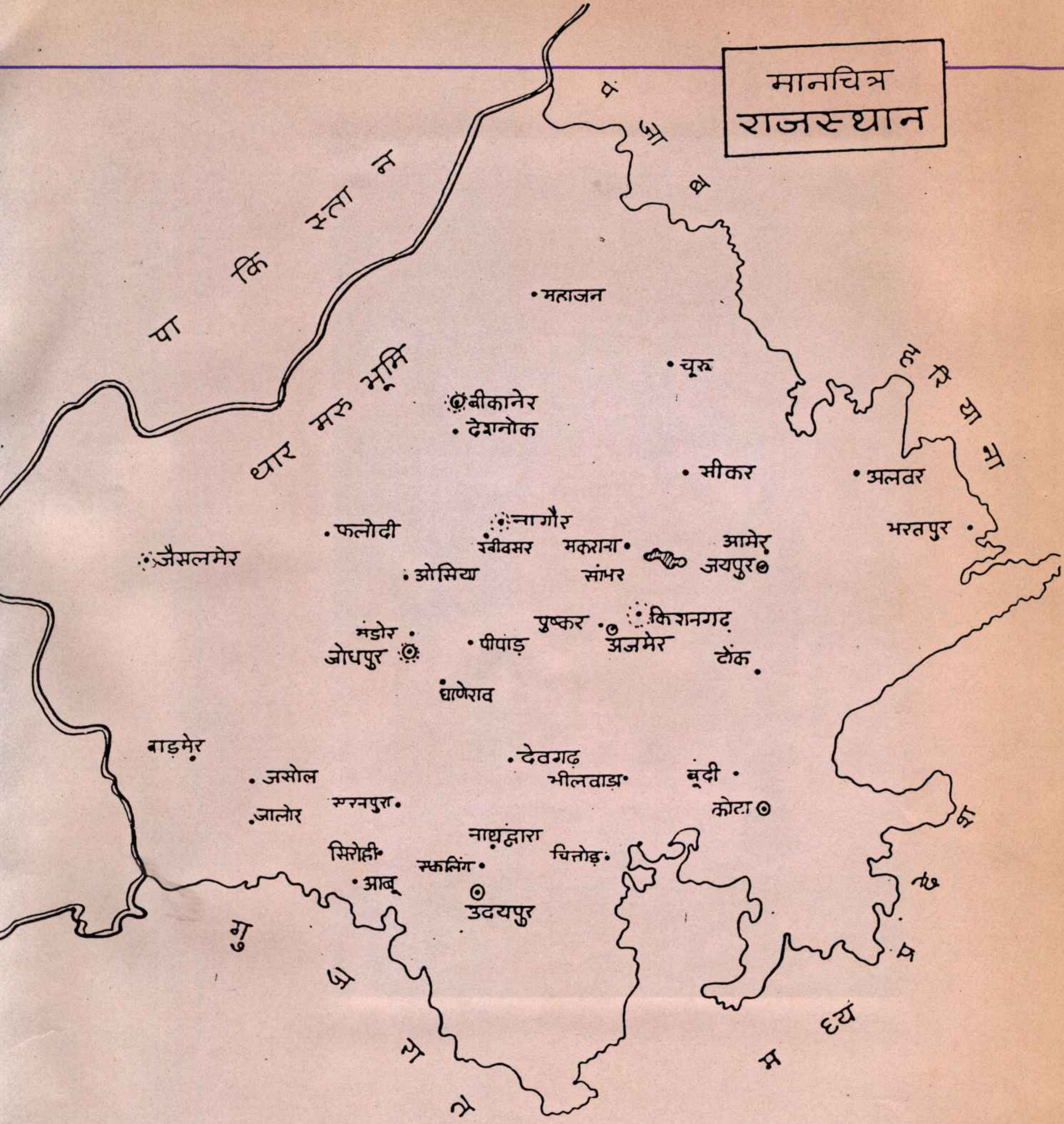

मानचित्र
राजस्थान
पाकिस्तान
पंजाब
हरियाणा
थार मरुभूमि
गुजरात
महाजन
चूरू
बीकानेर
देशनोक
सीकर
अलवर
नागौर
फलोदी
रवीवसर
मकराना
आमेर
भरतपुर
जैसलमेर
ओसिया
सांभर
जयपुर
पुष्कर
किशनगढ़
मंडोर
जोधपुर
पीपाड़
अजमेर
टोंक
घाणेराव
बाड़मेर
देवगढ़
जसोल
भीलवाड़ा
बूंदी
रनपुरा
जालोर
कोटा
नाथद्वारा
सिरोही
चित्तोड़
स्फलिंग
आबू
उदयपुर

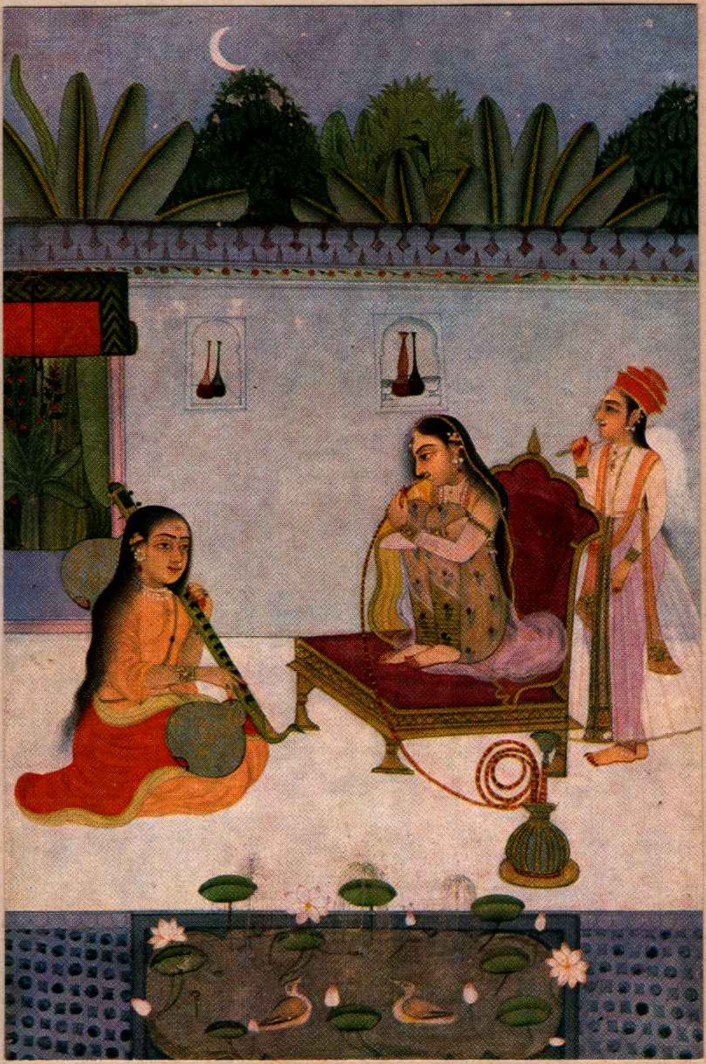

-59

# प्रथम अध्याय

**********************************************************

## प्रथम अध्याय

1. मारवाड़ के " लघु - चित्रण " - परम्परा, उदभ्व, विकास एवं विस्तार -

2. (क) मारवाड़ की भौगोलिक - स्थिति (परिदृश्य)
   (ख) मारवाड़ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
   (ग) मारवाड़ की सामाजिक एवं सांस्कृतिक विरासत

3. मारवाड़ क्षेत्र का कला में योगदान

**********************************************************

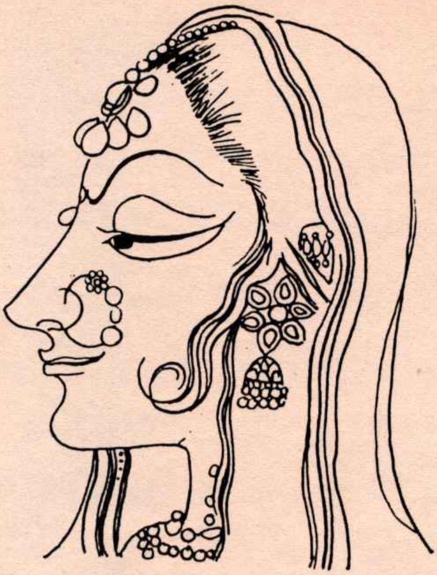

प्रथम अध्याय

**********************************************

सम्पूर्ण सृष्टि, ईश्वरीय कला है और " कला ईश्वरीय संगीत है ।" मनुष्य ने धरा पर जब नेत्रोन्मीलन किया तो कला उसकी भावाभिव्यक्ति के रूप में सहचरी बनकर प्रस्तुत हुयी । आदि - मानव अपनी सुकोमल भावनाओं एवं हर्ष तथा विषाद के क्षणों को प्रस्तर - शिलाओं पर उकेर दिया। यह क्रम प्रागैतिहासिक काल, मौर्य काल, सातवाहन व वाकाटक काल, प्रत्यैतिहासिक काल, ( अजन्ता -

बाघ - सिगरिया ( मध्यकालीन कला, - ( दक्खिनी शैली - मध्य भारतीय चित्र शैली ), राजस्थानी चित्रकला - ( मेवाड़ी, मारवाड़ी, हाड़ोती एवं ढूँढारी)[1] मुगल चित्रकला, पहाड़ी चित्रकला, पटना -कम्पनी शैली, बंगाल शैली एवं आधुनिक चित्रकला का परिवेश धारण करता हुआ मानव - विकास के इतिहास के साथ - साथ चलता आ रहा है ।

मारवाड़ के लघु - चित्रों की शैलीगत निरन्तरता ( कान्टीन्यूटी आफ स्टाइल ) का अध्ययन करने के पूर्व, प्राचीन काल से चली आ रही शैलीगत निरन्तरता पर विहंगम दृष्टिपात करना परमावश्यक है । फलकों पर आधारित अजन्ता शैली व पाल शैली एवं जैन शैली तथाकथित अपभ्रंश शैली में शैलीगत निरन्तरता में असामान्य विषमता है, तथापि यत्र - तत्र अनेकानेक रूपात्मक तत्व की एकरूपता भी दृष्टिगत होती है । मेरे विचार से यह शैलीगत निरन्तरता में वैविध्यता समय के परावर्तन एवं राजनैतिक उथल - पुथल तथा चित्रकारों का अपना दृष्टिकोण हो सकता है ।[2]

[3अ,ब] 16 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में दो समानान्तर नवीन शैलियों ( राजस्थानी एवं मुगल ) का आविर्भाव हुआ ।शैलियों के समा - नान्तर उद्भव एवं विस्तार ने भी अनेक समस्याओं को उत्पन्न किया । यह

---

1· डा० आर० ए० अग्रवाल - कला विलास, पृ० 90, 91

2· प्रो० सी० एस० मेहता, अप्रकाशित शोध ग्रंथ, पृ० 23

3· अ- डा० आर० ए० अग्रवाल, कला विलास, पृ० 844

ब- प्रो० एन० सी० मेहता, राजपूत पेन्टिंग, पृ० 9

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इन सम - सामयिक दानों चित्रशैलियों को एक - दूसरे को प्रभावित करने की क्षमता रही । राजस्थानी चित्र कला में जहाँ एक ओर विशुद्ध भारतीय चित्र शैली - परम्परा का परिवेश धारण किये हुए नवीन पथ पर अग्रसर हो रही थी, वहीं मुस्लिम आक्रान्ताओं और बादशाहों एवं सुल्तानों के साथ - साथ उनके बाह्य प्रभावों को भी आत्मसात् करने लगी ।[1]

स्मरणीय है कि भारतवर्ष एक विशाल भू - खण्ड पर अवस्थित है । अतएव इसकी भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक तथा साहित्यिक वैषम्यता दृष्टिगत होती है । एतदर्थ विभिन्न क्षेत्रों की कलाओं की शैलीगत निरन्तरता में वैविध्यता होना स्वाभाविक है । परन्तु जब हम भारतवर्ष के इस विशाल भू - क्षेत्र को काश्मीर से कन्याकुमारी तक एक मानते हैं तो देश का एक नरेश दूसरे राज - परिवार से मधुर सम्बन्ध भी बनाने में सचेष्ट रहे हैं । अतः सांस्कृतिक आदान - प्रदान के साथ - साथ कला की शैलीगत निरन्तरता भी अछूती नहीं रही । ऐसे वातावरण में एक क्षेत्रीय शैली, दूसरी क्षेत्रीय शैली को समृद्ध करने में सहायक हुयी ।[2]

उपरोक्त सांस्कृतिक आदान - प्रदान से राज्य पोषित कला, धर्म-पोषित कला एवं जन - पोषित कला § लोक कला § का परस्पर अपनी

---

1· डा० गोपीनाथ शर्मा, सोशल लाइफ इन मेडिवल राजस्थान, पृ06

2· गौरीशंकर ओझा, राजपूताना, पृ० - 12

विशिष्टताओं का आदान - प्रदान एवं प्रभाव - ग्राह्यता एक मानवीय-चेतना की प्रक्रिया है । चूंकि कलाकार एक अत्यन्त ही संवेदन - शील प्राणी होता है, एतदर्थ वह अपने हृदय के स्पन्दन को सामाजिक गति - विधियों से बचा नहीं सकता । अतएव शैलीगत - निरन्तरता में वैषम्यता समीचीन है ।[1]

मारवाड़ के लघु - चित्रों का शैलीगत उद्भव एवं विकास की धारा को पूर्णतः हृदयंगम करने के पूर्व, राजस्थानी शैली के उद्भव का विहंगावलोकन करना आवश्यक है । " राजस्थानी - शैली का उद्भव अनेक पूर्ववर्ती कलात्मक परिवर्तनों पर निर्भर रहा है । भारतीय एवं पाश्चात्य वांग्मय के अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हमारी प्राचीन कला - परम्परा अत्यन्त ही समृद्धशालिनी रही होगी । आक्रान्ताओं एवं समय के थपेड़ों ने कला - संस्कृति की श्रृंखला को विशृंखलित कर दिया।[2]

उत्खनन विभाग के पुरातत्वीय स्रोतों से राजस्थान के प्रागैति - हासिक एवं प्रत्यैतिहासिक संस्कृति के प्रमाण मिलते हैं ।[3] भग्नावशेषों एवं छिन्न - मूर्तियों के आधार पर राजस्थानी चित्र - परम्परा को प्राचीन कला - परम्परा से जोड़ने का कोई समृद्ध प्रमाण नहीं प्राप्त होता।

---

1. प्रो० सी० एल० मेहता - अप्रकाशित शोध ग्रंथ, पृ० 10
2. इम्पीरियल गजेटियर - राजस्थान, पृ० 1
3. हर मोहन गोयल - आर्ट एण्ड आर्कीटेक्चर आफ बीकानेर स्टेट, पृष्ठ - 7

जब दक्षिणांचल में अजन्ता शैली अपने यौवन की अंगड़ाई ले रही थी तो राजस्थान की कला का स्वरूप चित्रावशेषों के अभाव में निर्धारित नहीं किया जा सकता।

मध्यकालीन चित्रों के आधार पर राजस्थानी चित्रकला के उद्भव एवं विकास की प्रक्रिया पर विशेष प्रकाश पड़ता है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि अजन्ता शैली ( चित्र संख्या – 50 ) का प्रभाव राजस्थानी शैली को आच्छादित नहीं किया। अजन्ता शैली में प्रयुक्त शिल्प-विधान के चले आ रहे कलातत्व राजस्थानी शैली में समाविष्ट हैं।

मारवाड़ की चित्र – संस्कृति का जन्म ऐसे सांस्कृतिक संक्रान्ति के समय में होता है, जबकि हिन्दू नरेशों एवम् मुसलमान सुल्तानों एवम् बादशाहों के राज – दरबारों में नर्तकियों के नूपुरों की मधुर – ध्वनि, कवियों एवं संगीताचार्यों की कविताओं एवं संगीताचार्यों की कविताओं एवं संगीतों के आलाप से प्रतिध्वनित हो रहे हैं। ( चित्र सं॰ 10 ) सामाजिक चेतना को जाग्रत करने वाले कवियों, सन्तों – सफियों एवम् धर्माचार्यों ने भक्ति की ऐसी रसधार बहाई, जिससे मारवाड़ की ही नहीं, वरन् समस्त राजस्थानी चित्र – शैली प्रभावित हुयी।[2]

यही कारण है कि मारवाड़ के चित्रों में राग – रागिनियों,

---

1· इम्पीरियल गजेटियर – राजस्थान, पृ0 453

2· कुँवर संग्राम सिंह, वार्षिकी, संख्या 63, पृ0 21

कृष्ण - लीलाओं, प्रेमाख्यानों, दरबारी दृश्य, देव - दासियों की संगीत - परम्परा का अभिनव स्वरूप एवम् शिकार, रंग महलों, उद्यानों, समारोहों, युद्धों तथा राजा - महाराजाओं, साधु - महात्माओं एवम् धर्माचार्यों के छवि - चित्र § पोर्ट्रेट्स § बनाये जाने लगे ।

16 वीं शताब्दी के तिब्बती - इतिहास कार लामा तारानाथ ने 6 वीं शती में मरु प्रदेश में " श्रृंगधर " नामक एक चितेरे का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार, अजन्ता - गुजरात चित्रण - परम्परा के अंतर्गत पाली, जालोर और नाडोल जैसे स्थलों पर चित्रण कार्य हुआ है । पुस्तक प्रकाशन, जोधपुर तथा जैसलमेर - भण्डार में कल्प - सूत्र व अन्य ग्रन्थ हैं जो मारवाड़ प्रदेश में जैन चित्र कला § चित्र संख्या - 56 § के प्रभाव को सिद्ध करते हैं ।[1] कुछ भी हो मौलिक चित्र ही मारवाड़ की शैलीगत निरन्तरता की विशिष्टता को प्रतिपादित करने में समर्थ हैं, जिनका विशद विवेचन द्वितीय अध्याय में किया गया है ।[2]

" मारवाड़ के लघु - चित्रों में संयोजन व्यवस्था " के क्रमिक विकास का अध्ययन करने के पूर्व, तत्कालीन विकसित राजस्थानी लघु - चित्रों की उप - शैलियों पर दृष्टिपात करना आवश्यक प्रतीत होता है । भौगोलिक एवम् शैलीगत विशेषताओं को दृष्टिगत रखते हुए कुछ विद्वानों ने

---

1• डा० आर० ए० अग्रवाल - कला विलास, पृ० 98

2• इम्पीरियल गजेटियर, राजस्थान, पृ० 453

राजस्थानी चित्र - शैलियों को निम्न चार भागों में विभक्त किया है।[1]

1) **मेवाड़ चित्र शैली :**

उदयपुर, नाथ द्वारा, प्रतापगढ़ एवं शाकण्ड आदि ।

2) **मारवाड़ चित्रशैली :**

जैसलमेर, जोधपुर, बीकानेर, नागौर किशनगढ़ आदि ।

3) **हाड़ोती शैली :**

बूँदी, कोटा, झालवाड़ा आदि ।

4) **ढूंढारी चित्र शैली :**

जयपुर, अलवर, उड़ियारा नगर आदि ।[2]

**16 वीं शती की राजस्थानी चित्र - परम्परा :**

राजस्थान की चित्रण - प्रक्रिया में एक ऐसी परम्परा का आविर्भाव होता है, जिसे " रूप निखार " के नाम से अभिहित किया जा सकता

---

1• डा० आर० ए० अग्रवाल - कला विलास, पृ० 90

2• जगदीश सिंह गहलोत - राजपूताने का इतिहास, भाग-3, पृ० 226

है । तथाकथित जैन एवं अपभ्रंश शैलियाँ अकड़न - जकड़न, लयात्मक - सौष्ठव की ओर उन्मुख हुयी दर्शित होती है । जिन चित्रों में लालित्य एवं सौन्दर्य की अभिवृद्धि हुयी । शैलीगत संक्रमण की यह झलकती हो चली । चौर पंचाशिका, गीत - गोविन्द (स्व0 मा0 च0 मेहता) बसंत-विलास के चित्रों में माधुर्य भाव की बहुलता, अलंकारिकता, प्रकृति -चित्रण (वन वैभव) दृष्टिगत होता है ।(चित्र संख्या - मु. पृ.) गीत - गोविन्द (प्रिन्स आफ वेल्स) में भी गीतमय वर्ण - विधान एवं प्राकृतिक सौन्दर्य की झलक दिखायी देती है । भागवत (कला भवन - बनारस) के चित्रों में गतिमयता है । गोरी की नृत्य - मुद्राओं में उल्लास मय वातावरण मूर्त हो गया है । चित्रों में अर्थ सार के नवीन पक्षों की प्रतिष्ठा से चित्रों की संरचना में अद्भुत परिवर्तन आये हैं । संगीत (राग माला चित्र) कृष्ण भक्ति - विषयक परिवेश (कृष्ण - लीलाएँ) एवं रीति - काव्य धारा (नायक - नायिका भेद, बारह मासा) आदि ने राजस्थानी चित्र शैली (चित्र संख्या -10, 11, 19) में नये प्राण फूंक दिये । इन विषयों ने चित्रकारों की लालित्य - भावना, संवेदना एवम् कल्पना को पूर्णतया झकझोर दिया ।[1]

तत्कालीन चितेरों ने दृश्य - जगत को अनदेखा करके सौंदर्यात्मकता के सृजन हेतु, काल्पनिक बिम्ब - विधान का प्रश्रय लेकर चित्रण किया । यही कारण है कि राजस्थानी - चित्रकला के अन्तर्गत आने वाली मारवाड़

---

1. प्रो0 सी0 एल0 मेहता - शोध प्रबन्ध (अप्रकाशित), पृ0 47

चित्रशैली के चित्रों में अद्वितीय एवं अप्रतिम सौन्दर्य की सृष्टि हुई है ।

17 वीं शती में राजस्थानी चित्र शैली के अन्तर्गत जिन उपर्युक्त उप - शैलियों का आविर्भाव हुआ, उसका मूल कारण था - अनेक राजस्थानी राजाओं की रियासतों, राज दरबारों एवं ठिकानों पर चित्रण कार्य का शुभारम्भ ‖ चित्र संख्या 51 ‖ मुगल चित्र - शैली का प्रभाव मुख्यतया बूंदी, जयपुर एवं बीकानेर उप - शैलियों को प्रभावित किया ।[1]

1· <u>मेवाड़ की लघु - चित्रण परम्परा -</u>

राजस्थानी चित्रकला का प्रमुख केन्द्र मेवाड़ ही स्वीकारा जाता है । इस शैली की अपनी निजी विशेषतायें रही हैं । मेवाड़ - केशरी महाराणा प्रताप ने जैसे मुगलों के आधिपत्य को नहीं स्वीकारा, वैसे ही मेवाड़ के चित्रकारों ने मेवाड़ी - चित्र शैली को मुगलों एवम् वाह्य चित्र-शैलियों के प्रभाव से मुक्त रखने का यथेष्ठ प्रयास किया ‖ चित्र सं0 -1 ‖

मेवाड़ की चित्रकला का क्रमिक विकास कल्प सूत्र, 1418 ई0, गीत-गोविन्द - 1455 ई0, चौर पंचाशिका - 1540 ई0, ढोलामारु -1592 ई0, राग माला - 1605 ई0 आदि ग्रन्थों से स्पष्ट होता है । इसी क्रम में महाराणा जगत सिंह के काल में, साहब दीन एवं मनोहर द्वारा

---

1· वीर - विनोद, भाग-2, पृ0 358

चित्रित रागमाला, गीत - गोविन्द, आर्ष रामायण आदि राजस्थानी चित्र शैली के उत्कर्ष को प्रतिपादित करती है।[1] [चित्र सं० - 53]

रामसिंह ने महाभारत, गीत - गोविन्द, भ्रमर - गीत एवं सूकर क्षेत्र - माहात्म्य आदि चित्रित करवाये। महाराणा जय सिंह [1680-98 ई० ] ने भी रामायण, महाभारत एवं भागवत पर अर्थ चित्र बनवाये गोवरधन धारण इसी चित्र - शृंखला का अप्रतिम चित्र है, जो कि "भारत कला भवन " में उपलब्ध है।

जगन्नाथ चितेरा ने " बिहारी सतसई " व सुन्दर शृंगार " जैसे चित्रित ग्रन्थ तैयार किये। मेवाड़ - चित्र शैली का चर्मोत्कर्ष महाराणा जगत सिंह का राज्य - काल था। इस समय के चित्र अत्यन्त ही उत्कृष्ट हैं। चित्रों में अदम्य परिपक्वता झलकती है।[2]

[3] राजमहलों के आन्तरिक - जीवन से लेकर युद्ध - आखेट, नृत्य, संगीत, नौका - विहार आदि चित्रित किये हैं। [ चित्र संख्या 44 ] पशु - पक्षी, अलंकरण वास्तु, बगीचे, उपवन, सरोवर, नदी, कूप; हंस, कमल पल्लवित - पुष्पित वृक्ष, प्राचीरों - महलों आदि का अंकन अत्यन्त ही सफलता से किया गया है। " मुल्ला दो प्याजा ", " पृथ्वी राज -

---

1. भारतीय विद्या - 1945 का विशेषांक, पृ० 19
2. प्रो० सी० एस० मेहता, शोध प्रबन्ध [अप्रकाशित]; पृ० 48
3. कलानिधि, वर्ष-2, अंक-1, पृ० 27

रासो ", ‖ मालती माधव ", " गजेन्द्र मोक्ष", आदि चित्रावलियाँ इस शैली की वैविध्यता को दर्शाती हैं ।

मेवाड़ी चित्रों में प्रथम रंगत एवं चटकीले वर्ण - विधानों में सुव्यवस्थित झलकता है । ‖ चित्र संख्या - 19 ‖ चित्रतल घटना क्रमानुसार विभाजित है । आकार समूह चित्र तल के चारो ओर फैले हैं । क्षितिज - रेखा का अभाव इसकी विशेषता है । परिधानों पर मुगल - प्रभाव दिखायी देता है । पृष्ठिका सपाट, गहरे - चटकीले रंग की होती है । जिस पर आकारों को महत्व देकर अलंकृत किया गया है । प्राकृतिक चित्रण को व्यवस्थान ‖ पेटर्न ‖ के रूप में सजाकर वातावरण को सजीव उल्लास एवं स्फूर्ति से परिपूर्ण किया गया है ।

2‖ <u>मारवाड़ की लघु - चित्रण परम्परा :</u>

[1]मारवाड़ी चित्र संस्कृति के अन्तर्गत जोधपुर, बीकानेर, नागोर, किशनगढ़ तथा मण्डोर आते हैं । जोधपुर को 1455 ई0 में राठोड़ राव जोधा जी ने बसाया था । मूर्तिकला के साथ - साथ चित्रकला की विशेष उन्नति हुयी । 7 वीं शती में मरु - प्रदेश में चित्रण - परम्परा का उल्लेख तिब्बती - इतिहास कार लामा तारा नाथ ने किया । और " श्रृंगधर नामक चित्रकार का उल्लेख किया गया है ।जिसका प्रमाण

---

1· डा0 लोकेश चन्द्र शर्मा - भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास, पृ0 68-69

ऐतिहासिक है ।[1]

महाराजा गज सिंह - 1610 ई0 30 ई0 के काल में ढोला मारु, एवं भागवत के चित्र में आरम्भिक मेवाड़ शैली से मिलते हैं । चित्रों में वर्ण - विधान सरल, भंगिमा जड़वत् एवं रेखाओं में भारीपन है । कृष्ण चरित्र पर सैकड़ों चित्र बने । इन चित्रों पर मुगल प्रभाव स्पष्ट झलकता है । राग माला चित्रों में लोक - शैली का प्रभाव है ।

[2]जोधपुर व नागौर में सुन्दर चित्रों का निर्माण हुआ । इन चित्रों में पीले, नीले, हरे चमकीले रंगों की सुन्दर छटा है । ( चित्र संख्या ) जोधपुर शैली के सौन्दर्य का यह कारण था कि इन चित्रों के आकार बड़े हैं, जिसमें चित्रकारों को संयोजनों के विस्तारण में बड़ी सहायता मिली है । जोधपुर शैली भारतीय - शास्त्रीय चित्र परम्परा की स्मृति प्रस्तुत करती है ।

किशनगढ़ की चित्रकला मारवाड़ शैली का एक महत्वपूर्ण अंग है । 18 वीं शती में यहाँ एवं रागात्मक चित्र - शैली का विकास हुआ । राधा - कृष्ण से सम्बन्धित अत्यन्त कोमल एवं अलं - कारिक शैली का प्रचलन हुआ ( चित्र संख्या - - 6 ), जिसमें कांगड़ा

---

1· वाचस्पति गैरोला - भारतीय चित्रकला, पृ0 169
2· ए0 पी0 व्यास - राजस्थानी चित्रकला, ( रा0 शोध संस्थान) जोधपुर, पृ0 15

शैली की कमनीयता एवं लालित्य परिलक्षित होता है । नारी -सौंदर्य एवं प्रकृति - सौन्दर्य रीति - कालीन काव्य की भाँति चित्रकारों ने विशेष बल दिया ।

बीकानेर कलम का अपना निजी वर्चस्व है । [ चित्र संख्या - 3 ] कौशल में अधिक परिष्कार एवं सिद्धहस्तता बीकानेरी शैली को चित्र - मंच के उच्च आसन पर अधिष्ठित करती है । इस शैली में चटक रंग और अलंकारिकता का अभाव परिलक्षित होता है ।

अली रजा के पुत्र हसन रजा रुकनुद्दीन श्रेष्ठ चित्रकार थे । नारी चित्रण में असीम सौन्दर्य एवं कोमलता उड़ेल दिया । बीकानेर शैली का प्रकृति चित्रण अनूठा है । फूलों से लदी झाड़ियाँ, आकाश में काले मेघ, सर्पाकार विद्युत छटा अग्र भूमि पर सरोवर एवं कमल, हंस तथा पेड़ों पर बसेरा मयूर आदि का सजीव चित्रण हुआ है । चित्रों में दरबारी - वैभव की पृष्ठभूमि राजसी जीवन की झाँकी प्रस्तुत करती है ।

3] <u>हाड़ौती की लघु चित्रण परम्परा :</u>

बूँदी राज्य की स्थापना हाड़ा देवा ने की । राजा रत्नसिंह के ही समय को बूँदी शैली का उद्भव माना जाता है । आरम्भिक बूँदी शैली में राग मालाओं के सुन्दर चित्र प्राप्त होते हैं । " दीपक राग "

---

1. कला निधि, वर्ष-2, अंक-1, पृष्ठ 30

§ भारत कला भवन बनारस § और " रागिनी भैरवी " § इलाहाबाद संग्रहालय § में बहुत प्रसिद्ध है ।

[1]बूँदी शैली पर मेवाड़ शैली एवं मुगल शैली के प्रभाव परिलक्षित होते हैं । कहीं - कहीं दखिनी शैली की तरह भी प्रभाव परिलक्षित होता है । परिधानों पर मेवाड़ की छाप है । महलों के सम्मुख जलाशयों में मीन, हंस, कमल का चित्र दखिनी शैली की तरह प्रतीत होता है । खंभों पर आलंकारिक - चित्रण, कोमल एवं बारीक वर्ण - व्यवस्था मुगल - शैली की तरह है । नारी आकृतियाँ छोटी, चेहरे पर गोलाई लाने के लिए छाया - प्रकाश का प्रयोग, उभार दिखाने के लिए गहरे रंगों का प्रयोग हुआ है ।

आकृतियाँ 17 वीं शती में लम्बोतर हुयी हैं । अलंकृत पायजामे, पारदर्शी जामा के नीचे चित्रित किया गया है, जो पूर्णतया मृदुल - प्रभाव का द्योतक है । गहरे रंग की हरीतिमा में से फुलझड़ी सी पुष्पावलियाँ निकली हुयी हैं । दूसरी तरफ पहाड़ियों के बीच में भवन, मन्दिर एवं दुर्ग चित्र किए गये हैं । वृक्षों के समूह लालिमा लिए हुए मेघाच्छादित आकाश, प्रतीक्षारत नायिका झरोखों से झाँकती हुयी चित्रित है। नायिका के चेहरे गोल, उन्नत ललाट, छोटी नासिका, पतले लाल ओंठ अंकित हैं । पक्षियों में मुख्य - सारिका, मयूर और तारों से भरे आकाश में मीनारें

---

1. जगदीश सिंह गहलोत - राजपूताने का इतिहास, पृ0 41

एवं आवर्तमय जलाशय बूँदी शैली की पहचान कराने में समर्थ होते हैं ।

वर्ण - योजना शीतल एवं संगतिपूर्ण है । रेखांकन एवं वर्णीय उन्मीलन में बारीकी दिखायी देती है । वृक्षों एवं पौधों से फूलों का प्रस्फुटन कम दृष्टिगत होता है ।[1]

4§ <u>ढूँढारी की लघु - चित्रण परम्परा :</u>

देश - विदेश में सुप्रसिद्ध गुलाबी शहर जयपुर अपने नगर - नियोजन, वास्तु - सौन्दर्य, चित्रों की कमनीयता, शिल्प कार्य एवम् नक्काशी, खिलौने, जयपुरी जूतियाँ आदि के लिए सुविख्यात हैं ।

जयपुर के शासक " कछवाहा " वंश के राजपूत थे ।[2] राजा बिहारी मल ने बाबर से सन्धि कर ली और उनके पुत्र भगवान दास ने अपनी पुत्री की शादी करके अपने पुत्र मान सिंह को अकबर की सेना का महत्वपूर्ण अधिकारी नियुक्त कराया ।§ चित्र सं० —— § और बीकानेर बूँदी, जोधपुर आदि राज्यों को मुगलों के आधिपत्य में जाने से बचाया । जयसिंह के समय में जयपुर शैली पर मुगल प्रभाव अधिक रहा ।

---

1• प्रो० सी० एस० मेहता - शोध प्रबन्ध §अप्रकाशित§, पृ० 51

2• डा० आर० ए० अग्रवाल - कला विलास, पृ० 114

3• डा० राम कंवर - अलवर चित्र शैली § अप्रकाशित शोध - प्रबन्ध § पृ० 205

मुगलों की शानो - शौकत, विलासिता, वैभव व अदब -कायदा अनेकों तत्कालीन राजाओं के लिए आदर्श बना । चित्रों एवं चित्रकारों का भी आदान - प्रदान हुआ । 1728 ई0 में सवाई जय सिंह ने जयपुर को बसाया था ।

1591 - 94 में निर्मित हुयी " रसिक प्रिया " में स्वाभाविक - मुद्रायें, प्रवाह एवं समृद्ध संयोजन है । परिधानों, वास्तु - चित्रण एवम् दरबारी धरातलों पर मुगल अलंकरण स्पष्ट झलकता है । § चित्र संख्या - § जयपुर शैली में छरहरे बदन वाली नारियां अंकित हैं । आँखों में रसिकता एवं कमनीयता है । आकाश में चक्राकार मेघ - माला जयपुर चित्रों की विशेष पहचान कराती है । आकाश में सारस पक्षी अंकित है। श्वेत रंगीय भवनों, गुम्बदों, बुर्जों के अंकन से संयोजन में विविधता आ जाती है । भवनों के आलों में जहाँगीरी सुरापात्र अंकित है । वर्णविधान में मुगल सूफियानापन भी आ गया है ।

उपर्युक्त विविध कला - शैलियों का एक पुंजीभूत स्वरूप "राजस्थानी कला है । राजस्थानी शैली जहाँ एक ओर तथाकथित भारत की पश्चिमी शैली में रूपात्मक तत्वों के नवीनीकरण व परिमार्जन की ओर विकसित होती है, वहीं उसमें शास्त्रीय लय से प्रेरित भावाभिव्यंजना भी पुनर्जीवित होती जाती है । रूप एवं संयोजन शास्त्रीय - परम्परा से दूर होकर विविधता एवं रसात्मकता की ओर उन्मुख होते हैं ।

भारतीय चित्रकला, जाह्नवी की अजस्र धारा प्रागैतिहासिक - कालीन प्रस्तर शिलाओं से टकराती हुयी अजन्ता, बाघ, एलीफेन्टा,

जोगीमारा, सिगिरिया आदि गुफाओं में मंडराती हुयी राजस्थान के शुष्क प्रदेश को आप्लावित करती हुयी, मुगल राज्य काल की गोद को भरती हुयी, पहाड़ी चित्रकला के आंचल में इठलाती हुयी पटना एवम् कम्पनी शैली के कूल में सिमिटती हुयी, बंगाल शैली को सिंचित करती हुयी, आज अबाध गति से जन - मानस को अपने हिलोरों से आह्लादित कर रही है।[1]

मध्यकालीन राजस्थानी चित्रकला भारतीय चित्रकला के प्रांगण में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसमें मारवाड़ क्षेत्र की चित्रकला का अपना एक विशेष महत्व है। चित्रकला के इतिहास में राजस्थानी शैलियों का वर्गीकरण करते समय पश्चिमी भारत की सम्पूर्ण मध्यकालीन चित्रकला को मारवाड़ शैली के नाम से अभिहित किया गया है, जिसका केन्द्र जोधपुर है।[2]

मारवाड़ क्षेत्र भारतीय शूरवीरों की त्याग, बलिदान की जननी रही है। प्राचीन काल में इस प्रान्त को जांगल प्रदेश कहा जाता था। इससे प्रतीत होता है कि यह एक हरी - भरी शस्य - श्यामला लतापुष्प सुसज्जित वनस्थली रही होगी और यह प्रदेश जन - संकुल रहा होगा। किन्तु जलवायु के परावर्तन एवं भू - गर्भिक उथल - पुथल के कारण इसका

---

1. डा० ओझा, राजपूताने का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० 38
2. डा० चन्द्र कान्ता, मुगल तथा जयपुर शैली में रचित रागमाला चित्रावलियों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० 8-9

भू - दृश्य परिवर्तित हो गया । परिणामतः कालान्तर से यह प्रदेश मरुभूमि, मरुधरा, मरु मण्डल, मरुवन, मरुस्थली मरुमेदनी, मारण, मरुदेश आदि नामों से अभिहित किया गया ।

भौगोलिक स्थिति [परिदृश्य] :

पश्चिमी राजस्थान में मेवाड़ मारवाड़ क्षेत्र एक विशाल रेगिस्तानी भूमि तथा अरावली एवं छप्पन की पहाड़ियों के यत्र - तत्र बिखराव से बना है । इसी मरु प्रदेश में 24·36 और 27·42 उत्तर तथा 70·6 व 75· 2 देशान्तर रेखाओं के मध्य फैला हुआ भाग मारवाड़ के नाम से प्रसिद्ध रहा है ।"[1] इसके उत्तर - पूर्व से दक्षिण - पश्चिम तक, लम्बाई 512 किलो - मीटर एवं उत्तर से दक्षिण तक, 272 किलो मीटर माप है । इस प्रकार इस सम्पूर्ण मारवाड़ राज्य का क्षेत्रफल 58,514 वर्ग किलो मीटर में विस्तृत है । मारवाड़ राज्य के उत्तरी क्षेत्र में बीकानेर, पूर्व में जयपुर, किशनगढ़, तथा अजमेर, दक्षिण - पूर्व में अजमेर, भीलवाड़ा तथा उदयपुर, दक्षिण में सिरोही तथा पालनपुर, दक्षिण - पश्चिम में कच्छकैरन, पश्चिम में पाकिस्तान के सिन्ध तथा थार पार कर जिले और उत्तर - पश्चिम में जैसलमेर राज्य इसका सीमांकन करते हैं । [देखिये मान चित्र -अ]

मारवाड़ राज्य में रेतीले मैदान, ऊँचे - नीचे टीलों की दृश्यावली दर्शनीय है । दक्षिण - पश्चिमी हवाओं के कारण विशाल मात्रा में

---

1· आक्सफोर्ड पालिटिक्स एटलस, लंदन 1909

रेत उड़कर चट्टानी पहाड़ियों के ऊपर एकत्रित हो जाती है, जो हवा से भरी लहरों के कारण, रेत से ही भव्य टीलों के समान सुशोभित होती है। अधिकांश मारवाड़ राज्य की सीमा - अरावली की ऊँची चोटी से घिरी हुयी है, जो विन्ध्यन समूह की है।[1]

अरावली पहाड़ियों की ऊँची चोटियाँ नाना के निकट 36,07 फीट मूंडा पंहाड़ (जसवन्तपुर), 3257 फीट सिवाना के निकट छप्पन का पहाड़ 3199 फीट और जालोर के निकट सोनगढ़ 2408 फीट के लगभग है। जोधपुर नगर का किला स्वयं एक ऊँची पहाड़ी पर अवस्थित है। जहाँ आग्नेय चट्टानों और लावा के बहाव के स्पष्ट चिन्ह दिखलायी पड़ते हैं। यहाँ से ऊँची - नीची पहाड़ियों की यह श्रृंखला मण्डोर होती हुयी देजर तक चली गयी है। इन पहाड़ियों के आस - पास अब छोटे - छोटे रेत के मैदान हैं। इस बात के पर्याप्त प्रमाण है कि किसी समय ये स्थान समुद्र के गर्भ में समाये हुए थे।[2]

मारवाड़ राज्य की एकमात्र बड़ी नदी लूनी है, जो अजमेर के पास पुष्कर से निकलकर नागौर, जोधपुर व बाड़मेर जिलों में होती हुयी कच्छ-केरन में विलीन हो जाती है। मुख्य रूप से यह बरसाती नदी है, जिसमें वर्षा के अतिरिक्त अन्य मौसमों में यत्र - तत्र ही चट्टानी भागों में जल

---

1. मिश्र, डा० विनोद चन्द्र - राजस्थान का भूगोल, पृ० 18
2. राय, वी० सी०, मेमायर, जियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया (1959), खण्ड 89, पृ० 19-20

दिखायी देता है । इसकी सहायक नदियाँ भीलड़ी, मेहया कूकड़ी, जवाई, बाड़ी व जोजरी हैं । लूनी का जल बालोतरा तक मीठा है एवं इसके आगे यह खारा हो जाता है । वस्तुतः इस क्षेत्र की यह जीवन – रेखा है। जोधपुर क्षेत्र में बहुत सी मीठे व खारे पानी की झीलें थी हैं । प्राकृतिक नमक की झीलें, डीडवाना एवं पचपद्रा हैं । अनेक राजाओं ने यहाँ कृत्रिम विशाल झीलों का निर्माण भी कराया था । बिलाड़ा में जसवन्त सागर पाली में सरदार समन्द, जालोर में एडवर्ड, समन्द और जोधपुर के समीप किया लाणा में लाल समन्द प्रमुख हैं ।[1]

राजस्थानी जलवायु बहुत ही ठण्डी व गर्म प्रकृति की हैं । लेकिन इसके पश्चिमोत्तर प्रदेश में जोधपुर, बीकानेर व जैसलमेर में दक्षिण गर्म हवाओं के कारण, भयंकर गर्मी पड़ती है । रातें अपेक्षाकृत रेत और चट्टानों के जल्दी ठण्डी होने के कारण सर्द हो जाती है । जोधपुर राज्य के कुछ भाग में उतने सूखे नहीं है, जहा अच्छी वर्षा हो जाती है, वहाँ वर्ष में एक बार भरपूर फसल होती है । कुछ क्षेत्रों में अपर्याप्त वर्षा के कारण शुष्क रहता है । जोधपुर, बाड़मेर, जैसलमेर, जालोर, नागौर और पाली जिलों की मिट्टी भी पानी की कमी के कारण, अनुपजाऊ है।यहाँ ज्वार – बाजरा, जीरा और मौटे अनाजों का ही उत्पादन होता है । जोधपुर के निकट मथानिया के क्षेत्र में मिर्च उत्पादन का विशेष क्षेत्र है जो

---

1. कु0 रागिनी मित्तल – जोधपुर शैली का समीक्षात्मक अध्ययन {शोध प्रबन्ध}

आर्थिक विकास में विशेष सहायक हैं । इन क्षेत्रों में वन - सम्पदा के रूप में कटीली झाड़ियां, खेजड़ा एवं सालर प्रमुख वृक्ष हैं । यहाँ के निवासियों का पशुधन ऊँट, भेड़, बकरी एवं गाय है । विभिन्न प्रकार के पक्षी, तीतर, बटेर, बगुले, सारस और गोड़ावन और मोर यहाँ बहुतायत से पाये जाते हैं ।[1]

इस क्षेत्र में बड़े उद्योग - धन्धों का नितान्त अभाव है, केवल परंपरा रूप से वस्त्र, अस्त्र - शस्त्र, कालीन - सजावटी वस्तुएं, चाँदी के आभूषण बर्तन तथा काष्ठ - कर्म यहाँ के प्रमुख उद्योग हैं ।

राजस्थान शौर्य, साहस, सौन्दर्य एवं प्रेम के रंग की पौराणिक कथाओं से ओत - प्रोत ऐसी कर्म भूमि रही है, जहाँ अतीत - कालीन इतिहास बनकर स्थिर हो गयी । प्राकृतिक - विषमता होते हुए भी यहाँ सौन्दर्य का विस्तार अवश्य देखा जा सकता है ।[2]

## मारवाड़ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

आज का मरु - प्रदेश अतीत काल में आदि मानव के उपयुक्त रहा होगा क्योंकि इसी क्षेत्र से भारतीय सभ्यता के विकास के इतिहास का प्रथम

---

1· कु0 रागिनी मित्तल - जोधपुर शैली का समीक्षात्मक अध्ययन [शोध प्रबन्ध]

2· डा0 लोकेश चन्द्र शर्मा - भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास पृ0 57

चरण अग्रसर हुआ होगा । इस धारणा की पुष्टि लूणी - बेसिन से प्राप्त माइक्रोलीथ जो इस क्षेत्र के पुरातत्व को प्रागैतिहासिक - काल तक पहुँचा देते हैं[1]। मण्डोर से देजर की ओर जाने वाली पहाड़ियों में भी प्राचीन शैलाश्रयों के अवशेष मिलते हैं । सिन्धु घाटी सभ्यता के प्राचीन नगरों से भी यह क्षेत्र बहुत दूर नहीं है । इस सभ्यता के अवशेषों के प्रमाण स्वरूप ठीकरे एवं मटके यहाँ अनेक क्षेत्रों में बिखरे पाये जाते हैं ।[2] माण्डव्यपुर - मध्यमिका और जगत तथा किराडू कूप एवम् ओसिया प्राचीन सभ्यता के अवशेष हैं । मारवाड़ क्षेत्र कला - संस्कृति, धर्म तथा राजनीति के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण रहा है । जहाँ प्रागैतिहासिक युग से उत्खनन सभ्यता का क्रम निरन्तर रूप से अध्ययन के लिए उपलब्ध है ।

ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर ज्ञात होता है कि मारवाड़ सहित पश्चिमी तथा उत्तरी राजपूताना किसी समय मौर्य साम्राज्य का अंग था ।[3]

---

1. साँकलिया, हंसमुख धीरजलाल, बिगिनिंग आफ सिविलाइजेशन इन राजस्थान रिसर्चर, खण्ड-1, पृ0 6-7
2. स्मिथ, ब्रायन - ज्योग्राफी आफ सिन्ध एण्ड वेस्टर्न राजस्थान - आमुख
3. बेराठ का अशोक शिलालेख तथा नीलकण्ठ शास्त्री, के0 ए0 - ऐज आफ नन्दाज एण्ड मौर्याज, पृ0 31

मारवाड़ क्षेत्र में गुप्त राजाओं के शासन - काल के प्रतीक स्वरूप प्रचुर मात्रा में उनके सिक्के यहां उपलब्ध होते है । गोड़, मांगलोद के निकट दधि माता के मन्दिर एवं मण्डोर की पहाड़ी पर गुप्त - कालीन अभिलेखों से इस साक्ष्य की पुष्टि होती है । पाँचवीं शताब्दी में यहां हूड़ राजाओं का शासन था । गुजरों की एक शाखा ने भील माल को अपनी राजधानी बनाकर गुजरात एवं मारवाड़ के विस्तृत भू - भाग को अपने राज्य के अन्तर्गत कर लिया था ।

साहित्य में प्रतिहार वंश को ही गुर्जर वंश कहा गया है । शिलालेखों में प्रतिहारों को भारतीय आर्यों की सन्तान कहा गया है । भोज में ग्वालियर अभिलेख में प्रतिहारों को लक्ष्मण का वंशज कहा गया है, क्योंकि लक्ष्मण ने राम के वनवास के समय प्रतिहार का काम किया था । अत: लक्ष्मण के वंशजों को प्रतिहार कहा जाने लगा । जोध पुर अभिलेख भी इसी कथन का समर्थन करता है ।[1]

[2] मारवाड़ की धरती पर प्रतिहार, सोलंकी, परमार, चौहान, राठौर, चालुक्य, गाहड़वाल आदि के वंशजों ने राज्य किया । तेरहवीं शताब्दी में रावसीहा का मारवाड़ में आगमन हुआ था । सीहा के पश्चात् उनका पुत्र अस्थन और पौत्र धूहड़ राज्य गद्दी पर बैठे । धूहड़ के

---

1· सी0 एस0 मेहता, राजस्थानी चित्रों में अंतराल - व्यवस्था §अप्रकाशित शोध प्रबन्ध §, पृ0 29

2· वाचस्पति गैरोला - भारतीय चित्रकला, पृ0 167

पश्चात् रामपाल छ्दा, मल्लिनाथ, मालदेव, चन्द्रसेन आदि इस क्षेत्र के शासक रहे । उदय सिंह " मोटा राजा के नाम से विख्यात " 1583 - 95 तक, यहाँ का शासक रहा और इसने मुगल शाहजादे सलीम को अपनी कन्या देकर उनसे शान्ति सन्धि कर ली थी । इसके उपरान्त, गज सिंह, यशवन्त सिंह ने राज्य किया । यशवन्त सिंह के समय में बल्लभ सम्प्रदाय के एक केन्द्र के रूप में चोपासनी का विकाश हुआ, जहाँ नाथ-द्वारा की भांति पिछवाइयों के अंकन की परम्परा रही । निश्चित रूप से यहाँ के चित्रकारों ने इस क्षेत्र की भित्ति चित्रों एवं लघु चित्रों को प्रभावित किया । महाराजा यशवन्त सिंह ने औरंगजेब की नीत से दुखी एवं पलायन किये हुए कलाकारों को जोधपुर में आश्रय दिया ।[1] यशवन्त सिंह के पुत्र अजीत सिंह के समय में चित्रकला की विशेष उन्नति हुयी। अजीत सिंह की हत्या उसके पुत्र अभय सिंह ने की और स्वयं गद्दी पर बैठा । अभय सिंह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र राम सिंह गद्दीपर बैठा। इसी के समय में माहद जी के साथ मारवाड़ चित्रों के लक्षण मराठा - चित्रों में समाहित हुए ।

बख्त सिंह को मारवाड़ी की गद्दी अपने भतीजे राम सिंह से 1751 ई0 में प्राप्त हुयी । बख्त सिंह के पश्चात् उसका पुत्र विजय सिंह योधपुर की गद्दी पर आया । विजय सिंह के बाद उसका पुत्र गुमान सिंह

---

1· गोयटेज हर्मन, "मारवाड़ ", मार्ग, वा011, अंक-2, 1958

तत्पश्चात गुमान सिंह का पुत्र मान सिंह गद्दी पर बैठा ।[1] ॥ चित्र संख्या —— ॥

महाराजा मानसिंह के राज्य में नाथों का सम्प्रदाय प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था । उनके मन्दिरों में अपराधी शरण्ण पाने लगे थे तथा उनको पकड़ने की आज्ञा न थी । महाराजा के विषय में मारवाड़ में यह दोहा प्रसिद्ध है -

जोध बसायो जोधपुर, ब्रज कीनो ब्रजपाल ।
लखनेऊ, काशी दिल्ली, मान कियो नेपाल ।।

महाराजा मानसिंह के समय में भित्ति चित्रों की विशिष्ट - परम्परा प्रारम्भ हुयी । उनके स्वयं के भित्ति चित्र दाढ़ी, भारी गल - मूँछों एवं पगड़ी से युक्त बनाये, जो वस्तुतः बाद में समस्त योधपुर चित्रों में रूढ़ के रूप में प्रयुक्त हुए । क्रमशः महाराजा तख्त सिंह, यशवन्त सिंह गद्दीप पर बैठे । यशवन्त सिंह का स्वभाव अन्य नरेशों के साथ मित्रता का रहा था । महाराजा जसवन्त सिंह बड़े गुणी, दानी तथा प्रजा प्रिय थे । इन्होंने ही मारवाड़ के शासन कार्य को नवीन कार्य - शैली में बदल दिया । इस प्रकार योग्य नरेश, कार्य कुशल मन्त्री तथा प्रवीण्ण सलाहकार के संयोग से मारवाड़ राज्य का प्रबन्ध उन्नत अवस्थाओं में पहुँच

---

1. डा० राम कँवर - अलवर - चित्र शैली ॥ अप्रकाशित शोध - प्रबन्ध " पृ० 65

गया । इनके समय में मारवाड़ लोककला के प्राचीन गौरव के स्थान पर पहुँच गयी । सरदार सिंह के समय में जोधपुर के चित्रों में योरोपीय प्रभाव अधिक होने लगा था । जोधपुर में छापाखानाभी इन्हीं के कार्य - काल में स्थापित हुआ । इनकी आजादी के उपरान्त, राज्य के पुनर्गठन के समय यह मारवाड़ राज्य राजस्थान में विलीन हो गया ।

मध्य काल में निम्नलिखित महत्वपूर्ण ऐतिहासिक नगर बसाये गये जहाँ भव्य मन्दिरों में शिल्प कला को विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ । जोधपुर, मान्डव्यपुर (मण्डोर), घटियाला, तौपरी, ओसिया, कूच-कला, केकिन्द, पीपाड़, भूडाना, बादल मेंड़ता भावल, भीटा, खेवांसपुरा साभर, फलोदी, डीडवानो, शिव, नागौर, जैसलमेर, लोद्रवा, गोड, योहटन, खेर, जगोल, सांचोर, शिवाना, भीनमाल, जालोर, मीठू, बाली, केलार, भटिण्डा, हथुंडी, साड़ी राव, कोटराधाड़िराव, नाड़ोल, नार लाई आदि वे स्थान हैं, जहाँ भारतीय मूर्तिकला के इतिहास का सृजन हुआ है ।[1] इस क्षेत्र के प्रमुख नगर मल्लानी, बाड़मेर, डीड़वाना, जालोर, जोधपुर, कुचामेड़, मकड़ाना, मण्डोर, मेड़ता, नाडोल, नागौर, फलोदी, पोकरन, साँभर और सोजत हैं ।

इस समस्त क्षेत्र की भाषा मारवाड़ी है । इसके अधिकांश शब्द प्राचीन हिन्दी अथवा अपभ्रंश डिंगल से लिये गये हैं । इस क्षेत्र में रचा गया

---

1. जैन, कैलाश चन्द - एन्शियेंट सिटीज एण्ड टाउन्स आफ राजस्थान, पृ0 80 के उपरान्त

अधिकांश मध्यकालीन साहित्य पिंगल और डिंगल में है । इस क्षेत्र के स्थानीय इतिहास का परिचय मारवाड़ी चारण कवियों की रचनाओं अथवा ख्यातों से प्राप्त होता है ।[1]

मारवाड़ की सामाजिक एवं सांस्कृतिक विरासत -

मारवाड़ क्षेत्र का सांसारिक जन - जीवन अत्यन्त ही मंत्र मुग्ध-कारी है । अनेकानेक धर्मों, सम्प्रदायों, वर्गों एवं विविध जातियों के लोग अपने मत - मतान्तरों के होते हुए भी सौहार्द के वातावरण में रहते आये हैं । वे सभी अपने - अपने उत्सव, पर्व, उल्लास के साथ मनाते हैं। सामंती युग के बीत जाने पर भी राज परिवारों के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा देखने को मिलती है ।

राजस्थान हिन्दी भाषा - भाषी राज्य माना जाता है । इसके बावजूद राजस्थान के विभिन्न भागों में आंचलिक बोलियाँ प्रचलित हैं । वे हिन्दी भाषा के निकट होते हुए भी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती हैं । जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर जिलों में मारवाड़ी, अलवर में मेवाती, भरतपुर, धौलपुर और करौली में ब्रज, सीकर, झुंझुनू और चुरु जिलों में थली या शेखावाटी, जयपुर जिले में ढूंढारी, कोटा, बूंदी और झाला - वाड़ जिलों में हाड़ौती, उदयपुर, भीलवाड़ा और चित्तौड़गढ़ जिलों में मेवाड़ी, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ एवं निकट के भीली इलाकों में

---

1· वाचस्पति गैरोला - भारतीय चित्रकला, पृ0 72

बागड़ी या भीली बोलियाँ प्रचलित हैं । ये आंचलिक बोलियाँ एक -दूसरे के निकट हैं । फिर भी गत कुछ दशकों से " मारवाड़ी " अधिकाधिक समृद्ध हुयी है, आकाशवाणी से इसे प्रोत्साहन मिला है, आधुनिक भाषा शास्त्रियों ने भी मारवाड़ी को ही राजस्थानी भाषा के रूप में स्वीकार किया है । इसके अधिकांश शब्द प्राचीन हिन्दी अथवा अपभ्रंश डिंगल से लिये गये हैं । इस क्षेत्र में रचा गया अधिकांश मध्य कालीन साहित्य पिंगल और डिंगल में है । प्राचीन काव्यों और ऐतिहासिक तथा धार्मिक ग्रन्थों के अतिरिक्त इस क्षेत्र के स्थानीय इतिहास का परिचय मारवाड़ी चारण कवियों की रचनाओं अथवा ख्यातों से यहाँ के अतीत का परिचय प्राप्त होता है ।

मुगल काल में जयपुर के राजघरानों से मुगलों के घनिष्ठ राजनीतिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध थे । जयपुर के जन - जीवन पर मुगलों के रहन सहन व वेश - भूषा की अमिट छाप पड़ी है ।

राजस्थान की भूमि कला और संस्कृति को अपने आंचल में इस प्रकार समेटे है, जिसमें उसके दैनिक उपक्रम का प्रत्येक पल चित्रित हुआ है । जन - मानस की अनुभूतियाँ उनमें ऐसा रूप अंकित की हैं जो कला के लिए अमूल्य धरोहर बनी है । घर - बाहर, खेत - खलिहान, तीज - त्योहार, पर्व एवं मेलों उसका साक्षात्कार स्वरूप उतरा दीखता है । चित्रकार ने चाहे वह किसी वर्ग या जाति का हो, क्षेत्रीय सामाजिक एवम् सांस्कृतिक विशिष्टताओं को अपने में इस प्रकार संजोया है कि वह अपने में एक अनपम उपलब्धि बन गयी । उसने अपने ठिकानों, रजवाड़ों, रियासतों आदि में इस प्रकार प्रस्तुत किया जो उनके महलों, हवेलियों, मन्दिरों,

बावड़ियों, देवालयों, थड़ों, छतरियों आदि में ऐसे चित्रों को उकेर डाला जो सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है ।[1]

**कला में योगदान :**

मारवाड़ क्षेत्र यद्यपि शूरवीरों के त्याग और बलिदानों की भूमि रही है, तथापि जोधपुर मारवाड़ी चित्र - संस्कृति का केन्द्र - बिन्दु रहा है । लूनी नदी के आंचल से प्राप्त पात्रावशेष { टीरसों } व मंडोर से मिली मूर्ति - सम्पदा यहाँ व्याप्त कला परम्परा का बोध कराती है। सोलहवीं शती के प्रसिद्ध इतिहास कार " लामा तारा नाथ " ने सातवीं शती में मरु प्रदेश में " शृंगधर " नाम के एक चितेरे का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार, अजन्ता, गुजरात, चित्रण - परम्परा, मारवाड़ परम्परा से सनाथ हुयी । जैन - परम्परा के अन्तर्गत, पाली, जालोर और नाडोल जैसे स्थलों पर निर्माण कार्य हुआ । पुस्तक प्रकाश, जोधपुर तथा जैसलमेर भण्डार में कल्पसूत्र व अन्य ग्रन्थ हैं, जो मारवाड़ प्रदेश में जैन चित्रकला के प्रभाव को सिद्ध करते हैं । छाडि राव के जैन मन्दिर में जयपुरी शीशे के सजावटी काम के नीचे सत्रहवीं शती के चित्रों की तह मिली है । पाली से पण्डित वीर जी द्वारा पाली ठिकानेदार, विठ्ठल दास के लिये 1623 ई0 में बनी रागमाला चित्र कुँवर संग्राम सिंह के संग्रह में हैं । { चित्र संख्या — 53 } जो प्रारम्भिक मारवाड़ी शैली की प्रथम उपलब्धि

---

1. डा0 आर0 ए0 अग्रवाल, कला विलास, पृ0 109

मानी जा सकती है । इस शैली में अपभ्रंश के लक्षण कतई नहीं हैं । बल्कि यहाँ व्याप्त लोक शैली का प्रभाव देखने को मिलता है । राजा गज सिंह ( 1610 - 30 ई० ) के समय के ढोमारु तथा भागवत वाले चित्र विशेष प्रसिद्ध हैं ।

राजा जसवन्त सिंह प्रथम ( 1638 - 1678 ई० ) विद्वान् एवं कला प्रेमी थे । इस समय में उपदेश माला वृत्ति, बलोतरा में 1639 ई० में चित्रित हुयी । इस समय यह प्रति राजकीय संग्रहालय दिल्ली में है । उनके समय में मारवाड़ कृष्ण - भक्ति परम्परा का गढ़ रहा है । एतदर्थ कृष्ण - चरित्र को आधार बनाकर सैकड़ों चित्रों का सृजन हुआ । बख्त सिंह ( 1724 - 1752 ई० ) के समय में क्रमशः जोधपुर व नागौर में सुन्दर चित्रों की रचना हुयी । अभय सिंह ने ढोलामारु तथा राधा - विषयक विशेष चित्र बनवाये । तथा बख्त सिंह ने पासवानों, गायिकाओं, नर्तकियों आदि के चित्रों को नागौर के किले में बनवाया । नागौर किले में बादल महल, शीश महल तथा हवा महल वाले, अलिन्द आज भी चित्र साजयों से भरे पड़े हैं । विजय सिंह ( 1753 - 93 ई० ) बल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे और उन्होंने नाथ द्वारा की यात्राएँ भी कीं । उन्होंने राधा - कृष्ण नायक - नायिका के अनेक अच्छे चित्रों को बनवाया था । गंग श्याम जी के मन्दिर में भित्ति चित्रों का उत्तम कार्य हुआ । यह चित्र परम्परा भीम सिंह ( 1793 - 1803 ई० ) के समय में भी जीवित रही ।

महाराजा मान सिंह ( 1803 - 43 ई० ) के अकस्मात् राज्यारोहण के साथ मारवाड़ चित्र - परम्परा में एक नयी परिपक्वता तथा विषय की विविधता आयी । महाराजा ने आयस देव नाथ के लिए जोधपुर

से 4 किलो मीटर दूर महा मन्दिर बनवाया जो नयनाभिराम भित्ति-चित्रों से सुसज्जित तथा अपने दरबार में नाथ सम्प्रदाय सम्बन्धी अनेक विषयों को चित्रित कराया ﴾ चित्र संख्या – 34 ﴿ । रामायण, दुर्गा, चरित, शिव पुराण, शिव रहस्य, नाथ चरित्र, ढोला मारु आदि ग्रन्थों के आधार पर सैकड़ों बड़े आकार वाले चित्रोंके को उसने निर्मित करवाया । डा० गोयेट्ज के अनुसार भी चित्रों में एक नयी सजधज वाली परम्परा का विकास हुआ ।

तख्त सिंह ﴾ 1843 – 1873 ई० ﴿ इन्होंने पुनः कृष्ण विषयक चित्रों का निर्माण कराया । इसी समय नाथ सम्प्रदाय प्रभावहीन हो चुका था । जोधपुर किले के तख्त – विलास तथा तीजा माँ जी के मन्दिर में इनके समय में सुन्दर चित्र बने, लेकिन उनके अन्तिम समय में जयपुर की छाया प्रकाश वाली चित्र शैली जोधपुर में छाने लगी । जिसकी चरम परिणति महाराजा जसवन्त सिंह द्वितीय ﴾ 1873 – 1895 ई० ﴿ के

---

1. वाइड, " दि लीनियर रीथ्म वाज इन्टेन्सीफाइड, दि कर्ल्स किीन टु नो ब्राइटली एण्ड मेन्स एंड लेडीज, फैशन एज्यूम्ड ए फेन्टास्टिक एक्स्ट्रावेगेन्स· टर्बन्स ग्रउ टु हाइ फ्यूनेल्स, कोट्स, एण्ड स्क्रिप्ट्स स्टुड आफ लाइक वेल्स· लेडीज आइस वेयर एलोन्गेटेज ओवर दि वैम्पिल्स टु दि लेयर·"

– मार्ग·वा० ×I, नं०-2, 1958, पेज 46

चित्रों में देखी जा सकती है । इस प्रकार यह शैली पतनोन्मुख होने लगी।[1]

सत्रहवीं शती से लेकर उन्नीसवीं शती के अन्त तक मारवाड़ के विभिन्न केन्द्रों पर चित्र बने जो मुख्यतया पुस्तक प्रकाश, कुँवर संग्रामसिंह राम गोपाल विजय वर्गीय, बड़ोदा राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में उपलब्ध है ।[2]

नामकरण की समस्या :

पर्याप्त तथ्यों की उपलब्ध सामग्री की अत्यल्पता के कारण, नाम करण की समस्या आज भी विद्यमान है । मुख्यत: व्यथित जैन शैली और राजस्थानी शैली के उद्भव को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं । सचित्र - पोथियों एवं चित्रों का एक साथ उपलब्ध न होने के कारण ही "नामकरण" की संकीर्णता का जाल बिछ गया ।

प्रारम्भ में स्व0 डा0 कुमार स्वामी ने इसे " जैन शैली " से अभि-हित किया । क्योंकि ये चित्र जैन ग्रन्थों में मिले । जब जैन ग्रन्थों के अलावा ये चित्र प्राप्त हुए तो समस्या नामकरण की खड़ी हो गयी। बसंत विलास अहमदाबाद ( गुजरात ) में चित्रित - पट ग्रन्थ मिला तो श्री एन0 सी0 मेहता ने इसका नाम " गुजरात " शैली रखा । जब ऐसे चित्र गुजरात

---

1. आर0 ए0 अग्रवाल - कला विलास, पृ0 98-101

2. " पृ0 100

के बाहर ( मारवाड़ - जौनपुर ) में मिले तो श्री नारमन ब्राउन ने क्षेत्रीय आधार पर पश्चिमी भारत की शैली कहा । परन्तु जब ऐसे चित्र बंगाल व उड़ीसा में मिले तो यह विचार भी संकुचित हो गया ।

शैलीगत समता एवं विषमता के आधार पर श्री राय कृष्ण दास जी ने इसे " अपभ्रंश " शैली के नाम से अभिहित किया । क्योंकि इन चित्रों में भावात्मक निजत्व दुर्लभ है । ------ न रेखाओं में दम - खम न कल्पना की उड़ान ········· प्राचीन शैली विकृति नाम है तो अपभ्रंश शैली " ही एक ऐसा शब्द है, जिसके द्वारा उन विकृतियों को समुचित " अभिधा " ही नहीं " व्यंजना " भी हो सकती है·······अपभ्रंश भाषा से चित्रकला का यह स्वभाव ऐक्य एवं सहगामित्व " अपभ्रंश " शैली नाम का सार्थक है ।[1]

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल इस शैली के नामकरण पर नये सिरे से पुनर्विचार करने के पक्षधर हैं । क्योंकि आज भी नवीन प्रकाशनों में जैन, गुजरात, पश्चिम भारत एवं अपभ्रंश शैली के नामों से ही उल्लेख्य है। अतः नामकरण की समस्या जीवन्त है ।

उपर्युक्त नाम अपर्याप्त एवं सदोष है । इस तरह की तुलनात्मक प्रवृत्ति को स्वीकारा नहीं जा सकता । क्योंकि प्रत्येक युग की कला का अपना " निजत्व " एवं अपनी " अस्मिता " होती है ।

---

1· राय कृष्ण दास - भारत की चित्रकला, पृ० 38- 39

राजस्थानी शैली के सम्बन्ध में यह स्पष्ट करना समीचीन होगा कि " राजस्थानी शैली " का नामकरण राजपूत शैली से अत्यधिक व्यापक एवं महत्व पूर्ण है। इस सन्दर्भ में श्री रायकृष्ण दास जी का मत अकाट्य है।[1]

कांगड़ा एवं बसोहली शैली में राजपूत एवं मुगल शैली का प्रभाव एवं विशेषताएँ हैं, परन्तु क्षेत्रीय आधार पर " पहाड़ी शैली "में रखना तर्क एवं न्याय संगत है।

एतदर्थ, जब तक इन शैलियों के इतिहास को लेकर नये तथ्य सामने नहीं आते, तब तक नामकरण की समस्यायें विवादास्पद रहेंगी। अतः किसी शैली के कलात्मक एवं भावात्मक पक्ष ही उसकी अस्मिता एवं निजत्व की पहचान करा कर उपयुक्त नामकरण की संज्ञा प्रदान कर सकते हैं।

---

1. डा० आर० ए० अग्रवाल, कला विलास, पृ० 89

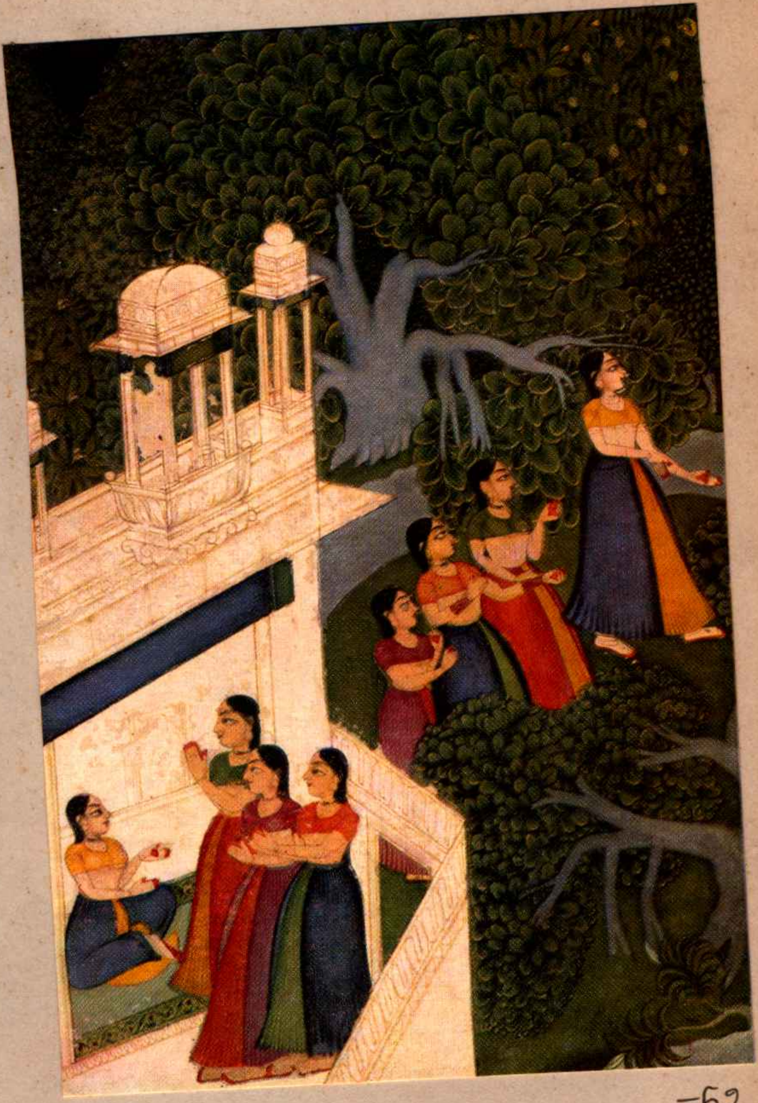

-52

द्वितीय अध्याय

**********************************************************

## द्वितीय अध्याय

## मारवाड़ चित्रशैलियों का विकास-क्रम

1· परिचय :

(क) मारवाड़ी चित्रशैली के संदर्भ में पूर्ववर्ती शैलियों का अध्ययन:

1) प्रागैतिहासिक शैली - विकास

2) सैन्धव सभ्यता - शैली - विकास

3) अजन्ता शैली विकास

4) जैन - अजैन शैली विकास

5) राजस्थानी शैली - विकास क्रम

(ख) मारवाड़ी चित्र शैलियों का विकसित स्वरूप :

1) जोधपुर शैली

2) बीकानेर शैली

3) नागौर शैली

4) किशनगढ़ शैली

5) जैसलमेर शैली

2· मारवाड़ चित्र शैलियों के प्रतिष्ठान :

1) जोधपुर रियासत

2) बीकानेर रियासत

3) नागौर रियासत

4) किशनगढ़ रियासत

5) जैसलमेर रियासत

3· मारवाड़ चित्रशैली का - 1) स्वरूप तथा 2) विवेचन

**********************************************************

द्वितीय अध्याय

**परिचय :**

मारवाड़ चित्र शैलियों के विकास क्रम पर प्रकाश डालने से पूर्व, पूर्वगामी चित्र शैलियों का संक्षिप्त परिचय कराना आवश्यक प्रतीत होता है। किसी भी तथ्यात्मक व्यवस्था का बोध कराने के पहले पूर्ववर्ती विधा का अध्ययन समीचीन है ।

भारत वर्ष में पुरातन काल से अद्यतन चित्रकला मानव - विकास की प्रक्रिया के साथ सामाजिक,

राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक प्रतिक्रियाओं की लहरों पर हिलोरें लेती हुयी आगे बढ़ी । कभी उत्कर्ष तो कभी अपकर्ष । इसी उतार - चढ़ाव में भारतीय चित्रकला - प्रागैतिहासिक शैली सैन्धव - शैली ( सिन्धु घाटी ) अजन्ता शैली ( बौद्ध कालीन ) जैनपोथी चित्रण शैली, अजैन भारतीय वांग्मय शैली एवं राजस्थानी आदि शैलियों का स्वरूप धारण किया । जिसके संक्षिप्त क्रमिक विकास पर दृष्टिपात करना परमावश्यक है । जिसकी आधार शिला पर हम मारवाड़ की चित्र - शैलियों का स्तम्भ प्रतिस्थापित करेंगे ।

1· <u>मारवाड़ी चित्रशैली के संदर्भ में पूर्ववर्ती शैलियों का अध्ययन :</u>

कला, मानव की सहचरी है । कला का विकास मानव - सभ्यता के साथ - साथ चला आ रहा है । यही तथ्य प्रत्येक देश की सांस्कृतिक क्रिया - कलापों से अध्ययन में सहायक होता है । इसी क्रम में राजस्थानी चित्र शैली के अन्तर्गत " मारवाड़ शैली का अभ्युदय हुआ । पुरातत्व-वेत्ताओं, इतिहासकारों एवं कला - समीक्षकों एवं समालोचकों ने यह सिद्ध किया है कि मानव के हृदय में चित्रांकन की प्रवृत्ति आदि काल से चली आ रही है । यदि कला की उत्पत्ति कलाकार की भावनाओं की उत्पत्ति है तो आज उन कलाकारों के चित्रों में उनकी आत्मा ही मूर्त रूप होकर बैठी है और आज दर्शक के हृदय - पटल पर अपना पूरा - पूरा प्रभाव छोड़ती है । राजस्थान में भी अनेक भू - भागों पर उत्खनन कार्य हुआ है, तो देखा कि राजस्थान का हृदय - पटल भी अनेक युगों के कला-कृतियों को एक धरोहर के रूप में संजोये बैठा है । भारतीय पुरातत्व के क्षेत्र में अब तक जिन प्रागैतिहासिक स्थानों का पता चलता है,उनमें हड़प्पा

का महत्वपूर्ण स्थान है ।[1]

लूनी नदी के आँचल से प्राप्त पाषाणावशेष व भण्डोर से मिली मूर्ति - सम्पदा यहाँ व्याप्त कला - परम्परा का बोध कराती है ।16 वीं शती के तिब्बती इतिहासकार " लामा तारा नाथ " ने 7 वीं शती में मरु प्रदेश में " श्रृंगधर " नामक एक चितेरे का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार, अजन्ता - गुजरात चित्रण - परम्परा मारवाड़ परम्परा से सनाथ हुयी है, जैन परम्परा के अन्तर्गत, पाली, जालोर और नाडोल आदि जैसे स्थलों पर चित्रण कार्य हुआ है । पुस्तक - प्रकाश, जोधपुर तथा जैसलमेर भण्डार में कल्प सूत्र व अन्य ग्रन्थ हैं, जो मारवाड़ प्रदेश में जैन चित्रकला के प्रभाव को सिद्ध करते हैं ।[2] राजस्थान में अनेक स्थानों पर भग्नावशेषों, चित्र, मूर्ति आदि के प्रमाण प्राप्त हुए हैं । इसी से ही राजस्थान के हजारों वर्ष पूर्व के सांस्कृतिक क्रिया - कलापों का उस समय के स्वरूप को आसानी से पहचाना जा सकता है । विक्रम सं0 रूप से पूर्व, कुछ - कुछ राजस्थानी सिक्कों[3] पर अंकित मानव, पशु - पक्षी, सूर्य-चन्द्र, धनुष - बाण, पर्वत - नदी आदि अंकित हैं ।

**प्रागैतिहासिक शैली :**

राजस्थान के निकट ही मालवा में चित्रित ऐसी गाड़ी मिली है,

---

1. वाचस्पति गैरोला - भारतीय चित्रकला, पृ0 72
2. आर0 ए0 अग्रवाल, कला विलास, पृ0 98
3. वाचस्पति गैरोला - भारतीय चित्रकला, पृ0 72

जिस पर एक व्यक्ति बैठा है, दोनों ओर दो अनुचर धनुष - बाण व दण्ड लिए खड़े हैं।[1] ऐसा अवगत होता है कि प्राचीन काल का मानव अपने दैनिक जीवन के क्रिया - कलापों के चित्रांकन के प्रति कितना सजग था।

जयपुर, इन्दुगढ़ व कोटा क्षेत्र से पाषाण युग के कुछ हथियार खुदाई से प्राप्त हुए है, जो कि कलकत्ता के " इण्डियन म्यूजियम के पुरातत्व विभाग में प्रदर्शित है।[2] ये दो लाख वर्ष पुराने अनुमानित किये जाते हैं। उदयपुर, चित्तौड़, भीलवाड़ा, अलवर आदि में ऐसे ही अनेकों उपकरण प्राप्त हुए हैं, जिनके माध्यम से मारवाड़ी चित्रकला के परिप्रेक्ष्य में राजस्थान की प्राचीन कला - संस्कृति का अभिज्ञान होता है।

जोधपुर और नाथ द्वारा में कुल्हाड़ियाँ मिली हैं। राजस्थान केवल अपनी मूर्ति - सम्पदा एवं मोहक चित्र शैली के लिए ही विशेष रूप से जाना जाता है। एक समय था, जब यहाँ समुद्र, अनेक झीलें व वर्ष भर रहने वाली सरिताएँ थीं। ऐसे ही पुराने राजस्थानी क्षेत्र में ईसा से कई हजार वर्ष पूर्व की सभ्यता के चिन्ह जो प्रागैतिहासिक मानव ने छोड़े हैं - हमें प्राप्त होते हैं। चम्बल की घाटी में भी अनेक स्थान हैं, जैसे सीता खरदी में बाड़ क्षेत्र में ही आहाड़ एवं गिलूण्ड ऐसे स्थान हैं,जहाँ शिकारी

---

1· वाचस्पति गैरोला - भारतीय चित्रकला, पृ0 72

2· शोध पत्रिका, वर्ष -12, अंक-2, पृ0 7

जीवन से ऊपर उठकर मानव ने खेती व पशु - पालन का धन्धा शुरू किया था ।[1]

हाल में ही कोटा नगर से 22 किलो मीटर दूर दिल्ली -बम्बई रेल मार्ग पर स्थित अलनियाँ नदी की घाटी में शैलाश्रयों में चित्र प्राप्त हुए हैं । चित्र ईसा से लगभग 5000 वर्ष पूर्व के हैं । सभी गेरू से बने हैं, आस पास के लोग इन्हें " सीताजी का माण्डणा " से सम्बोधित करते हैं । यहाँ हरिण, शेर, भालू, गाय, बकरी, जंगली साँड़ ( वन वृषभ), शिकार दृश्य, मानव आकृतियों व शिकार चित्रों की भरमार है । भौगोलिक दृष्टि से मध्य प्रदेश से जुड़े राजस्थान के इस क्षेत्र विशेष में आदमी ने अपनी सभ्यता का पहला इतिहास यहीं लिखा प्रतीत होता है ।[2] अतः राजस्थानी चित्रकला के इतिहास विकास की प्रारम्भिक या प्रागैतिहासिक उपलब्धि है ।

( सिन्धु घाटी ) सैन्धव सभ्यता चित्रकला की प्रागैतिहासिक कड़ी, चित्रकला की ऐतिहासिक श्रृंखला को मजबूत करने में समर्थ है।कालांतर में इस सिन्धु सभ्यता का प्रभाव राजस्थान के मेवाड़ तक पहुँच गया था । आहाड़ की खुदाई से प्राप्त एक ऐसी तस्तरी प्राप्त हुयी है, जो कि सिंधु सभ्यता की आकृति वाली है ।

---

1. आर० ए० अग्रवाल, कला विलास, पृ० 12-13

2. - वही -

हड़प्पा कालीन कतिपय थेड़ियों के अतिरिक्त अनेक ऐसे स्थल बीकानेर क्षेत्र के अन्तर्गत भी हैं, जहाँ कि प्राचीन सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं। ये मौर्य - सभ्यता से सम्बन्धित चित्र बने हैं। कुछ विद्वान् इन सिलेटी रंग के पात्रों को आर्य सभ्यता के समय से मानते हैं। राजस्थान में सिन्धु सभ्यता के उपरान्त आहाड़ संस्कृति ही ज्यादा प्रभावशाली हुयी। कुछ समय के पश्चात् इस संस्कृति के उपासक सलेटी रंग के पात्रों को उपयोग करने वाले लोगों के सम्पर्क में आये।[1]

पश्चिम भारत में भी सिन्धु सभ्यता का प्रभाव भी काफी समय के बाद तक बना रहा।[2] मेवाड़ क्षेत्र में स्थित आहाड़ के उत्खनन में 2 हजार ई० पूर्व से प्रथम शताब्दी तक के पात्रावशेष प्राप्त हुए हैं। उपर्युक्त साक्ष्यों के आधार पर, राजस्थान की प्राचीन सभ्यता एवं तत्कालीन मानव की कलात्मक पिपासा एवं सौन्दर्यात्मक अभिरुचि का बोध होता है।

भित्ति चित्रों एवं साहित्यिक ग्रन्थों के माध्यम से मारवाड़ की प्राचीनतम संस्कृति का स्वरूप प्राप्त होता है। इसी के आधार पर यहाँ की कला का अनुमान लगाया जाता है कि जैन मुनियों के संरक्षण में पल्लवित एवं पुष्पित हुयी। यही पर तीसरी शताब्दी में पश्चिमी विद्यापीठ की कला - परम्परा का विकास दृष्टिगत होता है। यह विद्यापीठ -

---

1. डा० एच० डी० संकालिया - इण्डियन आर्कियोलोजी टु डे, पृ० 47 - 480

2. डा० संकालिया एवेल्यूशन आफ आहाड़ - शोध पत्रिका, पृ० ।

वैताल गढ़ सिरोही जिले के समोली ग्राम के समीप है ।[1] इन खण्डहरों में शारदा पीठ नामक एक स्थान विद्यापीठ का केन्द्र माना जाता है ।

7 वीं शताब्दी की यह एक उन्नतिशील एवं परिष्कृत शैली थी ।[2] वैताल गढ़ के उन खण्डहरों ने इस शैली के शिल्प - तत्वों की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है ।[3] बौद्ध इतिहास कार लामा तारा नाथ ने लिखा है कि एक धारा ब्रह्म देश में गयी और दूसरी पश्चिम भारत में व्याप्त हो गयी । अजन्ता से कलाकार 7 वीं शती से ही तत्कालीन प्रभाव से इस प्रदेश में पहुंचे ।[4]

इसी युग में भारतीय कला - जगत् के क्षेत्र में स्वर्णिम आलोक छा गया जिसके प्रकाश में अजन्ता की कला आलोकित हो उठी ।

यवनों के आक्रमण के फलस्वरूप कला की धारा शिथिल पड़ गई। राजस्थानी चित्रकार व धनी - मानी व्यक्ति पलायन वादी हो गये । यद्यपि जैन कला का क्रम अबाध गति से चलता रहा । श्री ए० के० स्वामी ने जैन विषयक चित्रों को भारतीय चित्रकला का अति आध्यात्मिक रूप

---

1· गोपी नाथ शर्मा - राज स्थान का इतिहास, भाग -1, पृ० 53
2· डा० के० सी० जैन एन्शिएन्ट सीरीज एण्ड टाउन आफ राज - स्थान पृ० 164
3· कन्हैयालाल पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० 766
4· शोध पत्रिका, भाग-11, अंक 3-4, पृ० 115-116

माना है, जिसमें तकनीकी दक्षता की पराकाष्ठा है ।[1]

उत्तर मध्य कालीन पोथी चित्रण में सिर्फ जैन धर्म से सम्बन्धित सचित्र ग्रन्थों की रचना नहीं हुयी, बल्कि अनेकानेक ग्रन्थों को चित्रण आरम्भ हुआ । वैसे तो जैन ग्रन्थों में कृष्ण के जीवन की अनेक घटनाओं का उल्लेख मिलता है । किन्तु 14 वीं 15 वीं शती में वैष्णव धर्म ने एक नवीन आध्यात्मिकता का प्रस्फुटन किया, जिसमें चित्रों के परिवेश में अनेक नवीन कल्पनाओं एवं बिम्बों का प्रवेश होने लगा ।[2]

कालिदास की काव्य - परम्परा ने स्वच्छन्द कल्पना शीलता का चमत्कारिक परिवेश संस्कृत साहित्य को दिया । प्रकृति एवं नारी-सौन्दर्य की ऐसी सुन्दर अभिव्यक्ति उस महान सृजन कार ने की है कि आज भी सृजन की वैसी ऊँचाइयाँ कोई कवि नहीं प्राप्त कर सका । शिव की आराधना का असीम रूप उनके काव्य का प्रेरणा - स्रोत बना । काव्य - परम्परा को कालिदास ने अनेक बिम्ब - विधान प्रदान किए ।कालिदास कल्पना पौराणिक अर्थ सार के निकट होकर भी स्वच्छन्द थी । इनके काव्य में चित्रा सी दृश्यात्मकता है । काव्य एवं चित्र की दृश्यात्मकता है । काव्य एवं चित्र की सुसंगति यहीं से आरम्भ हो गयी थी, जो 15वीं शताब्दी में पुनः सजीव हो गयी ।

---

1. ए० कुमार स्वामी - केटलाग आफ इण्डियन कलेक्शन्स इन द म्यूजियम आफ फाइन आर्ट सिस्तन पार्ट -
2. प्रो० सी० एस० मेहता - शोध प्रबन्ध(अप्रकाशित), पृ० 75

मारवाड़ी चित्रकला की परम्परा के उत्थान में काव्य एवं संगीत की भावमय कल्पना उत्प्रेरक रही है । काव्य ने चित्र - सृष्टि से मधुर दृश्यात्मकता ली और चित्रों ने काव्य से रसिकता एवं कोमलता ( चित्र संख्या - 60 ) । बिम्बों का आदान - प्रदान काव्यों एवं चित्रों में परस्पर हुआ । वैष्णव विचार धारा ने हिन्दू धर्म को नये उत्साह से परिपूर्ण कर दिया । साहित्य एवं कला में एक नया सौन्दर्य - बोध जगा । जिसने तत्कालीन चित्रों का सम्पूर्ण वातावरण बदल दिया ।[1]

रामायण और भागवत में धार्मिक - चिन्तन तो है ही, जीवन के प्रति एक व्यावहारिक दृष्टिकोण भी है । इस मूल प्रेरणा ने लौकिक भावना में एक नया विश्वास भर दिया । " रामायण " में जहाँ मनुष्य के आदर्श स्वरूप में देव - शक्ति का अवतरण दिखाया है, वहीं " महा भारत " में आत्मा व परमात्मा के शाश्वत सम्बन्ध की नीयी परिभाषा से मनुष्य के " मर्यादा " का प्रतिपादन किया ।[2]

मनुष्य तो उस महान् नियति का निमित्त मात्र है, जिसके सभी क्रिया - कलाप पूर्व निर्धारित हैं । समस्त सृष्टि की घटनायें एक ब्रह्मा - ण्डीय संरचना से अनुशासित हैं । उस मूल तत्व से साक्षात्कार करने में ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है । इसी गुण - प्रेरणा से वैष्णव साहित्य

---

1. प्रो०सी० एस० मेहता - शोध प्रबन्ध(अप्रकाशित), पृ० 75

2. - वही -

एवं कला आरूढ़ है । कृष्ण - राधा की प्रणय - लीला में आत्मा - परमात्मा के मिलन की प्रतीकात्मक परिणति है । इसी रस मय धारा में तत्कालीन " काव्य और कला " डूब गयी और एक नवीन चित्रोपम सृष्टि हुयी कि जिसको लेकर बाहर आयी । राधा के प्रेमानुराग की ऐसी सृष्टि हुयी कि चित्र शैली मादक उल्लास में निमग्न हो गयी । भक्ति, श्रृंगार एवं संगीत की इस त्रिवेणी में नहाकर कला भी अपना रूप परिधान सँवारती रही ।

मारवाड़ की लघु चित्रण - परम्परा में काव्य, संगीत एवं चित्र की मधुर संगम दृष्टिगत होती है । " जयदेव " कृत "गीत - गोविन्द ने कृष्ण - राधा के प्रेमाख्यान को अनेक सुन्दर बिम्ब विधान दिये, जिन्हें चित्रकारों ने चित्रों में ढालने का सफल प्रयास किया । § चित्र सं० 6, 28 § राधा - कृष्ण की प्रेम - लीला के साथ समस्त प्रकृति का जड़ - चेतन, स्थावर - जंगम लीन हो गया था ।[1]

§ख§ <u>मारवाड़ चित्र - शैलियों का विकसित स्वरूप :</u>

मारवाड़ चित्र शैली के सम्यक् अध्ययन के मारवाड़ की उप -शैली की शैलीगत विशिष्टताओं के आधार पर निम्नवत् वर्गीकरण किया जा सकता है -

---

1. डा० सी० एम० मेहता - शोध प्रबन्ध, पृ० 76

1. जोधपुर शैली
2. बीकानेर शैली
3. नागौर शैली
4. किशनगढ़ शैली
5. जैसलमेर शैली

1) **जोधपुर शैली का विकास क्रम :**

जोधपुर मारवाड़ी चित्र - संस्कृति का केन्द्र बिन्दु रहा है ।[1] जहा एक ओर जुझारु रण वाद्यों की तुमुल ध्वनि, महलों में नूपुरों की झंकार एवं संगीत की आलाप, वहीं दूसरी ओर राज - दरबारों, ठिकानों पर चितेरों की तूलिका से सुगढ़, कमनीय चित्र - सृजन । चित्र - साहित्यों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि पूर्ववर्ती अजन्ता व जैन - शैली जिनका इस काल में ह्रास हो चुका था, वे पुनर्जीवित हो उठी । पुस्तक - प्रकाश जोधपुर तथा जैसलमेर में कल्प सूत्र व अन्य ग्रन्थ हैं, जो मारवाड़ प्रदेश में जैन चित्रकला के प्रभाव को सिद्ध करते हैं ।[2] तात्पर्य यह है कि जैन - शैली का प्रभाव तत्कालीन मारवाड़ की सभी शैलियों पर पड़ा । अर्थात् जोध - पुर शैली भी इस जैन - शैली के प्रभाव से अछूती नहीं रही । ( चित्र संख्या — 51 )

जोधपुर - शैली पर मुगल - शैली का भी प्रभाव पड़ा ।परन्तु

---

1. डा० आर० ए० अग्रवाल, कला विलास, पृ० 98
2. - वही -

जोधपुर शैली अपनी कुछ विशिष्टताओं के कारण, अपने निजत्व को धूमिल नहीं होने देती । ‖ चित्र सं० – 40 ‖

किसी भी शैली के विकास – क्रम में स्थान का भी योगदान होता है । क्षेत्र सूखा व रेगिस्तानी होने के कारण, चित्रों में भी वनस्पतिक अभाव खटकता है । शैल शिलाओं की अधिकता के कारण भवन भी प्रस्तर खण्डों से निर्मित हुए जो कि चित्रों में दर्शाये गये हैं । लम्बी आकृति, मुगलिया वेश – भूषा, घंटाकृति लम्बे किलदार जामा, पुरुषों के मुख – मण्डल पर शौर्य, लम्बी नासिका, अरूणाभ बड़ी आँखें, चढ़ी हुयी घनी दाढ़ी, कान तक खिंची हुयी मूँछें, अलंकृत पगड़ियाँ दृष्टव्य हैं ।

जोधपुर शैली के विकास – क्रम में चित्रों के अध्ययन से मालूम होता है कि जोधपुर – शैली, जोधपुर शासक – महाराजा गज सिंह ‖ 1610 – 30 ई० ‖ के साथ उदित हुयी और क्रमश: राजा जसवंत सिंह के राज्य काल में चर्मोत्कर्ष पर पहुँची थी । परन्तु इस चरम परिणति से पश्चात् ही पतन एवं ह्रास के चिन्ह परिलक्षित होते हैं –

| | |
|---|---|
| महाराजा गज सिंह | 1610 ई० 30 ई० |
| राजा जसवन्त सिंह-। | 1638 – 78 |
| बख्त सिंह | 1724 – 52 |
| विजय सिंह | 1753 – 93 |
| भीम सिंह | 1793 – 1803 |
| मान सिंह | 1803 – 43 |
| तख्त सिंह | 1843 – 73 |

जसवन्त सिंह -2          1873 - 95

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर जोधपुर शैली का विकास - क्रम स्थानीय शासकों के साथ 17 वीं शती से लेकर 19 वीं शती तक हुआ। इसके उपरान्त, कई चित्रकार अन्य रियासतों, ठिकानों व बीकानेर चले गये जिससे जोधपुरी शैली का मार्ग अवरुद्ध हो गया ।

जोधपुर शैली के चित्रकारों ने चित्र - सृजन किया जो उल्लेखनीय है । राग माला, बारह मासा के अतिरिक्त, ढोला मारु, मधु -मालती, वीणा सोरठ तथा सारंगा सदाशिव आदि को अपनी तूलिका का विषय बनाया ।[1] इसके साथ ही राम - कृष्ण सम्बन्धी कथाएँ, शिव -पुराण के आख्यान नाथ पंथ व सामाजिक - जीवन पर सुगढ़ चित्र उरेहे गये । (चित्र संख्या - 20)

## 2· बीकानेर शैली का विकास क्रम :

बीकानेर शैली के विकास की व्याख्या के पूर्व क्षेत्रीय स्थिति का ज्ञान आवश्यक है । इस ऐतिहासिक नगर की स्थापना " राव बीको जी ने 1485 ई० में किया । इसी से सम्भवत: इसका नाम बीकानेर पड़ा। यहाँ प्राचीन - काल में सरस्वती व दृशव्ती नदियाँ थीं, जो कालान्तर

---

1· लोकेश चन्द्र शर्मा - भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 57

से ही अदृश्य हो चुकी हैं ।

यहाँ कई कल्पसूत्र चित्रित किये गये , इसमें से एक श्री मुनि पुण्य विजय संग्रह ( 1546 ई० ) का है । इससे पता चलता है कि यहाँ चित्र कला परम्परा विद्यमान थी । राव कल्याण मल ( 1570 ई० ) ने अकबर की अधीनता स्वीकार की थी । राजा राम सिंह ( 1571 - 1617 ई० ) के समय सत्रहवीं शती की सचित्र प्रति मेघदूत में माना जाता है । पाल बी० वाल्टर संग्रह में भागवत पुराण के कुछ चित्रों को बीकानेर में 1600 ई० के लगभग माना जाता है । सूर सिंह ( 1620 - 30 ई० ) के बाद महाराजा कर्ण सिंह ( 1631 - 69 ई० ) राजा हुए और अली रजा को अपना प्रिय चित्रकार बनाया । यह मुगल चित्रकार था । कर्ण सिंह ने बीकानेर की चित्र - संस्कृति के उन्नयन में भरपूर सहयोग दिया । कर्ण सिंह के पुत्र केशरी सिंह ने 1670 ई० से पूर्व ही, उस्ताद कादिर को दिल्ली से बुलवाया था । राग भैरवी, माधवानल, कामकन्दला, इसी उस्ताद ने मुगल - शैली में चित्रित किए ।[1] महाराज अनूप सिंह ( 1669-98 ई० ) ने भागवत - पुराण व रसिक - प्रिया के अनेक चित्र दरबारी मुसव्विर उस्ताद रुकनुद्दीन से बनवायी । रुकनुद्दीन ने तिथि युक्त रसिक प्रिया ( 1680 - 90 ई० ) के मध्य चित्रित की ।

इसी कलाकार ने बीकानेर कलम ( शैली ) का सूत्रपात किया।

---

1· डा० आर० ए० अग्रवाल, कला विलास, पृ० 103

अली रजा का पुत्र हसन रजा - रुकनुद्दीन का समकालीन था । औरंगजेब के शासन काल में दिल्ली से चित्र अनेक राजपूती रियासतों में चले गये। कुछ कलाकार बीकानेर भी आये और बीकानेर शैली को अधिक सूफियाना व सफाई युक्त कर दिया ।

महाराज सुजान सिंह ( 1700 - 1736 ई० ) बीकानेर किले के सुजान अलिन्द के बैने दरवाजों में गायकों व कृष्ण - लीला से संबंधित सुन्दर चित्रों का निर्माण हुआ । सुजान सिंह के समय से मुगल कला का प्रभाव घटने लगा ।

चित्रकार कासिम ने नारी - शिक्षिका " 1694 ई० में बनाया जो राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में है । [1] जिसमें मुगल प्रभाव बहुत कम है । पेड़ के नीचे एक नारी का चित्र भी राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में है । फुलझड़ी छोड़ती नारी भी इसी संग्रहालय में है । उस समय के कुछ अन्य चित्रकार हैं - रशीद, नूर मोहम्मद, गुट सयाली, हुसेन उस्ताद, मुराद एवं गंगाराम आदि ।

महाराजा जोरावर सिंह ( 1736 - 45 ई० ) के समय में मुगल प्रभाव अत्यधिक फैला । पर राजा गज सिंह ( 1745 - 53 ई० ) के समय में बीका ने चित्रकला पर मुगल प्रभाव एकदम समाप्त हो गया । सूरत सिंह के समय में 1786 में " महिष मर्दिनी " का चित्र बना, कर्ण महल व चन्द्र

---

1. डा० आर० ए० अग्रवाल, कला विलास, पृ० 103

महल को चित्रित किया गया । आगे चल कर मुगल कलम का प्रभाव समाप्त हो गया और योरोपियन प्रभाव से बीकानेर कलम प्रभावित होने लगी ।[1]

कपि नाथ, पार्श्वनाथ जैन मन्दिरों में चित्रण हुआ । बीकानेर में रामायण, महाभारत एवं कृष्ण - लीला विषयों पर चित्रांकन हुआ। बरसते बादल में सारस मिथुनों की जोड़ी नयनाभिराम है ।

उपर्युक्त विवेचन से बीकानेर शैली के क्रमिक विकास पर प्रकाश पड़ता है । रसिक - प्रिया, राग माला, श्रृंगारिक आख्यान, आखेट व व्यक्ति चित्रण इस शैली के प्रिय विषय वस्तु रहे हैं । जो कि इसकी उत्कृष्टता एवं शालीनता के द्योतक हैं ।

3· <u>नागौर शैली का विकास क्रम :</u>

मारवाड़ चित्र शैलियों में नागौर एक उप - शैली होते हुए भी अपना विशिष्ट स्थान रखती है । नागौर के किले में प्राप्त भित्ति चित्रों से स्पष्ट होता है कि ये चित्र कितने व्यापक और उत्कृष्ट थे । जनानी ड्योढ़ी, मर्दानी ड्योढ़ी और ग्रीष्म महल की दीवालों और छतों पर नारियों, पशु - पक्षियों और धार्मिक विषयों के चित्र बने हैं । इन चित्रों में हाथियों की लड़ाई, स्त्रियों का मन्दिर - गमन ( चकरी ( लट्टू और खेल, सन्यासी एवं भक्त गण और छत पर नृत्य का अंकन अपने

---

1· डा० आर० ए० अग्रवाल, कला विलास, पृ० 104

में अद्वितीय बन पड़े हैं । अभी ये चित्र अपनी क्षीण अवस्था में हैं । मैंने जब नागोर किले का सर्वेक्षण किया तो ये पाया कि शीघ्र ही ये चित्र नष्ट हो जायेंगे ।[1] परन्तु इन चित्रों की चित्रण - प्रणाली इतनी अच्छी है कि मारवाड़ के अन्य चित्रों में इन्हें महत्त्व पूर्ण स्थान दिया जाय तो सभी कलाविद् एकमत होंगे । अब इन भवनों एवं महलों की छतें - दीवारें गिर रही हैं और नगर निवासियों ने अपने निवास बना लिए हैं । यह एक छोटा ठिकाना है । आवागमन के साधन की कमी है, जिससे यह एक स्वतन्त्र शैली के रूप में पनपी । दीवाल के चित्रों पर इतनी सुन्दर घोटाई की गयी है जिसमें शीशे की भाँति चमक है । चित्रों में टिपाई खुलाई का अच्छा मेल प्रस्तुत हुआ है ।

नागोर के स्थानीय परिवेश की भाँति इन चित्रों की पृष्ठ भूमि और अग्रभूमि भी चित्रित हुयी है । (चित्र संख्या - ५ ) पानी का अभाव होने के कारण यहाँ के राजा ने शुष्क एवं गर्मी को दूर करने के लिए " शीत महल " का निर्माण कराया है, जिसके ऊपर छतों से बहता पानी खिड़कियों - झरोखों युक्त आराम दायक कक्ष बना था व उसकी व्यवस्था देखकर आज भी उन कम साधनों के होते हुए भी सुन्दर निर्माण हुआ था, देखकर आश्चर्य होता है ।

नागोर के चित्रों में रंग चटकीलें हैं । रेखायें बारीक और

---

1. स्वयं का सर्वेक्षण - 21 अक्तूबर, 1988

लयात्मक हैं । स्त्री और पुरुषों के कद सामान्य हैं । यहाँ तक कि पशु-पक्षियों को भी स्वाभाविक रूप में बनाया गया है । § चित्र संख्या-29 § स्थानीय वेश - भूषा और अलंकरण, आकृतियों पर सुन्दर बन पड़े हैं । " मारवाड़ क्षेत्र " की शुष्क और मरुस्थलीय भूमि का एक पुष्प -नागोर माना जाता है, जिसका उत्कर्ष चित्रों को देखने में मिलती है । एक जीवन्त गतिमयता रास - क्रीड़ारत नारियों के समूह वाले चित्र से होता है । स्त्रियों के सिर पर लगी पगड़ी, मुगलिया प्रभाव का द्योतक है ।

नागोर दुर्ग की दीवार के पास गणेश प्रतिमा है, जिसे चोर ले जाना चाहते थे, पर वहाँ से आगे जा नहीं सकी । महल के जालियों के गायब हो गये हैं । दुर्ग के द्वार पर हाथियों के युद्ध का चित्रण है । महल के दरवाजे पर पुरुष एवं नारियाँ मोरछल हाथ में लिए हुए अंकित की गयी है ।

वास्तव में नागोर चित्रांकन - परम्परा पर जयपुर का प्रभाव परिलक्षित होता है । फिर भी यह एक स्वतन्त्र शैली के रूप में अपनी अस्मिता व वर्चस्व स्थापित करने में समर्थ हैं । § चित्र सं० - 29 §

4· <u>किशनगढ़ शैली का विकास क्रम :</u>

18 वीं शती के मध्य में किशनगढ़ शैली में एक प्रेमल एवं रागात्मक चित्र - शैली का विकास हुआ, जिसने राजस्थानी चित्र - परम्परा में अपना विशिष्ट स्थान बनाया । राधा - कृष्ण से सम्बन्धित विषय - वस्तु को अत्यन्त ही सुकोमल एवं आलंकारिक शैली में प्रस्तुत किया । इस शैली में ललित - तत्व कांगड़ा - शैली की तरह दृष्टि-

गत होते हैं।[1]

" पहाड़ी शैली में जो स्थान गुलेर, कांगड़ा का है, वही स्थान राजस्थान में किशन गढ़ का है।"[2]

किशनगढ़ को जोधपुर के राजा उदय सिंह के आठवें पुत्र किशन सिंह ने ‖ 1608 ई0 ‖ में बसाया था। राज सिंह ‖ 1707 - 48 ई0 ‖ के समय के चित्रों में हरियाली से भरपूर दृश्यों में लम्बोत्तरी नारियों की आकृति चित्रित की गयी है। ‖ चित्र सं0 मु०पृ० ‖

सावन्त सिंह ‖ 1748 ई0 ‖ के राज्य - काल में किशन गढ़ की चित्र शैली को एक नवीन दिशा प्राप्त हुयी। वे संस्कृति एवं कला के महान उन्नायक एवं पोषक थे। स्वयं एक संवेदन शील कवि होने के नाते उन्होंने चित्रकला को नया स्वरूप प्रदान किया। नारी - सौन्दर्य की सुकोमल अंकन की पराकाष्ठा अत्यन्त ही दुर्लभ है। " निहाल चन्द"[3] ने राधा का ऐसा लालित्य पूर्ण एवं कलात्मक स्वरूप चित्रित किया है, जो विश्व भर में ख्याति प्राप्त किया है। उन्नत ललाट वाला लम्बोतर चेहरा धनुषाकार भौंहें; विशाल नेत्र, पतले ओंठ, लम्बी नोकीली आँख और पतली चिबुक ‖ ठुड्डी ‖ है। लहराती घनी अलकावली तथा बरौनियाँ

---

1· प्रो0 सी0 एस0 मेहता - शोध प्रबन्ध ‖अप्रकाशित‖ पृ0 53

2· डा0 आर0 ए0 अग्रवाल - कला विलास, पृ0 104

3 · श्री प्रेमचन्द्र गोस्वामी - किशन गढ़ शैली· " राजस्थान की लघु चित्र शैलियाँ, पृ0 32

आदि सभी का अंकन सिद्ध हस्त कौशल का प्रमाण प्रस्तुत करता है। §चित्र संख्या - 47 §

प्रकृति - चित्रण भी किशनगढ़ शैली में विशेष प्रकार से हुआ है। दूर तक क्षितिज रेखा को चित्रों में विभाजित कर हरियाली के बीच महल अंकित किए गये हैं। वृक्ष आकारों में कहीं - कहीं नारी आकृतियों का समूह दिखायी देता है। वातावरणीय परिप्रेक्ष्य दिखाने में चित्र - कार ने काफी सावधानी बरती है। § चित्र सं० - मु०पृ० §

रीति कालीन काव्य धारा का अत्यन्त ही मनोहारी प्रभाव किशनगढ़ शैली पर पड़ा, जिसके कारण नारी स्वरूप में कमनीयता - चारुता परिलक्षित होती है। गहरे हरे रंग, कदली वृक्ष लता - गुल्मों से फूटती पुष्पावलियाँ हैं। महलों, अलिन्दों, किलों का अंकन वास्तुकला की चरमोन्नति का स्वरूप प्रस्तुत करता है। बादलों के मध्य आकाश में डूबते सूरज की लालिमा का अंकन जन - मानस के लालित्य - बोध का परि - चायक है। " सम्पूर्ण वातावरण रहस्यात्मक हो उठा है। "[1]

| | |
|---|---|
| राजा किशन सिंह | 1608 - ई० |
| राजा सहसमल | 1615 - 18 |
| राजा जगमल | 1618 - 29 |
| राजा हरि सिंह | 1620 - 43 |

---

1. प्रो० सी० एस० मेहता - शोध प्रबन्ध §अप्रकाशित§, पृ० 54

| | |
|---|---|
| राजा रूप सिंह | 1643 - 58 ई0 |
| राजा मान सिंह | 1658 - 1706 |
| महाराजा राज सिंह | 1398 - 1706 - 48 ई0 |
| राजा सावन्त सिंह | 1699 - 1718 |

कृष्ण - भक्ति में लीन इस कन्हैया ( सावन्त सिंह ) हृदय में एक लवनोना गायिका " बनी - ठनी " का रूप था । यही गायिका - सावन्त सिंह की " पासवान बनी । इसका मनमोहक स्वरूप " कनक छरी सी कामिनी " की तरह था । ( चित्र सं0 - 47 )

" निहाल चंद " द्वारा नागरी दास के काव्य का चित्रण ( 1735 - 1757 ई0 ) के मध्य हुआ । " अमरु " और " सूरजमल " ने भी इसी समय में चित्रण - परम्परा समृद्ध किया । " नानकराम " के वंशज रामनाथ व जोशी सवाई राम तथा सीताराम व बदन सिंह का नाम विशेष उल्लेखनीय है ।

कल्याण सिंह ( 1798 - 1832 ई0 ) के समय में "गीत-गोविंद" का चित्रण लाडलीदास ने किया, जो किशनगढ़ के संग्रहालय में है।मोहकम सिंह 1832 - 40 व महाराजा पृथ्वी सिंह 1840 - 79 ई0 के समय में जयपुरी छाया प्रकाश - पद्धति ने किशनगढ़ शैली को प्रभावित किया और इसके ही उपरान्त, यह शैली पतनोन्मुख हो चली ।[1]

---

1. डा0 आर0 ए0 अग्रवाल - कला विलास, पृ0 606

जैसलमेर चित्रशैली का विकास क्रम :

जैसलमेर, सुदूर पश्चिम में देश का रेगिस्तानी नगर अपनी क्रोड़ { गोद } में चित्र मूर्ति तथा स्थापत्य की त्रिवेणी बहाये है । जहाँ की हर गली, जाली, झरोखों में साधना की गाथा गाती है, जहाँ मन्दिरों की रचना शैली में मरु - गुर्जर स्थापत्य के प्राण स्पन्दित होते हैं, जहाँ भंगिमा के छंदों पर नृत्य करती मूर्तियाँ, कन्दिरों में आठोयाम तीर्थंकरों का स्तवन रत जन - जानस, जहाँ महलों तथा निवासों की भित्तियों पर एक ओर मूर्तिमान " गणपति " अनुग्रह लुटाते हैं तो दूसरी ओर मयंक - मुखी नायिका, तोड़ी रागिनी छेड़ती है { चित्र संख्या —— } । जहाँ ग्रन्थ भण्डार अपने गर्भ में चित्रों का बहुमूल्य संग्रह छिपाये हुए है, वहीं जैसलमेर के दुर्ग के चूणान्त प्रकोष्ठ से जन - जन के द्वारों तक चित्रों की एक ऐसी धारा बही जो रेगिस्तानी नदी की भाँति कहीं स्पष्ट वेग से तो कहीं भूमिगत होकर भी अपने प्रवाह को अक्षुण्ण बनाए रखने में समर्थ है ।[1]

[2] जैसलमेर चित्र शैली के विकास क्रम जैसलमेर में प्राप्त चित्रों के आधार पर किया जा सकता है । जैसलमेर के चित्रों को चित्रतल के आधार पर प्रमुख चार वर्गों में विभाजित करके उनके विकास - क्रम को स्पष्ट किया जा सकता है -

---

1. डा० शुकदेव श्रोत्रिय - शोध प्रबन्ध{अप्रकाशित} पृ० 33

2. तवारीख जैसलमेर, पृ० 55

1· भित्ति चित्र, 2· हस्तलिखित ग्रन्थों के चित्र, 3· काष्ठ-पट्टिकाओं के चित्र, 4· लघु चित्र ।[1]

भित्ति चित्रों का निर्माण दुर्गों, महलों, हवेलियों में कराया गया जो कि तत्कालीन राजाओं, महाराजाओं, श्रेष्ठि वर्गों की कला - प्रियता का परिचायक है, जिन्होंने कला के विकास में अपना अमूल्य योगदान दिया ।[2]

हस्तलिखित ग्रन्थों को अनुरंजित करने में जैसलमेर के चितेरे पीछे नहीं रहे । कला की गति को विकसित एवं प्रभाव शालिनी बनाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे । काष्ठ - फलकों के चित्रण पुस्तकों की आवरण पट्टिकाओं के रूप में चित्रित किये गये ।[3]

लघु चित्र, जैसलमेर चित्र कला की मुख्य धारा है जो कि जैसलमेर की चित्रण - परम्परा के विकास को गति प्रदान करती है । लघु चित्र ग्रन्थ भण्डार, दुर्ग नथमल दीवान संग्रह, जीतमल सोनी संग्रह, मानक लाल सोनी संग्रह तथा अन्य स्थानों पर प्राप्त हैं । जो कि जैसलमेर चित्र शैली के विकास के इतिहास को श्रृंखला - बद्ध करते हैं ।

---

1· डा० शुकदेव श्रोत्रिय - शोध ग्रन्थ {अप्रकाशित}, पृ० 34

2· डा० व्यास, रामायण कालीन कला - सिद्धान्त और साधन, पृ० 82

3· डा० अग्रवाल , संस्कृत साहित्य में चित्रकला सम्बन्धी, शब्दावली, पृ० 95

2· <u>मारवाड़ चित्र शैलियों के प्रतिष्ठान :</u>

मारवाड़ के प्रसिद्ध नगरों एवं रियासतों - जोधपुर, बीकानेर, नागोर, किशनगढ़ और जैसलमेर आदि स्थानों के रजवाड़ों, ठिकानों, सुरुचि सम्पन्न व्यक्तियों में चित्र संग्रह करके कला की अनुपम धरोहर को अमूल्य निधि की भांति सुरक्षित रखने की परम्परा रही । चित्रकारों को आदर, सम्मान मिलता था और चित्रों के एलबम को विशेष अवसरों पर अतिथियों को दिखाये जाते थे । महलों, निवास स्थानों एवं प्रवेशद्वारों को चित्रित किया जाता था ।[1]

मारवाड़ चित्र शैली के रजवाड़ी प्रतिष्ठानों के अतिरिक्त हवेलियों, व्यक्तिगत श्रेष्ठि - महाजनों की चित्रशालाएँ और धार्मिक - स्थलों पोथी चित्रणार्थ ठिकानों पर चित्रण कार्य अबाध गति से चलता रहा । किसी चित्रकार की निजी चित्रशाला का कहीं उल्लेख नहीं प्राप्त होता । चित्रकार, राजाओं, महाराजाओं, रियासतदारों, मनसबदारों, श्रेष्ठि - साहूकारों तथा सुरुचि - सम्पन्न व्यक्तियों के आश्रय में रहकर उनकी इच्छानुकूल चित्रण कार्य किया करते थे ।[1]

चित्रण - कार्य उपरोक्त प्रतिष्ठानों, राजकीय, अराजकीय एवं व्यक्तिगत ठिकानों पर सम्पन्न किया जाता था ।

---

1· डा० आर० ए० अग्रवाल, कला विलास, पृ० 95

2· रामगोपाल विजयवर्गीय - राजस्थानी जैन चित्र शैली, पृ035

जोधपुर शैली के चित्रों में पाली, जालौर व मांडोल स्थानों का चित्रण होने के कारण, इस शैली से जुड़ा है। प्रसिद्ध इतिहासकार लामा तारा नाथ ने " श्रृंगधर " का उल्लेख इसी शैली से किया है। नाथ पन्थी परम्पराओं से अलग जैन और वैष्णव साम्प्रदायिक विषय भी चित्रकारों की तूलिका का विषय बने हैं। इस शैली में पुस्तक चित्र, जिनमें रामायण, दुर्गा चरित्र, शिव पुराण, शिव रहस्य व ढोलामारू चित्र बने हैं। इनमें वर्ण संगति, पृष्ठभूमि व अग्र भूमि और मुखाकृति विशिष्ट रूप से बनी है। वेश - भूषा पर मुगलिया प्रभाव है। {चित्र सं॰ 62} नारी आकृतियों में ललाट बाहर को निकला व आभूषणों की भरमार दिखायी पड़ती है। इन चित्रों में क्षेत्रीय स्वरूप विशिष्ट रूप से सामने आया है। व्यक्तिगत संग्रहों व संग्रहालय में यहाँ के चित्र बहुतायत से मिलते हैं।[1]

बीकानेर शैली में राठौड़ी - परम्परा से युक्त आकृतियों का स्वरूप प्रस्तुत हुआ है। थेड़िया रंग महल, दुर्ग, हवेलियाँ आदि में चित्रों की भरमार है।

रसिक प्रिया, राग माला, आखेट, श्रृंगारिक विषय आदि चित्रित हुए हैं। इसमें पीले, नीले और स्वर्ण रंगों का प्रयोग हुआ है। चित्रों में स्थापत्य के साथ - साथ मुगलिया वेश - भूषा का अंकन भी

---

1. सुन्दर मोहन स्वरूप भटनागर - मारवाड़ और जोधपुर शैली, पृ० 46

कहीं - कहीं मिल जाता है । यहां चित्र भी व्यक्तिगत व राजकीय संग्रहालयों में संग्रहीत हैं ।[1]

यहां के चित्रकारों ने परम्परा को जीवन्त ही नहीं रखा, बल्कि उसे पोषित कर अमर रूप भी प्रदान किया है । विशेषता तूलिकानापन इस शैली की विशेषता है । मारवाड़ी शैलियों में इसका एक विशिष्ट विशिष्ट स्थान भी है ।[2]

नागोर शैलियों के प्रमुख प्रतिष्ठानों में जनानी ड्योढ़ी, मर्दानी ड्योढ़ी और ग्रीष्म महल और नागोर का किला तथा शीतमहल आदि विशेष उल्लेखनीय है । वातावरणीय प्रभाव और सुचारु रूप देख - रेख की व्यवस्था न हो पाने के कारण चित्र प्रायः नष्टप्राय हो रहे हैं । भित्ति चित्रों में फ्रेस्को - सेक्का चित्रण विधि से चित्र बनाये गये है । जनानी ड्योढ़ी के मध्य स्नानागार के निकट बरामदे की दीवारों पर चित्रण - कार्य हुआ है, जो अब काफी क्षतिग्रस्त हो गये हैं । उपरोक्त स्थानों एवं प्रतिष्ठानों पर प्राप्त चित्रों की चित्र - प्रक्रिया एवं शैली अत्यन्त उन्नत स्वरूप में थी ।[3]

किशनगढ़ शैली के चित्र पुराने किशनगढ़ नगर के दुर्ग, महल

---

1· कुमार सम्भव, बीकानेर शैली पृ 67

2· ब्रजेश कुलश्रेष्ठ, राजस्थानी लघु - चित्रकला : विषयवस्तु एवं रूपांकन, पृ0 70

3· स्वयं सर्वेक्षण, दिनांक 15·6·88 पर आधारित ।

और छतरियों में उपलब्ध हैं। ये भित्ति चित्र महल की दीवारों पर बने हैं। दुर्ग के चित्र नष्ट हो गये हैं। किशनगढ़ की छतरियों में अब भी सुन्दर चित्र मिलते हैं। यहाँ के चित्रकार निहाल चन्द के वंशज आज भी चित्रण कार्य करते हैं, परन्तु जो लघु चित्र उपलब्ध हैं, वे निजी, भारतीय और विदेशी संग्रहालयों में देखे जा सकते हैं।[1]

महाराजा सांवत के शासन काल में राधा - कृष्ण का स्वरूप प्रेमालाप के साथ प्राप्त हुआ, जो इन चित्रों की विशेषता रही है।[2]

जैसलमेर के भित्ति चित्र के प्राप्य स्थानों में यहाँ के दुर्ग का रंग महल नगर के पटुओं की हवेली, ऋषभ देव का मन्दिर, नथमल दीवान की हवेली, चौगा नगाड़ा, रणवीर सिंह की हवेली, नगर में भानु शर्मा का हवेली और पुस्तक चित्र दुर्ग भण्डार और काष्ठ पट्टिकाओं में भी मौजूद है।[3]

लघु चित्रों के संग्रह के पाँच स्थान प्रमुख स्थान हैं - 1. दुर्ग का ग्रन्थ भण्डार, 2. नथमल दीवान की हवेली, 3. जीतमल सोनी, 4. मानक लाल सोनी तथा कुछ व्यक्तियों के निजी संग्रह है।

इस प्रकार चित्रों के अध्ययन के लिए रंग महल, पटुओं की हवेली, नथ मल दीवान की के हवेली, ग्रन्थ - भण्डार, जीतमल सोनी तथा मानक

---

1. प्रेमचन्द गोस्वामी, किशनगढ़ शैली, पृ0 29
2. वाचस्पति गैरोला, भारतीय चित्रकला, पृ0 162
3. दीनदयाल ओझा, जैसलमेर शैली, पृ0 60

लाल सोनी के संग्रह हैं ।

जैसलमेर में उपलब्ध वर्गीकृत चित्र सामग्री के प्राप्तिस्थान इस प्रकार हैं -

| | | |
|---|---|---|
| 1· | भित्ति चित्र - | रंग महल दुर्ग, मन्दिर दुर्ग, नथमल दीवान की हवेली, पटुओं की हवेली व पटुओं की हवेली - 5 है । |
| 2· | पुस्तक चित्र - | ग्रन्थ भण्डार दुर्ग: जैसलमेर । |
| 3· | काष्ठपट्टिकाओं के चित्र- | ग्रभण्डार दुर्ग, सोनी, नगर ग्रंथ - भण्डार दुर्ग |
| 4· | लघु चित्र - | नथमल दीवान का संग्रह, जीत मल सोनी मानक लाल सोनी तथा अन्य |

3· <u>मारवाड़ चित्र शैलियों का स्वरूप तथा विवेचना -</u>

मारवाड चित्र शैली के अन्तर्गत करने वाली उप - चित्रशैलियों के स्वरूप निर्धारण एक दुरुह कार्य है क्योंकि इन शैलियों पर दक्खिनी शैली मुगल शैली और जैन तथा शास्त्रीय शैली मुगल शैली और जैन तथा शास्त्रीय शैली अजन्ता के प्रभाव यत्र - तत्र परिलक्षित होते हैं । फिर भी पूर्व चर्चित मारवाड़ की विभिन्न शैलियों की अपनी - अपनी विशेषताएँ हैं, जो अपने " निजत्व " एवं " अस्मिता " के वर्चस्व को स्थापित करने में समर्थ हैं ।

जोधपुर, बीकानेर, नागौर, किशनगढ़ व जैसलमेर शैलियाँ अपने-

अपने क्षेत्र की सोंधी माटी की महक से अनुप्राणित होती हुयी स्थानीय लोकाचार, रीति - रिवाजों, तीज - त्योहारों, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, प्राकृतिक व भौगोलिक प्रभावों को आत्मसात् करती हुई अपनी विशिष्टताओं को दर्शक के सम्मुख प्रस्तुत करने में समर्थ है ।

चित्रों की सहजता एवं सम्प्रेषणीयता तथा कमनीयता दर्शक का मन मोह लेती है जो कि सराहनीय है । उदाहरणार्थ, किशनगढ़ शैली के बारे में कला मर्मज्ञ राज गोपाल विजय वर्गीय ने लिखा है -[1]

इन चित्रों की रूप माधुरी आँखों को लुभाकर इतना वशीभूत कर लेती है कि पुनः - पुनः इन चित्रों को देखने का मोह कला - मर्मज्ञों को होने लगता है ।"

---

1. डा० आर० ए० अग्रवाल, कला विलास, पृ० 108

-53

# तृतीय अध्याय

## तृतीय अध्याय

## " मारवाड़ चित्र शैलियों का वर्गीकरण, विशेषताएँ, प्रमुख चित्र, चित्रकार एवं महत्व"

1· पूर्व पीठिका

2· वर्गीकरण

1) जोधपुर :

(1) विशेषताएँ

(2) प्रमुख चित्र

(3) प्रमुख चित्रकार

(4) महत्व

2) बीकानेर :

(1) विशेषताएँ

(2) प्रमुख चित्र

(3) प्रमुख चित्रकार

(4) महत्व ।

3) नागौर :

(1) विशेषताएँ

(2) प्रमुख चित्र

(3) प्रमुख चित्रकार

(4) महत्व

4) किशनगढ़:

(1) विशेषताएँ (2) प्रमुख चित्र

(3) प्रमुख चित्रकार (4) महत्व

5) जैसलमेर :

(1) विशेषताएँ (2) प्रमुख चित्र (3) प्रमुख चित्रकार (4) महत्व

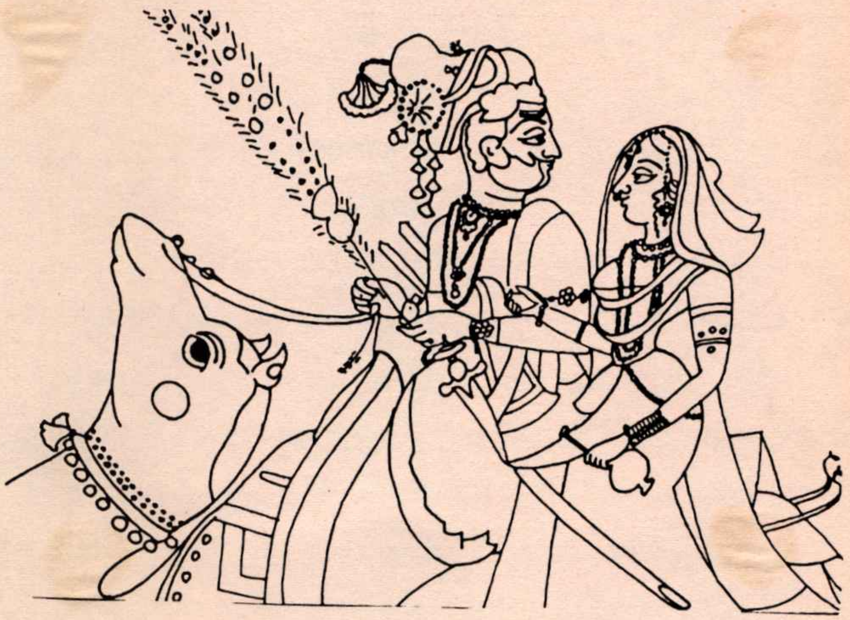

तृतीय अध्याय

## १. पूर्व - पीठिका :

कला, मानव मात्र की रचनात्मक शक्ति के सौन्दर्य की सत्यमय अभिव्यक्ति है। अतः सौन्दर्य वह है, जो तुम्हारी आत्मा को आकर्षित करता है यह सुख और दुःख से मिलकर बनी एक शोभा है, यह अदृश्य है, जिसे तुम देखते हो और वह अनन्द है जिसे तुम जानते हो और वह अव्यक्त है, जो स्वयं तुममें आरम्भ होता है और तुम्हारी लौकिक -

कल्पना के बहुत परे जाकर समाप्त होता है । इस प्रकार मानव की किसी रचनात्मक शक्ति की अभिव्यक्ति मानव - मात्र के लिए आकर्षण रखती है । मानव की रचनात्मक शक्ति आपने और प्रकृति के बीच हुयी या अपने स्वजातीय के प्रति उत्पन्न भावना के अनुभवों से उसके सम्मुख आती है ।साथ में यही कला सभी संकुचित क्षेत्रों व संकीर्णताओं से ऊपर उठकर मानव -मात्र के बीच आत्मीयता का विकास करती है । कला, मानव की उन भावनाओं से उत्पन्न होती है, जहाँ किसी प्रकार की मलीनता नहीं होती । ज्यों - ज्यों कला विकसित होती जाती है, वह सूक्ष्म होती जाती है । विकसित का सम्बन्ध समय, श्रम और उम्र के साथ नहीं जोड़ा जा सकता । यदि हम केवल जीवन के सुख - सौन्दर्य को ही चित्रित करें तो कला अधूरी रह जायेगी, यह तो एक ऐसा विचार होगा कि हम धूप में खड़े रहें, लेकिन हमारी छाया न पड़े । इसलिए जीवन के दुःख, असौन्दर्य व संघर्ष की अभि-व्यक्ति करनी होगी तभी जीवन के सत्यों की परख हो सकेगी ।

भारतीय कला में राजस्थान प्रान्त अपना एक अलग अस्तित्व बनाये हुए हैं । यहाँ के दुर्ग, महल, हवेलियाँ, मन्दिर, छतरियाँ और थड़े अपनी अतीत की कहानियों से ऐसे जुड़े हैं, जिनमें यहाँ का शौर्य, परम्परा और सांस्कृतिक स्वरूप साक्षात् हमें उस समय पर पहुँचा देता है, जब इनके शासकों ने इन्हें अपनी गौरवमय गाथा के साथ बनवाया था । यहाँ की भोली जनता आज भी उन्हीं के पीछे अपनी आस्थाओं में विश्वास रखती हुयी चली आ रही है । समय परिवर्तनशील है, पर यहाँ उनमें इतना बदलाव नहीं आया है । ये धर्मभीरु राजपूत अपनी संस्कृति के इतने हामी हैं, जो इनमें इनके मिलते ही समझ आने लगते हैं ।

कुशवाहे, राठोड़, हाड़ा और सिसोदिया इन चार वंशों ने राजस्थान के अधिक भू - भाग को अपने अधिकार में कर लिया और इन्हीं के चार प्रधान नगर राजस्थान की कला के चार प्रधान पीठ बने ।ये प्रांत हाड़ौती, मेवाड़, मारवाड़ और ढूंढार के नाम से विख्यात हैं[1] तथा जयपुर, जोधपुर, बूँदी, उदयपुर, राजस्थानी कला के उद्गम केन्द्र थे । इन्हीं चार प्रधान केन्द्रों से अनेक छोटी - छोटी सहगामिनी या सहायक शाखायें बनीं जो इस प्रकार हैं - बूँदी - कोटा एक सूत्र में, जोधपुर, जैसलमेर, नागोर और किशनगढ़ एक में । उदयपुर, मेवाड़, नाथद्वारा, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ एक रूप और जयपुर, करोली, अलवर और भरत पुर एक सूत्र में । इस प्रकार राजस्थानी शैली केवल राजस्थान में फलने फूलने वाली चित्र परम्परा है, जिसके प्रत्येक दृष्टि से अपनी एक मर्यादा, एक विशेषता है । अपनी इसी स्वतन्त्र सत्ता के आधार पर आज विश्व के सभी कलाविद् राजस्थानी चित्रों को सर्वोपरि मान रहे हैं । इस नवीन युग की कला का नेतृत्व केवल राजस्थानी कला कर सकती है ।यह व्यावहारिक दृष्टि से सबको अवगत हो चुका है । इन चित्रों की कड़ी अजन्ता काल के चित्रों से जुड़ती चली आ रही है । पन्द्रहवीं और चौदहवीं शती के राजस्थान में बने चित्र व्यक्त करते हैं कि उनमें अजन्ता काल और राजपूत काल दोनों नेतृत्व विद्यमान हैं । जो कुछ हेरफेर हुआ, वह वेश - भूषा,अलंकार श्रम और साधना मात्र का है । मूल सिद्धान्त यथावत् अजन्ता के पूर्व काल से लेकर आज तक जीवित है । वे भारतीय परम्परा में जीवित भी रहें इसका प्रयत्न करना भी बड़ा आवश्यक है, अन्यथा विदेश से आये हुए आधुनिक प्रभाव को भारत की मौलिकता को अप्रमाणिक और क्षणिक निर्णयों के

---

1· "विनय" - अलवर अंक, पृ0 159

आवरण में ढक लेंगे । विविध धर्मों ने भी कला को पुष्ट किया । इसका प्रमाण है - कोटा और बूँदी के हाड़ा, वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायियों व जोधपुर के राठोड़ नाथ सम्प्रदाय के शिष्य थे, कछवाहे शाक्त एवं फिर वैष्णव बने । सिसोदिया शैव तथा किशनगढ़ के राठोड़ वल्लभ के पुष्टि मार्गीय मत के अनुयायी थे । इन सभी धर्मों ने अपने - अपने पूज्य को साकार उपासना की श्रेणी में लाने के लिये चित्रकला का आश्रय लिया । उधर जैनों ने भी धर्म प्रचार के लिए चित्रकला को माध्यम बनाया । इन सबमें वैष्णव, सम्प्रदाय की उपासना अधिक सगुण था ।

जैसलमेर उपरोक्त भावनाओं व परम्पराओं का एक ऐसा प्रतीक नग है, जिसमें इसे देखते ही प्रातःकाल की सूर्य की किरणों से प्रकाशित नीले आकाश में उठे हुए पीले पत्थर के दुर्ग की छवि अविस्मरणीय है । पत्थर की तराश से सज्जित नगर के भवनों के झरोखों, हवेलियों की आचूड़ नक्काशी तथा महलों के कलात्मक स्थापत्य के बीच यहाँ के चित्रण की धारा एक रेगिस्तानी नदी की भाँति लुकती - छिपती दिखाई देती है । यहाँ के भित्तियों पर अनेक चित्र बने हैं और यहाँ के ग्रन्थ भण्डार में चित्रित ग्रन्थों को तो देखते ही बनता है । अनेक लघु चित्र भित्तियों में चूने के फ्रेम में सोना शीशे में जड़े हुए देखे जा सकते हैं । यहाँ लकड़ियों की तख्तियों को कूट पर गणेश, लक्ष्मी , सरस्वती व तलवार की आकार की पट्टियों पर अनेक संयोजन तथा ग्रन्थ भण्डार की काष्ठ - पट्टिकाओं के चित्र इतने अद्वितीय हैं कि उनका अपना अस्तित्व व महत्व है ।भित्ति चित्रों के समूह रंग महल में, पटुआ हवेली, नथमल दीवान की हवेली इतनी प्रमुख है जो सभी को आकर्षण का केन्द्र बनी है ।[1]

---

1. दीनदयाल ओझा, राजस्थान की लघु चित्र शैलियाँ, पृ० 60

आज जैसलमेर नगर में स्थापत्य और चित्रकला की अनूठी शान यहाँ के गौरवमय अतीत का दर्पण है । भारत में ऐसे कम नगर हैं, जिनका ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्वरूप ऐसा रहा हो । यहाँ के शासकों ने अपनी अभिरुचि और लग्न से ऐसे उदाहरण प्रस्तुत कर दिये हैं, जिनका कोई सानी नहीं है । यह मरु भूमि शुष्क होते हुए भी संस्कृति के उस अपार समुद्र को समेटे हुए है, जिसमें सब कुछ देखने को मिलता है । भारतवर्ष के इतिहास में राजस्थान प्रदेश वीरता एवं शौर्य का पर्यायवाची शब्द सा बन गया है । रणबांकुरों के त्याग और बलिदान तथा वीरांगनाओं के आत्मोत्सर्ग, जौहर के पावन प्रसंगों द्वारा इस पवित्र भूमि की अर्चना के साक्षी अनेक भग्नावशेष इस भू - भाग में अपना ललाट ऊँचा किये खड़े हैं । ऐसी गौरवमयी परम्परा के प्रदेश में प्राकृतिक प्रकोपों से संघर्ष में जूझने की प्रवृत्ति नेह ही कदाचित राजस्थान के निवासियों में साहस और शौर्य का संचार किया । अभावों में अपने अस्तित्व के लिए जीवट के साथ संघर्ष में जुटे इस प्रदेश के निवासी वीर, कर्मठ तथा कला - प्रेमी रहे हैं । यही भावना जैसलमेर में घुसते ही सामने दीखने लगती है ।[1]

2· मारवाड़ चित्र शैली का वर्गीकरण :

विशेषताएँ : प्रमुख चित्र : प्रमुख चित्रकार एवं महत्व :

मारवाड़ शैली के चित्रों को क्षेत्रीय, सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा

---

1· दीन दयाल ओझा, राजस्थान की लघु चित्र शैलियाँ,पृ0 61-62

शैलीगत विशिष्टताओं एवं स्थित जन्य परिवर्तनों और सामाजिक तथा साहित्यिक प्रभावों से प्रभावित होते रहने के कारण, जो प्रभाव स्थानीय चित्रों पर परिलक्षित होते हैं, उनके आधार पर हम मारवाड़ी चित्रों को 5 वर्गों में विभाजित कर सकते हैं । कला - मर्मज्ञों ने इन उप - शैलियों का नामकरण क्षेत्र विशेष के आधार पर किया जो कि कला - समीक्षकों को एकमत होकर स्वीकारना चाहिए । यह वर्गीकरण निम्नवत् है -

क़ुँ जोधपुर चित्र शैली

ख़ुँ बीकानेर चित्र शैली

गुँ नागौर चित्र शैली

घुँ किशनगढ़ चित्र शैली

ङुँ जैसलमेर चित्र शैली

## क़ुँ जोधपुर चित्रशैली परम्परा की विशेषताएँ :

जोधपुर, मारवाड़ी संस्कृति ही नहीं वरन् साहित्य एवं चित्र - संस्कृति का केन्द्र बिन्दु रहा है । अध्याय - 2 में मारवाड़ी चित्रशैलियों के उद्भव एवं विकास आदि पर प्रकाश डाला जा सकता है । अब इस तृतीय अध्याय में शैलीगत विशिष्टताओं की विवेचना प्रस्तुत की जायेगी।

जोधपुर शैली के चित्रों के विषय भी मूल रूप से जयपुर, मेवाड़ तथा बूँदी शैली से भिन्न है । ऐसा लगता है कि जिस सांस्कृतिक पुनर्जागरण का सूत्रपात वल्लभाचार्य जी ने किया था, उससे मारवाड़ क्षेत्र काफी अछूता रहा । क्योंकि राधा - कृष्ण को लेकर यहाँ चित्र बहुत कम बने । और जो कुछ बने उनका आधार जयदेव का शृंगार - काव्य " गीत-गोविन्द" तथा केशव की " रसिक प्रिया " है । मूल रूप से जोधपुर शैली के चित्रों

के विषय प्रचलित लोक - कथाओं, ढोला मारु, मूमलदे, निहाल दे आदि हैं । जोधपुर के वीरों की शबीहें, {पोर्ट्रेट्स} भी समुचित मात्रा में मिलती है । अमर सिंह राठौड़, जुझार जी, दुर्गादास जी, पाबूजी, डबूजी, डूंग जी इत्यादि की बहुत सी शबीहें { व्यक्ति चित्र } बनायी गयी हैं। कबूतर उड़ाती हुई स्त्री, पेड़ की डाल को पकड़ कर झूलती हुयी स्त्री इत्यादि चित्र रचे गये । यद्यपि और दरबारी दृश्यों की इस कलम में भरमार है तथापि इसी प्रकार राग - रागिनियों और बारहमासा को ले कर काफी संख्या में चित्र बनाये गये हैं । कला के राजकीय मान को देखकर जोधपुर के सामन्तों ने भी कला को प्रोत्साहित किया तथा केवल जोधपुर में ही नहीं, वरन् सारे मारवाड़ में इस युग के चित्र सृजित हुए कुचामण, घाणेराव, नागोर, पाली, जालोर इत्यादि प्रमुख नगरों में चित्रशालाएं बनीं तथा सहस्त्रों की संख्या में चित्र बनाये गये । इन चित्रों की विशिष्ट-ताएं उल्लेखनीय हैं -

स्त्रियों के आभूषणों में मोतियों का बाहुल्य है । मुख्य आभूषण हैं जिनका प्रयोग चित्रों में किया गया है - टीका, टोंटी, बाली, केसर, लूंग, नथ, आड़, टेवटा, गलसरी, गण्ठी, हार, माला, लाकेट, भुजबन्द आदि । पैरों में जूर, कड़े तथा पायलों का उपयोग किया गया है ।[1]

स्त्रियों की पोशाक में लाल, नीला, पीला, केसरिया, कसूमल

---

1. श्री सुन्दर मोहन स्वरुप भटनागर - मारवाड़ अथवा जोधपुर - शैली, " राजस्थान की लघु चित्र शैलियाँ ", पृ0 50

रंग का प्रयोग किया गया है । स्त्रियों के मुख्य वस्त्र लँहगा, वसेड़ा, कांचली तथा लूगड़ी है । स्त्रियाँ चूड़ीदार पायजामा तथा उपर से पतला सफेद जामा पहने भी बनायी गयी हैं । इसी प्रकार किसी - किसी चित्र में स्त्रियाँ लुगड़ी की जगह दुपट्टा पहने हैं । पैरों में मखमली तथा सुनहरी जूतियाँ हैं । जोधपुर के राजाओं का मुगल बादशाहों से मैत्री सम्बन्ध होने के कारण, जोधपुरी चित्र संस्कृति भी प्रभावित हुयी । मुगलिया पहनावा, घंटीनुमा घाँघरे, घंटानुमा लम्बे फिलदार जामे बनाये गये तथा पगड़ियाँ अलंकृत की गयीं । कंचुकी चुस्त, साड़ी व ओढ़नी लहराई हुयी रेखांकित हुयी हैं ।

पुरुषाकृति लम्बी, मुखमण्डल तेज, शौर्य एवं विश्वास से प्रदीप्त लम्बी, उन्नत नासिका, अरुणाभ दीर्घ अक्ष - पटल चढ़ी हुयी दाढ़ी,कान तक खिंची मूँछें, राजपूती, साहस और सम्मान का परिचय देती हैं ।

सुकोमलांगिनी नारी आकृतियाँ लम्बी, ललाट वृद्धि, कपोलों तक लहराती हुयी सर्पाकार अलकावलियाँ, खंजनाकृति मधुमय नेत्र, उन्नत उरोज, अलंकरणों से अलंकृत शरीर कमनीयता एवं श्रृंगारिकता की परिचायक है ।

जोधपुरी चित्रों का वर्ण - विधान निःसन्देह ही आकर्षक बन पड़ा है । गऊ गोली वाले पीले रंग की अधिकता है । पीले ही रंग से सीमा - निर्धारण किया गया है । हाशिये लाल रंग से रेखांकित हैं। पृष्ठभूमि के अंकन में दक्षिणी कलम का प्रभाव परिलक्षित होता है । यत्र-तत्र हरे रंग का प्रयोग है ।

नभ - मण्डल में काले मेघ और विद्युत छटा की स्वर्णिम रेखायें तथा मेघों के मध्य से विचरण करती हुयी परियाँ स्वर्गिक वातावरण

उत्पन्न करने में सक्षम प्रतीत होती है । अन्य वृक्षों की अपेक्षा आम के वृक्ष अधिक बनाये गये हैं । ऊँट, घोड़ा तथा कुत्ता व हाथी का अंकन हुआ है। इस परम्परा का दिग्दर्शन बीकानेरी कलम में बहुतायत से किया गया है। मरु - प्रदेश होने के कारण चित्रों में भी वृक्षों, लता - गुल्मों एवं पुष्प-वल्लरियों की न्यूनता परिलक्षित होती है । यत्र - तत्र जलाशयों में कमल विकसित दृष्टिगत होते हैं । आम्र और कदली वृक्ष, पहाड़ियों पर झाड़ियां सुव्यवस्थित ढंग से चित्रित की गयी हैं ।

श्वेत संगमरमर की विपुलता का परिचायक सफेद रंगों से महलों, हवेलियों, थड़ों एवं छतरियों को अलंकृत किया गया है । भवनों की सौंदर्य अभिवृद्धि के लिए मयूर व कुर्जों पक्षियों का अंकन किया गया है । अलिन्दों, झरोखों द्वारों को भी अलंकृत किया गया है ।

ढोला - मारु, रामायण, महाभारत, नाथ - पंथ, भागवत - पुराण, शिव पुराण; दुर्गा - सप्तशती एवं राधा - कृष्ण सम्बन्धी भक्ति - भावना से ओत - प्रोत चित्र बनाये गये ।

नायक - नायिकायें, प्रेमालाप, राग - रागिनी, प्रतीक्षा, श्रृंगार प्रसाधन आदि श्रृंगारिक चित्रों का सृजन हुआ ।

जन - जीवन, तीज - त्योहार, उत्सव, मेला, भोज आदि सामाजिक एवं सांस्कृतिक चित्रों का प्रणयन हुआ ।

---

1. डा० आर० ए० अग्रवाल, कला विलास, पृ० 101

पाबूजी, हड्बू जी, मूमलदे, निहाल्दे आदि शूरवीरों, राजा, महाराजाओं, गणमान्य नागरिकों एवं श्रेष्ठि साहूकारों के व्यक्ति - चित्र सृजित किये गये ।

जोधपुर के सुप्रसिद्ध चित्र ढोला - मारू, दो सहेलियाँ,केशविन्यास रत नायिका, काँटा निकालते हुए अलबेली आदि हैं जो चित्र जगत की अमूल्य निधि हैं ।

कालूराम ﴾1831 ई0﴿, छज्जू भाटी ﴾ 1800 ई0﴿ जोधपुर के चित्रकारों में डालचन्द, वीर जी ﴾1623 ﴿ फेज अली, उदयराम, भाटी किशनदास, नारायणदास﴾1700﴿, भाटी शिवदास, भाटी देवदास,कुंहार गोपी अमरदास भाटी ﴾1750﴿, फतह मोहम्मद आदि प्रसिद्ध चित्रकार हैं।[1]

जोधपुर शैली के महत्व को नकारा नहीं जा सकता । मारवाड़ी चित्र संस्कृति ही नहीं वरन् समस्त राजस्थानी शैलियों में जोधपुर शैली का महत्व पूर्ण स्थान है । भारतीय चित्र जगत में यह शैली अपना वर्चस्व स्थापित करने में समर्थ हैं । " इसके रग - रग में शौर्य, त्याग और प्रेम की छटा भरी हुयी है ।"[2]

﴾ख﴿ <u>बीकानेर चित्र शैली परम्परा की विशेषताएं :</u>

मारवाड़ की चित्रशैलियों के अन्तर्गत बीकानेर शैली के उन्नायक

---

1· डा0 श्री सुन्दर मोहन स्वरूप भटनागर - मारवाड़ अथवा जोधपुर शैली "राजस्थान की लघु -चित्रण शैलियाँ, पृ0 50

2· डा0 आर0 ए0 अग्रवाल, कला विलास, 101

महाराज अनूप सिंह की कला - प्रियता यहाँ के राजवंश विशिष्ठ एवं अद्वितीय थी । वे कला और कलाकार दोनों का ही सम्मान करते थे । उनके आश्रय में रहकर तत्कालीन कुशल कलाकारों ने एक मौलिक किन्तु स्थानीय, प्रौढ़ किन्तु परिमार्जित चित्र - शैली को जन्म दिया, जिसे बीकानेर शैली के नाम से अभिहित किया जाता है ।[1]

बीकानेर शैली के चित्र यद्यपि अन्य मारवाड़ी चित्रों के मुकाबले में संख्या में अधिक नहीं हैं, तथापि इस शैली के जितने भी चित्र उपलब्ध हैं, वे ग्राम्य - कला के अनुरूप चित्रण के मार्मिक दृष्टिकोण से समृद्ध कला शैली के अद्वितीय नमूने हैं ।

यद्यपि कालान्तर में बीकानेर शैली पर मुगल शैली का काफी प्रभाव पड़ा और बीकानेर शैली मुगल कला की अनुगामिनी बनी, परन्तु कौशल एवं शिल्प के अनुपम चमत्कार, पृष्ठभूमि के प्राकृतिक अंकन सौष्ठव के कारण बीकानेर शैली अपना निजत्व कायम रखे रही । अनुगामिनी होकर भी मुगल शैली में खोई नहीं, लुप्त नहीं हुयी, वरन् अपने रूप - सौष्ठव को निखारती रही ।

फव्वारों, दरबारी सजावट एवं दृश्यांकनों में बीकानेर शैली के लघु - चित्र दक्षिणी कला शैली के पर्याप्त निकट हैं । इसका कारण कदाचित् यह रहा है कि यहाँ के शासकों की नियुक्ति दक्षिण में बहुत हुई है।

---

1. श्री कुमार सम्भव - बीकानेर शैली - " राजस्थान की लघु -चित्र शैलियाँ, पृ0 68

इस तथ्य का जिक्र श्री हरमन गोयत्ज ने अपनी पुस्तक " आर्ट एन आर्की-टेक्ट आफ बीकानेर, " में किया है । ़ चित्र सं० – 3 ़

भागवत कथा सम्बन्धी कतिपय चित्र जो नगर के संग्राहक के संग्रह में उपलब्ध है, विषय वस्तु की दृष्टि से बीकानेर शैली के सुन्दर चित्रों में से है ।[1]

महाराजा बीको जी द्वारा 1485 ई० में इस ऐतिहासिक नगर बीकानेर की स्थापना हुयी । " बीकानेर की चित्र संस्कृति, चित्र –जगत के सौर – मण्डल में जाज्वल्य मान नक्षत्र की भाँति उदीयमान हैं ।"

स्त्री पुरुषों की आकृति प्राय: जोधपुरी मुखाकृतियों से मिलती-जुलती हैं । यहाँ पर जोधपुर वाली दाढ़ी तथा खंजनाभ आँखें नहीं मिलतीं । बल्कि मुगलिया प्रेमासक्त एवं मादक नेत्र अंकित किये गये हैं । ़ चित्र सं० – 3 ़

स्त्री – पुरुषों की वेश – भूषा भी जोधपुर शैली के समान हैं। सिर्फ यहाँ के जामों और घाघरों में फहरन कम है । कंचुकियाँ या चोलियाँ कुछ शिथिल दृष्टिगत होती हैं । रानी अथवा सम्भ्रान्त महिलाएँ साड़ी पहने तथा साधारण और सेविकाएँ लँहगा – ओढ़नी पहने चित्रित की गई हैं । परन्तु राधा के चित्र प्राय: लँहगा – ओढ़नी में चित्रित किये गये हैं ।

---

1. श्री कुमार सम्भव – बीकानेर शैली " राजस्थान की लघु चित्र-शैलियाँ, पृ० 68

स्त्रियों के अंकन में अलंकार भी दृष्टिगत होते हैं । हार, बाजू-बन्द, चूड़ियाँ, कुण्डल आदि से नारियों को अलंकृत किया गया है ।

राजमहलों, दुर्गों, हवेलियों, छड़ों, छतरियों का अंकन किया गया है । कंगूरों पर अथवा अग्रभूमि पर दो दिशाओं में मयूरों का अंकन किया गया है । यहाँ गुम्बदों, भवनों, द्वारों, मीनारों का अंकन किया गया है ।

बीकानेरी चित्रों में पीले, नीले व स्वर्ण रंगों का प्रयोग किया गया है । बैंगनी पन लिए लाल रंग की एक विशेष तान का प्रयोग किया गया है, जो अत्यन्त ही आकर्षक एवं मन मोहक बन गयी थी । § चित्र संख्या - 3 §

बीकानेरी चित्रों में गोल मेघ - मालाओं में सारस मिथुनों, परियों तथा पक्षियों को विद्युत छटा के साथ चित्रित करने में चित्रकारों ने अपनी शैलीगत निपुणता का परिचय दिया है । § चित्र संख्या - 45 § नीले आकाश के ऊपर गोलाकार झालर सी बादलों की छटा शोभायमान होती है ।

भांडासर मन्दिर, शिवबाड़ी, आदि नाथ, पार्श्वनाथ आदि जैन मन्दिरों, राज्य के दुर्गों, द्वारों, महलों व हवेलियों में भित्ति चित्रण अत्यन्त कौशल - पूर्ण विधा से किया है ।

जैन धर्म ग्रन्थों का चित्रण महाभारत, रामायण, भागवत आदि वैदिक धार्मिक ग्रन्थों को विषयानुकूल चित्रण किया गया । ये पोथी-चित्र अत्यन्त ही मनो - मुग्धकारी है ।

धार्मिक ग्रन्थों पर आधारित आख्यानों, कहानियों, कथाओं, प्रेमाख्यानों, रसिक - प्रिया, राग - माला, आखेट, युद्ध, शृंगार, - प्रसाधन तथा परियों का अंकन अत्यन्त ही निपुणता और मनोयोग से किया जाता था।

निष्कर्षतया बीकानेर कलम के बारे में यह उद्धृत किया जा सकता है कि -[1]

बीकानेर के प्रमुख चित्रों में सारस मिथुन, राग - रागिनिया, राजाओं की शबीहें, आखेट, रसिक - प्रिया, प्रेमाख्यान, शृंगारिक - चित्रण तथा दरबारी दृश्य हैं। बीकानेर किले के सुजान अलिंद के दरवाजे पर बने गायकों व कृष्ण - लीला के चित्र, नारी - शिकिका, पेड़ के नीचे नारी, फुलझड़ी छोड़ती नारी; महिषमर्दिनी आदि उल्लेखनीय चित्र हैं।[2]

---

1. " बीकानेर स्कूल इज ए हयब्रिड आफ दि मुगल एण्ड डेकन स्टाइल्स इन दि फारमर स्टैजेज एण्ड विद दि कोर्स आफ दि टाइम इट इमबाइब्ड दि जयपुर एण्ड जोधपुर इनफ्लुएन्सेस."

एच. गोयत्ज

2. श्री कुमार सम्भव, बीकानेर शैली " राजस्थान की लघु - चित्र शैलियाँ, पृ0 68

बीकानेर के सुप्रसिद्ध चित्रकारों में रहीम खाँ, नाथू उस्ताद कादिर, ‡ पातमा उस्ताद ‡, रुकनुद्दीन, ‡ यह दरबारी मुसव्वर था‡ अली रजा व हसन रजा व उस्ताद शिहाबुद्दीन, मुराद, कायम, शाह मुहम्मद, राम लाल आदि चित्रकारों का नाम उल्लेखनीय है ।[1]

बीकानेर शैली पर दक्खिनी शैली और मुगल शैली का प्रभाव होते हुए भी यह अपनी अस्मिता को अक्षुण्ण बनाए रखने में समर्थ है । मारवाड़ ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण राजस्थानी शैलियों व उप - शैलियों में बीकानेर शैली उसी तरह से उभर कर सामने दृष्टिगत होती है । जैसे श्याम मेघों के बीच नयनाभिराम सारस मिथुनों की जोड़ी । शायद यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि बीकानेर की गोद में सूरतगढ़ के समीप पुरातत्व वेत्ताओं ने रंग महल की खोज करके यहां की प्राचीन संस्कृति को धरा गर्भ से निकाला जो कि बीकानेर, मारवाड़ व राजस्थान ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारत वर्ष के लिए यह गौरव की बात है कि हमारी संस्कृति का विकास सदियों पूर्व अत्यन्त ही उत्कृष्ट था । विषयान्तर होने के बावजूद भी यह तथ्य बीकानेर चित्र शैली व बीकानेर संस्कृति के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है ।

राजस्थान के उत्तर में स्थित बीकानेर राज्य में फली, फूली और पनपी बीकानेर चित्र शैली का उद्भव एवं विकास 17 वीं - 18 वीं शती

---

1· श्री कुमार सम्भव - " बीकानेर शैली " - " राजस्थान की लघु चित्र शैलियाँ, पृ0 68

माना जाता है । बीकानेर स्टेट के तत्कालीन नरेश महाराजा अनूपसिंह के राज्य - काल में हमें शैली का समृद्ध स्वरूप दिखलायी देता है ।

बीकानेर शैली के कलाकार ने नारी आकृति को अनूठा सौन्दर्य प्रदान किया है । कोमल और मनो - मुग्धकारी आकृतियों के साथ -साथ इन चित्रों में दृश्य चित्रण का सम्मिश्रण अत्यन्त ही समीचीन ढंग से हुआ है ।

परिश्रम - साध्य मुगल शैली की प्रतिलिपियों और विभिन्न विषयों पर आधारित चित्र - मालाओं के साथ ही बीकानेर शैली की अनेक मूल एवं स्वतन्त्र आकृतियों के आधार पर यह कहना युक्ति - संगत होगा कि बीकानेर शैली के लघु चित्र मौलिक रूप से अपना एक अलग अस्तित्व रखते हैं और रेखाओं की गतिमयता, रंगों के आकर्षक प्रयोग तथा आलेखन की सहजता के कारण, राजस्थान की अन्य चित्र - शैलियों से किसी तरह कम नहीं है । शब्दों की पकड़ से परे, इस शैली से अनेक मौलिक संकेत मिलते हैं जो इसे स्वतन्त्र और सन्तुलित कला शैली के रूप में स्थापित करते हैं ।[2]

§ग§ नागौर चित्र शैली परम्परा की विशेषताएँ :

नागौर चित्र शैली की अपनी एक ऐसी विशिष्टता है जो कि

---

1· श्री कुमार सम्भव - " बीकानेर शैली " - राजस्थान की लघु चित्र शैलियां, पृ0 69

2· डा0 आर0के0 वशिष्ठ, मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा, पृ012

मारवाड़ क्षेत्र में चली आ रही अन्य उप - शैलियों से अलग - अलग अपना वर्चस्व बनाये हुए है । जब मैंने यहाँ के चित्रों का सर्वेक्षण किया तो मुझे इन चित्रों की लयात्मक गतिमयता एवं संयोजनात्मक कुशलता का परिचय मिला ।

संतुलित रंगों से लिपट कर रेखाओं की गतिमयता जिस दृश्यमान भाव - सौन्दर्य को जन्म देने वाली नागोर शैली तत्कालीन सामाजिक - सांस्कृतिक और राजनैतिक परिस्थितियों का आंकलन प्रस्तुत करती है । यही कलागत शैली का गुण - धर्म है । क्योंकि जैसे साहित्य समाज का प्रतिबिम्बन करता है, वैसे ही कला अपनी सम - सामयिक व्यवस्था को अपनी शैलीगत उत्कृष्टता एवं भव्यता के माध्यम से दर्शक को तादात्म्य स्थापित कराने में समर्थ होती है ।[1]

भावों की गहनता और विशिष्टता, विषयानुकूल अंकन तथा चयन की सुघड़ता, सौन्दर्य एवं लावण्य की परियोजना तथा कला के विभिन्न अंगों - यथा सादृश्य, वर्णिका भंग, रूप - भेद, भाव, लावण्य योजना तथा प्रमाण आदि के परिप्रेक्ष्य में नागोर शैली के चित्र मारवाड़ की चित्र शैलियों में अपना एक विशिष्ट तथा स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है। यही इस शैली की विशिष्टता है ।

नागोर के प्रमुख चित्रों में, हाथियों का युद्ध, स्त्रियों का मन्दिर गमन, रास - क्रीड़ा रत नायिकाएँ, लट्टू डोर का खेल, सन्यासी एवम्

---

1. स्वयं सर्वेक्षण के आधार पर आधारित , दि० 15-6-88

भक्त गण, छत पर नृत्य का अंकन, चक डोर ‖ हाथ में रस्सी लेकर कूदती हुयी ‖ खेल, एक स्त्री अपने स्तन से तोते को दूध पिलाती हुयी, अंकन - नृत्य ‖ घूमर ‖ द्वार पर मोरछल लिए पुरुष एवं नारी आकृतियाँ आदि हैं। " जनानी ड्योढी" में स्नानागार हैं, जिसके बरामदे के चित्र नष्ट - प्राय हैं। ‖ चित्र संख्या- —— ‖

नागौर के चित्रकारों का उल्लेख सही नहीं मिला पर इतना अवश्य अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ के चित्रकार स्थानीय हो सकते हैं जो कि लोक कला से सम्बन्धित रहे हों। अथवा जयपुर दरबार में भित्ति-चित्रण करने वाले चित्रकार मार्ग - निर्देशन के लिए नागौर के राज - दरबार में बुलाये गये हैं। कुछ भी हो यहाँ की चित्रण - परम्परा अपने में अनूठी है। ‖ चित्र संख्या- 29 ‖

जहाँ तक नागौर शैली के महत्व का प्रश्न है, यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण न होगा कि नागौर - शैली अपनी सीमित क्षेत्रीय परिधि में रह कर वैसे ही अपनी गुणवत्ता से कला - जगत में प्रकाश फैलाया है। जैसे कक्ष के एक कोने में रखा चिराग पूरे कक्ष को आलोकित कर देता है। यही कारण है कि आकृतियों के ओज एवं माधुर्य, रेखाओं की सम्पन्नता, रंगों के जादू और दृश्यों में सबल आधार देने वाली नागौर चित्र - शैली दर्शकों को मुग्ध कर देती है।[1]

---

1· डा० आर० ए० अग्रवाल, मारवाड़ म्यूरल्स, पृ० 103

## (घ) किशनगढ़ चित्र शैली - परम्परा की विशेषताएँ -

मारवाड़ की चित्र शैलियों में किशनगढ़ शैली एकमात्र ऐसी शैली है जो कलात्मक दृष्टि से इतनी समर्थ, सशक्त और आकर्षक है कि इस शैली में बने चित्र दर्शकों की दृष्टि को बरबस बांध लेते हैं। अपनी रसमय मनोहारी रंग - योजना, आकर्षक एवं गतिमान रेखा सौन्दर्य तथा लावण्यमय संयोजन वैशिष्ट्य के कारण, किशनगढ़ शैली के चित्र न केवल भारत में वरन् विश्व भर में प्रसिद्ध हैं। काव्य और कला का जो कमनीय संगम हम किशन गढ़ शैली में पाते हैं, वह अद्वितीय है। अंकित विषय के प्रतिपादन, विश्वास पूर्ण आलेखन तथा तूलिका की गतिशीलता को दृष्टिपथ पर रखकर देखा जाय तो किशनगढ़ शैली के चित्र, तत्कालीन चित्रकारों की साधना और भावना की जीवन्त साक्षी देते हुए प्रतीत होते हैं। इन चित्रों के कल्पना - लोक में विचरण करते हुए दर्शकों को तो कभी - कभी ऐसा होने लगता है कि जैसे आत्मा और परमात्मा के सामंजस्य के पवित्र सूत्र को पकड़ने की चेष्टा में प्रवृत्त हो गये हों।[1]

कृष्ण - भक्ति की अजस्र धारा से सनी भक्त कवि नागरी दास की रसिकता एवं भावुकता से सम्पन्न और " बनी - ठनी " के[2] अनिंद्य रूप - सौन्दर्य की प्रेरणा से पल्लवित संसार प्रसिद्ध किशनगढ़ चित्र-शैली

---

1. श्री प्रेम चन्द्र गोस्वामी - " किशनगढ़ शैली " " राजस्थान की लघु चित्रण शैलियाँ, पृ0 29

2. - वही -

राजस्थान के एकीकरण से पूर्व स्थापित किशन गढ़ स्टेट की देन है । अजमेर और जयपुर नगरों के मध्य अवस्थित किशनगढ़ राज्य की स्थापना का श्रेय राजा किशन सिंह को है । 1609 ई0 में अपने ही नाम पर नगर को बसाया । इनके राज्य में ही कलात्मक कार्यों को स्वस्थ संरक्षण प्राप्त हुआ, जिसने आगे चलकर अपनी मौलिकता एवं प्रभावशालिता के कारण, किशनगढ़ शैली को एक स्वतन्त्र चित्र - शैली के रूप में स्थापित किया ।

किशनगढ़ चित्रकला को कलात्मक उत्कर्ष पर पहुँचाने का श्रेय राजा सावन्त सिंह ( 1699 - 1764 ) को है, जो एक कवि हृदय रसिक और योगी होने के कारण आगे चल कर कविवर नागरी दास के नाम से प्रसिद्ध हुए । किशनगढ़ कला के उन्नायक राजा सावन्त सिंह भावुक एवं सन्त प्रकृति के थे । राज - काज से उदासीन किन्तु कृष्ण - भक्ति में तल्लीन इनका व्यक्तित्व मुखरित हो उठा । इन्हीं की प्रेरणा से किशन गढ़ शैली के चित्रों का साहित्यिक आधार ठोस हुआ । अपनी रुचियों के अनुकूल कलात्मक शिक्षा ग्रहण की । संस्कृत भाषा, संगीत कला एवं रेखांकन की त्रिवेणी तट पर " माधव " सरिस विद्यमान हुए । इनके हाथ के चार चित्र किशन गढ़ दरबार के निजी संग्रह में हैं ।"[1]

कविवर नागरीदास की भावुकता एवं शृंगार - प्रियता ने कविता के रूप में कृष्ण - भक्ति रस की एक ऐसी पवित्र धारा बहाई कि जिसने

---

1. श्री प्रेम चन्द्र गोस्वामी, किशन गढ़ शैली - " राजस्थान की लघु चित्र शैलियाँ " , पृ0 3।

अपने चारो ओर कृष्ण भक्तों को आकृष्ट कर लिया । सन् 1723 - 31 ई० तक के समय में " बिहार चन्द्रिका ", " रसिक रत्नावली " और " मनोरथ मंजरी " आदि कृष्ण काव्यों की रचना करके इस क्षेत्र में उन्होंने अपना अपूर्व योगदान किया । इन्होंने भी वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षा ली थी ।[1]

किशनगढ़ शैली के चित्रों का विषय प्रधानत: तो राधा-माधव की प्रेम लीला, प्रिया - प्रियतम मिलन तथा " मान " चित्रण ही रहा है । तथापि नागरी दास की प्रिया पासवान " बनी - ठनी " के रूप सौन्दर्य ( जो कि राधा की ही आदर्श " मॉडल थी ) के चित्रण, किशनगढ़ के राजाओं तथा मुगल बादशाहों के चित्रों, गीत - गोविन्द के पदों का चित्रांकन आदि में भी इस शैली के चित्रकारों ने तूलिका का जादू फेरा है । ( चित्र संख्या - 34 )

झीलों, पहाड़ों, वनों, उपवनों का पशु - पक्षियों से युक्त किशनगढ़ एवं रूपगढ़ का प्राकृतिक परिवेश भी किशनगढ़ शैली के चित्रकारों के लिए प्रेरणा एवं अंकन का विषय रहा है । दूर तक विस्तृत झील के स्वच्छ सरोवरों में केलि करते हुए हंस, बतख, सारस, बक और जल - मुर्गियों के अतिरिक्त लहरों में चलती नौकाएँ भी अत्यन्त सुन्दर एवं आकर्षक रूप में चित्रित की गयी हैं । इस शैली के चित्रों को मोहक एवं प्रभावशाली बनाने

---

1· श्री प्रेमचन्द्र गोस्वामी, किशनगढ़ शैली, "राजस्थान की लघु - चित्र शैलियाँ" पृ० 31

के लिए चित्रकारों ने प्रकृति के अन्य उपादानों तथा कुंजों से झाँकती सी श्वेत मुण्डेरों, कंगूरों, अट्टालिकाओं, फव्वारों, केले के वृक्षों और कमल-दलों का भी सहारा लिया है । ये चित्रण किशनगढ़ शैली को अत्यन्त सजीव विस्तार देते हुए प्रतीत होते हैं ।

राग - रागिनियों पर चित्रांकन, रीति कालीन कवियों का सा वैभव - विलास और परम्परानुकूल श्रृंगारिक भावनाओं को आधार बनाकर भी इस शैली के चित्रकारों ने अपनी तूलिका चलायी । पृष्ठ भूमि पर भव्य प्रासादों, केलों के कुंजों, चन्द्र तथा तारांकित नभ विशेष प्रिय रहा है ।

चन्दन के लेप से पीताभ, कोमल नारी शरीर पर लहराती हुयी उन्मुक्त केशराशि, जो कटि प्रदेश तक अधिकार जमाये, अरूणाभ नेत्रों में काजल की घनी किन्तु आकर्षक रेख, चमेली की पंखुड़ियों से अधर, आगे निकली हुयी चिबुक, वलयित भृकुटी, अत्यधिक क्षीण कटिबन्ध एवं पावों को छिपाये लँहगा, कमल कोष सा पल्लवित, किन्तु अर्ध विकसित उरोज प्रदेश मुक्ता - मालाओं से आवृत चित्रकारों की चरम सिद्धि रही है । कंचुकी और ओढ़नी से लिपटा हुआ, अलंकारों से सुसज्जित, हाथ में अर्ध - मुकुलित कमल कली से युक्त सुकोमल नारी - शरीर, न केवल उन कलाकारों की पैनी दृष्टि और अंकन प्रतिभा को उजागर करता है, बल्कि राधा के माध्यम से " बणी - ठणी " के रूप - यौवन की माधुरी से भी अंतरंग परिचय करवाता है ।[1]

---

1. प्रेमचन्द गोस्वामी - किशन गढ़ शैली, राजस्थान की लघु - चित्र शैलियाँ, पृ० 33

किशनगढ़ शैली कला परम्परा कला - नभ मण्डल में शरद - कालीन पूर्ण चन्द्र के तुल्य जन - मानस को आह्लादित एवं आकर्षित करती हुयी श्रृंगार, भक्ति एवं प्रेम - सागर हिलोरें ले रही है।" एतदर्थ, किशनगढ़ कलम की विशेषताओं को प्रस्तुत करना समीचीन एवं महत्वपूर्ण है।

किशनगढ़ चित्र शैली पुरुषाकृतियाँ लम्बी, छरहरी, समुन्नत ललाट, लम्बी नासिका, मधुर स्मित से युक्त हिंगुली पतले अधर एवं जनाकृति अरुणाभ नेत्र कर्णाटों तक खिंची हुयी, सुडौल नुकीली चिबुक, प्रलम्ब बाहु, पतली सुकुमार अँगुलियाँ तथा वदन पर झूलते मोहम्मद शाही पारदर्शक जामे तथा मूँगिया या श्वेत पगड़ियाँ मोतियों व अलंकरणों से अलंकृत एक सहज आकर्षक एवं प्रेमल व्यक्तित्व प्रस्तुत करने में समर्थ है। ﴾चि०सं० 43 ﴿

नारी आकृतियों की सौन्दर्य छटा अत्यन्त ही मोहक, कमसिन बाला की तरह लज्जा एवं प्रेमासक्ति से नमित, " कनक छरी सी कामिनी" छरहरे बदन में अंकित की गयी है। गौर वर्ण, खंजनाकृत नयन, अलक - मेखला से आच्छादित कपोल, हिंगुली पतले अधर, धनुषाकार भ्रू - रेखा, फूलों तथा अलंकरणों से सजी - धजी, कनक दामिनी सी चमकती - दमकती चित्र को लुभा लेती है। महावर में रंगे पैर तथा मेंहदी में रचे हाथ, नासिका में मुक्ता युक्त नथ, कसी कुचुकी, उन्नत उरोज, उसके ऊपर पारदर्शी छपी चूनरी तथा लम्बे चुन्नटदार लँहगों में आवृत किशनगढ़ी रूप योवना, राधा के श्रृंगार की बराबरी करती है।[1]

---

1· डा० आर० ए० अग्रवाल - कला विलास, पृ० 106-107

किशनगढ़ी चित्रों के मुख - मण्डल पर प्रेम, भक्ति एवं श्रृंगार के भाव दृष्टव्य हैं । चितवन की कमनीयता, हस्त मुद्राओं की चारुता, भाव स्पष्टीकरण में रेखाओं का सौन्दर्य सहज ही झलक पड़ता है ।

श्वेत संगमरमर से निर्मित महलों, दुर्गों, हवेलियों, छज्जों एवं छतरियों का अंकन अत्यन्त ही स्वाभाविक एवं चातुर्य पूर्ण ढंग से किया है । महलों के सम्मुख जलाशय व फव्वारे, सरोवरों में तैरते सारस युगल प्रासादों की छवि न्यारी बना देते हैं । वन - उपवन की हरीतिमा उष्ण प्रदेश की ऊष्मा को आत्मसात करके नयनों को शीतलता प्रदान करती है । महलों में स्त्री - पुरुषों की युगल जोड़ी वास्तु - सौंदर्य को बढ़ाने में सहायक सिद्ध होते हैं, जिन्हें उष्ण रंगों से अनुरंजित किया गया है ।

किशनगढ़ चित्रों में पोतगठन की ओर चित्रकार का झुकाव बढ़ गया था और उसने वस्त्रों तथा भवनों के अलंकरण में ज्यों का त्यों अंकन करने की विधि को अपनाने का प्रयास किया है । हाशिये गुलाबी तथा हरे रंगों से रेखांकित किए गये हैं । चित्र माप में प्रायः बड़े बने हैं ।

मानवाकृतियों का समूह का समूह प्रायः इन चित्रों में बनाया जाता है, जिनका सन्तुलन प्रायः वास्तवाले रूपों के साथ स्थिर किया जाता है ।[1]

मेवाड़ के चित्रों में सपाट लाल आसमान, बूँदी में गहरा - नीला

---

1. डा० आर० ए० अग्रवाल, कला विलास, पृ० 107

आसमान बना है, लेकिन किशनगढ़ शैली में लाल और नीले दोनों ही रंगों का प्रयोग करके नभ - मण्डल के सौष्ठव की अभिवृद्धि की है ।

झीलों, पहाड़ियों, हरित वन प्रान्तर व बगीचों तथा उपवनों में चिड़ियों की चहचहाट की प्रतिध्वनि से सम्पूर्ण वातावरण सजीव व सरस बन गया है । कदली वृक्षों की शोभा सौन्दर्यात्मक प्रवृत्ति की परिचायक प्रतीत होती है ।

किशनगढ़ चित्रण शैली की विषयवस्तु - भागवत पुराण, गीतगोविन्द तथा नागरी दास के पदों पर चित्रण कार्य बहुतायत रूप में हुआ है । दरबारी - वैभव - विलास मुगलिया कायदे, तौर - तरीकों की झलक प्रतिबिम्बित होती है । राधा - कृष्ण के चित्र अत्यंत निपुणता एवं कमनीयता के साथ अनुरंजित किये गये हैं । यहाँ प्राय: राग - रागिनियों के चित्र देखने को नहीं मिलते । " बनी - ठनी के चित्र को अनुरंजित किया गया ।"

किशनगढ़ चित्रों की सराहना करते हुए कला - मर्मज्ञ रामगोपाल विजयवर्गीय ने लिखा है -

" इन चित्रों की रूप - माधुरी आँखों को लुभाकर इतना वशीभूत कर लेती है कि पुन: पुन: इन चित्रों को देखने का मोह कला - मर्मज्ञों को होने लगता है ।"[1]

---

1· डा० आर० ए० अग्रवाल, कला विलास, पृ० 108

किशनगढ़ शैली के प्रमुख चित्रों में गीत - गोविन्द के चित्र हैं, जो महाराजा किशनगढ़ के निजी संग्रह में हैं । जिसे 1820 ई० में " लाडली दास " ने चित्रित किया था । 1817 ई० का एक चित्रित विज्ञप्ति पत्र " देहलासा अपाश्रय, अहमदाबाद में है, जो किशनगढ़ में चित्रित हुआ था । नागरीदास के काव्य का चित्रण इसी शैली में हुआ। इसी प्रकार " बनी - ठनी " और " राधा - कृष्ण " की प्रेमी -युगल जोड़ी किशनगढ़ के चित्रों में चार - चाँद लगा देती है । (चि॰सं॰ -44)

किशनगढ़ से सुप्रसिद्ध चित्रकारों में अमीरचन्द, सूरध्वज, धन्ना, छोटू, भवर लाल, नानक राम, रामनाथ, जोशी सवाई राम, निहाल चन्द के वंशज सीताराम व बदन सिंह, मोरध्वज और लाडलीदास आदि हैं, जिन्होंने किशनगढ़ शैली को राजस्थानी कला - सिंहासन पर आरुढ़ किया ।[1]

आकृतियों के ओज एवं माधुर्य, रेखाओं की सम्पन्नता, रंगों के जादू और दृश्यों के सबल आधार देने वाली किशनगढ़ की चित्र - शैली जहाँ प्रबुद्ध दर्शक को लोक से अलौकिक जगह तक ले जाने में समर्थ है, वहाँ वह उसे सोचने को भी बाध्य करती है कि वास्तव में ये चित्रकृतियाँ सत्य के निकट हैं, अथवा सत्य उनके निकट है । इस दृष्टि से किशनगढ़ शैली के चित्रों को रहस्यमोयी कल्पनाओं के अमूर्त स्वप्न भी कहा गया है ।

मारवाड़ी चित्र संस्कृति में किशनगढ़ शैली का अपना एक महत्व-

---

1· डा० आर० ए० अग्रवाल, कला विलास, पृ० 106

पूर्ण स्थान और इसकी परिलब्धि है । चित्रों की कमनीयता एवं रूप - सौंदर्य सहज ही मानव मन को लुभाकर कर अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है । इस शैली की दिव्यता और चारुता की ख्याति अपूर्व है । कार्य-सौष्ठव एवं रेखाओं का लयात्मक अंकन अजन्ता की शास्त्रीय - कला की स्मृति दिलाने लगती है । यही कारण है कि कला - जगत् में किशनगढ़ शैली का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है ।

(ङ) <u>जैसलमेर चित्रशैली की विशेषताएँ :</u>

मारवाड़ चित्र शैली के अन्तर्गत आने वाली जैसल मेर चित्र शैली का प्राप्य कला सामग्री के अध्ययन से एक महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट स्थान कला संसार में है । जैसलमेर काव्य - शैली की विशेषताएं निम्नवत् हैं-

जैसलमेर ग्रन्थ भण्डार में ऐसे चित्रित ग्रन्थ अधिकांश हैं, जिनका संग्रह अन्य स्थानों से लाकर किया गया है, किन्तु समस्त जैसलमेर में भित्ति चित्रों, पुस्तक चित्रों, काष्ठ - पट्टिकाओं पर बने चित्रों तथा लघु - चित्रों का निर्माण यहाँ हुआ । भले ही कुछ चित्रकार अन्य रियासतों से यहाँ आये हों पर इसका कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होता । यहाँ की लोक कला की निरन्तरता होती जो यदा - कदा अपनी विशिष्टता के कारण शैली के रूप में परिवर्तित हो जाती है ।

जैसलमेर में मूलराज द्वितीय के शासन - काल में यहाँ की चित्रण कला पर्याप्त ऊँचाइयों पर पहुँच चुकी थी । इस समय के चित्रों में प्रमुख राजस्थानी शैली के तत्वों का समावेश हुआ है । यद्यपि इस शैली का विकास आगे लम्बी अवधि तक नहीं दिखायी देता, किन्तु जैसलमेरी शैली

का महत्व अनेक स्थानों पर स्वीकारा गया है ।[1]

जैसलमेर के दरबार में चित्रण के प्रति अनुराग उत्पन्न करने का श्रेय मेवाड़, उदयपुर, जयपुर, जोधपुर आदि रियासतों को रहा है। चूंकि भित्ति - चित्रण प्रधान केन्द्र जयपुर होने के कारण " रंगमहल" के चित्रण कार्य के लिए जयपुर से चित्रकार बुलाए गये । इसी से रंगमहल के चित्रों पर जयपुरी शैली की छाप स्पष्ट झलकती है । इनके साथ जैसलमेर के चित्रकारों ने कार्य किया " राधा की केश सज्जा " जैसे चित्रों से इसका प्रमाण मिलता है ।

भित्ति चित्रों की विशेषताएँ " पटुआ हवेली के चित्रों में विशेष रूप से मिलती है, जिनका निर्माण 1825 ई0 में हुआ जो कि जैसलमेरी भित्ति - चित्रों की अमूल्य धरोहर है । इन चित्रों का रूप संयोजन, वर्ण विधान, मानवाकृति आदि रंग महल के चित्रों से सर्वथा भिन्न है। अंतराल में, रूप संयोजन में गोलाई है । रंगों में तीव्रता, विविधता तथा तानीयता ( टोनिलिटी ) है । परिधान, मानवाकृति, मुद्रा एवं भंगिमा लघु चित्रों की तरह प्रभावी एवं संवेदन शील बना देती है ।[2]

चित्रण के इतिहास में एक नये आयाम का सूत्रपात करते हुए चित्रित ताड़पत्रीय ग्रन्थों की श्रृंखला में " दशावे कालि सूत्रवृत्ति " तथा " ओघनियुक्ति वृत्ति " आदि ग्रन्थ हैं, जिनमें भण्डारण का श्रेय तथा

---

1. कार्ल खण्डेलवाल - "फोरवर्ड," राजपूत पेन्टिंग, पृ0 10
2. - वही - पृ0 6

गौरव " जैसलमेर - ज्ञान ग्रन्थ भण्डार को प्राप्त हैं ।[1]

इन पोथी चित्रों में रेखीय, गुण, प्रवाह एवं डौल का निर्वाह कम हुआ है । किन्तु चित्रों के लघु आकार में सपाट रंगी पृष्ठभूमि तथा रसाकृतियों का साधारणीकरण इन चित्रों की विशेषता रही है ।

चित्रों में प्रकृति एवं वास्तु चित्रण की न्यूनता परिलक्षित होती है । फिर भी, स्थापत्य में भवनों, छज्जों और मेहराबों का छना और आलंकारिक अभिप्राय युक्त अनुरंजन हुआ है । पशु - पक्षी, हाथी एवम् वृक्ष पुष्प - लतिकाओं का भी चित्रण यथास्थान किया गया है ।[2]

जैसलमेर के लघु चित्र राजस्थानी शैली एक सामान्य धारा के होते हुए भी अपनी विशिष्टता के कारण, जैसलमेर लघु - चित्रण शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं । जीतमल सोनी, मानक लाल सोनी तथा देवीलाल सोनी के संग्रह के चित्रों की शैलियों में विविधता है । नथमल दीवान के संग्रह के चित्रों में दो चित्रकारों के हाथ स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं । (चित्र संख्या —— )

जैसलमेर के लघु चित्रों में व्यक्ति चित्रों की भरमार है । संयोजन परिमार्जित एवं मानव रूपों में सहज सौन्दर्य की न्यूनता परिलक्षित होती

---

1. डा० सत्य प्रकाश, राजस्थान में चित्रकला का क्रमिक विकास, (राजस्थान भारती), भाग-1, पृ० 11

2. डा० शुकदेव श्रोत्रिय, - जैसलमेर का चित्र - वैभव, पृ० - 300 अप्रकाशित शोध ग्रन्थ

है । ढलावदार माथा, नुकीली नाक, छोटी भौंह पटोलाव, स्मित ओष्ठ और छोटी ठोढ़ी आदि नारी - सौन्दर्य की चारुता प्रदर्शित करते हैं। ﴾ चित्र संख्या -9,11 ﴿

जैसलमेर के प्रमुख चित्रों के संकलन में, रंग महल, दुर्ग, मन्दिर दुर्ग, नथमल दीवान की हवेली, पटुओं की हवेली - 4, पटुओं की हवेली -5 ग्रन्थ भण्डार दुर्ग सोनी, नगर, नथमल दीवान का संग्रह, जीतमल सोनी नानक लाल सोनी[1] तथा अन्य कला रसिक सुधी जनों का सहयोग श्लाघनीय है ।

" कामदेव " हस्ति अंकन, सरस्वती एवं गणेश आदि के चित्र अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं ।

जैसलमेर चित्र शैली के चित्र जितनी भी मात्रा में देखने को मिलते हैं, उनमें चित्रकारों के नामों का अभाव है परन्तु जिन महारावलों के संरक्षण में चित्र कला पनपी, उनमें महारावल हरराज, अखेसिंह और मूल राज विशेष उल्लेखनीय हैं । उक्त महारावलों को कला से अधिक अनुराग था और उनके दरबार में अच्छे कवि और चित्रकार रहा करते थे । जो भी हो मारवाड़ी चित्रकला में जैसलमेर चित्र शैली अपना विशिष्ट स्थान रखती है ।[2]

---

1· डा० शुकदेव श्रोत्रिय - - ﴾ शोध - प्रबन्ध - अप्रकाशित﴿ पृ० 34, 35

2· श्री दीनदयाल ओझा - जैसलमेर शैली, राजस्थान के लघु चित्र, पृ० 62

सुदूर पश्चिम में एकान्त में रेत के सागर के बीच, पीले पत्थर के द्वीप, जैसलमेर में भी चित्रण की एक लहर आयी जो जाली, झरोखों और प्रस्तर खण्डों में उत्कीर्ण अलंकारिक अभिप्रायों से परिपूर्ण, नगर की भित्तियों पर, नयनाभिराम चित्रों, लकड़ी की तख्ती की मूँठ पर बने गणेश - सरस्वती के चित्रों तथा लघु चित्रों की रंगभरी अमिट छाप छोड़ गयी । इस नगर का ग्रन्थ - भण्डार शताब्दियों तक अपने क्रोड़ में चित्रों की अमूल्य धरोहर को चित्रित ग्रन्थों के हृदय के मध्य सृजित चित्रावलियों को छिपाये रहा । इस प्रकार समस्त जैसलमेर, स्थापत्य, मूर्ति तथा चित्र कला की त्रिवेणी के पावन संगम के रूप में चिरस्मरणीय रहेगा ।[1]

---

1. डा० शुकदेव श्रोत्रिय - शोध प्रबन्ध (अप्रकाशित), पृ० 31।

–54

चतुर्थ अध्याय

## चतुर्थ अध्याय

### "संयोजन" का अर्थ, वर्गीकरण तथा स्वरूप एवं विस्तार

1. संयोजन का अर्थ
2. संयोजन सिद्धान्त का वर्गीकरण
3. संयोजन का स्वरूप एवं विस्तार

चतुर्थ अध्याय

1) संयोजन का अर्थ :

" संयोजन " का शाब्दिक अर्थ होता है, " समं योजयते इति - " संयोजनम्" अर्थात् सम्यक् रूप से योजना बद्ध किया हुआ । तात्पर्य यह कि किसी भी कार्य - प्रणाली को समुचित ढंग, तौर तरीके और एक नियमानुकूल, सुव्यवस्थित प्रबंधात्मकता प्रदान करना ही " संयोजन" (चि॰सं॰ )

जिस प्रकार प्रकृति के 5 तत्वों (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा ) से जीव का आविर्भाव

हुआ और उस जीव को सुन्दर स्वरूप प्रदान करने के लिए शरीर के अंगों का निर्माण हुआ, उसी प्रकार से चित्र के क्षेत्र में रेखा, वर्ण, तान, गठन आकृति एवं अन्तराल ये छः कला के तत्व रूपी " जीव " हैं, तथा अनुपात, सन्तुलन, विरोध, प्रभाविता, सामंजस्य, लय तथा एकता ये 7, कला के सिद्धान्त रूपी सुन्दर शरीर के अंग - प्रत्यंग हैं। अर्थात् सुन्दर सृजन के लिए कला तत्वों को संयोजन के सिद्धान्तों से आबद्ध करना सृजनकर्ता का पावन धर्म बन जाता है। § चित्र संख्या -44 §

सम्पूर्ण सौर - मण्डल, § सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र § समस्त सृष्टि सभी एक सुन्दर " संयोजन व्यवस्था " के अन्तर्गत संचालित हो रहे हैं।"[1]

संयोजन का अर्थ एवं सिद्धांत का वर्गीकरण :

चित्र में साधारणतया संयोजन से तात्पर्य है किसी वस्तु या तत्वों को कलात्मक ढंग से सुनियोजित करना अथवा उन्हें सुन्दर ढंग से एक व्यवस्था देना। संयोजन को अंग्रेजी भाषा में कम्पोजीशन कहा जाता है। उसका अर्थ है, संयोजन करना अर्थात् सुन्दर ढंग से योजना बद्ध करना। संयोजन विषय पर भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अनेक सिद्धान्तों की व्याख्या कर अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया है। अतएव हम मारवाड़ के लघु चित्रों की संयोजनात्मक व्याख्या करने के पूर्व संयोजन की परिभाषा एवं मुख्य सिद्धान्तों की विवेचना करना, समीचीन समझेंगे।

---

1· डा० एस० डी० श्रोत्रिय, जैसलमेर का चित्र वैभव, पृ० 216

संयोजन दो अथवा अधिक तत्वों की मधुर योजना को कहते हैं, जिनमें एक तत्व की प्रधानता रहती है । चित्र संयोजन में चित्र के तत्व, रेखा, रंग, तान, आकृति आदि को सुनियोजित करके, कालान्तर सशक्त अभिव्यक्ति एवं सृजन कर सकता है । संयोजन चाहे वस्तुनिष्ठ हो अथवा सूक्ष्म अथवा ज्यामितीय, सन्तुलन तथा आकर्षण के सिद्धान्त इन पर समान रूप से लागू होते हैं । संयोजन के लिए मुख्य रूप से विभिन्न तत्व एवं सिद्धान्त की आवश्यकता होती है । संयोजन में इन तत्वों का अधिक या कम योगदान होता है । सिद्धान्त तत्व निम्न प्रकार के हैं -

<u>संयोजन सिद्धान्त का वर्गीकरण :</u>

| | | |
|---|---|---|
| 1. | सहयोग | यूनिटी |
| 2. | सामंजस्य | हारमानी |
| 3. | संतुलन | बैलेन्स |
| 4. | प्रभाविता | डोमिनेन्स |
| 5. | प्रवाह (ताल, लय) | रिदम |
| 6. | प्रमाण | प्रपोरशन |
| 7. | विरोध | कान्ट्रास्ट |

उपरोक्त संयोजन के 7 सिद्धान्त हैं, जिन्हें भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों एवं चित्रकारों ने विशिष्ट ढंग से अपनाया है।अतःअब

---

1. डा० जी० के० अग्रवाल, रूपांकन, पृ० 48

इनका विवरण देते हुए इनकी विवेचना करेंगे ।

संयोजन अलंकरण - पद्धति से सज्जित करने की कला है, जिसे चित्रकार अपनी भावना को व्यक्त करने के लिए उपयोग में लेता है । श्री मैटलैण्ड ने निम्न संयोजन सिद्धान्तों का उल्लेख किया है जो कि भारतीय संयोजन सिद्धान्त अवधारणा के अनुरूप ही है ।

1· संगति, 2· श्रेणी विभाजन, 3· विरोध, 4· संघर्ष
5· प्रभुत्व, 6· पुनरावृत्ति, 7· संतुलन, 8· एकता

इस प्रकार हम देखते हैं कि कला के तत्वों के समान ही संयोजन के सिद्धान्तों का अपना एक महत्व है, जिनके अनुपस्थिति में संयोजन सफल नहीं हो सकता । अतः हर कलाकार को कम और अधिक इन सिद्धान्तों की अनुपालना करनी पड़ती है । मारवाड़ के लघु - चित्रों को उनके संयोजनात्मक स्वरूप को समझने के लिए यहाँ संयोजन के सिद्धान्तों की व्याख्या आवश्यक है ।

1· <u>सहयोग ॥यूनिटी॥</u>

चित्र में सहयोग का तात्पर्य है कि चित्र - संयोजन के विभिन्न तत्वों में अनुभूति, एकता, समानता तथा आपसी सम्बन्ध जो पूरे चित्र संयोजन को एकता के सूत्र में पिरोये रहता है । कला के तत्वों के ऐसे संयोजन को जो किसी चित्र के समस्त तत्वों में एक सूत्रता उत्पन्न करे तथा जिससे एक ही भाव व्यक्त हो, सहयोग कहते हैं । इसे ही एकता॥ यूनिटी॥ भी कहते हैं । चित्र भले ही किसी भी विषय पर हो, किसी भी शैली में हो लेकिन चित्र में अनेक आकर्षण केन्द्र नहीं होना चाहिए । अनेक चित्रों

को एक जगह संयोजित करना भी इस दृष्टि से उचित नहीं होता । अनेक आकर्षण केन्द्रों के कारण दर्शक की दृष्टि चित्र का सम्पूर्ण आनन्द नहीं ले पाती है । सहयोग का दूसरा अर्थ कला के तत्व का एक - दूसरे को पूर्ण सहयोग करना भी है । सभी तत्त्वों का चित्र में एक समान योगदान होना भी परमावश्यक है ।

साधारणतः जब हम सहयोग की बात करते हैं तो चित्र में सभी कला के तत्वों - रेखा, रूप, वर्ण, पोत, तान और अन्तराल में सहयोग रखना चाहिए ।

एकता तथा दृश्य एैक्य { विजुअल यूनिटी }

चित्रकार अपने माध्यम के तत्वों का, जैसे संगीत का स्वरों का, नर्तक देह भंगिमा का, मूर्तिकार प्रस्तर परिमाण का प्रस्तुतीकरण इस प्रकार करता है कि उससे एक विशेष प्रभाव उत्पन्न हो । चित्रकला चूंकि देखने की कला है, अतः इसका प्रभाव दृष्टि पर होना चाहिए । जो दृष्टि को अच्छा लगे, वही अच्छा है, उसी का अनुसरण करना चाहिए ।

चित्र में प्रयुक्त विभिन्न आकृतियाँ जब किसी अनुभूत क्रम में सम्बन्धित होती हैं तो एकता का सहयोग भाव का सृजन होता है।यह क्रम साधारण भी हो सकता है और अत्यन्त जटिल भी । चित्र का संयोजन इस प्रकार होने पर कि अनेकता में खोजने पर उसे एकता के दर्शन हो सकें तो वह आकर्षक हो जाता है । चित्र में ऐसे तत्व होने चाहिए कि दर्शक की रुचि बनाये रखने के लिए वह समृद्ध हो । चित्र में सहयोग तो हो ही, परन्तु थोड़ी उलझन भी रहे, जिससे दर्शक अर्थ की खोज में किंचित् भटक

सके । इसे चित्र में बौद्धिक तत्व { इन्टैलेक्चुअल एलीमेन्ट्स } कहते हैं ।

विरोधाभास एवं सहयोग :

यद्यपि विरोधाभास सहयोग का विलोम प्रतीत होता है, परन्तु चित्रण में सहयोग - सृजन के लिए विरोधाभास का बहुत महत्व है। चित्रण में मुख्य भूमिका आकारों के आपसी सामंजस्य की है, चाहे वे एक हों अथवा विरोधाभासी । आकारों का यह सम्बन्ध ही सहयोग कहलाता है । इसे योजना भी कहा जाता है । उदाहरणार्थ विरोधी वर्णों की योजना ।

साधारणतः चित्रण में जब एकता की बात कही जाती है, तो चित्र के समस्त तत्वों - रेखा, रूप, वर्ण, तान, पोत, अन्तराल में सहयोग समझना चाहिए । लय, अनुपात, सामंजस्य, संतुलन आदि सभी इस महत्वपूर्ण चित्रण गुण के सृजन में सहायक होते हैं ।

2· सामंजस्य { हारमोनी } :

सामंजस्य, संयोजन का वह सिद्धान्त है, जिसमें चित्रण के सभी तत्व - रेखा, रूप, रंग, वर्ण, तान, पोत और अन्तराल आदि एक दूसरे से मेल खाते हुए चित्रण में सूत्रबद्ध हों । जहाँ तक सहयोग और सामंजस्य का सम्बन्ध है, जैसा कि सहयोग से स्पष्ट है कि इसमें भी सभी तत्वों को सहयोग के द्वारा चित्र को आकर्षित बनाना होता है, जबकि सामंजस्य में

---

1· " हारमोनी इज ए कम्बीनेशन आफ एलेमेन्ट्स हिव्च आर सिम्लिर इज वन आर मोर रेस्पेक्ट्स "

वे सभी तत्व एक ही भावना के अन्तर्गत दिखायी पड़ते हैं । सामंजस्य - रेखा, रूप, वर्ण, तान, पोत, अन्तराल आदि में दर्शाया जाता है । सामंजस्य की अनुपस्थिति में चित्र उत्कृष्ट कोटि का नहीं माना जाता । सामंजस्य पैदा करने के लिए चित्रकार कई विधियों का उपयोग करता है । जैसे - रेखा, सामंजस्य, रूप - सामंजस्य, वर्ण एवं तान - सामंजस्य, विचार एवं भाव - सामंजस्य, धरातलीय गठन अथवा पोत सामंजस्य, विरोधाभास - सामंजस्य ।

उपरोक्त सभी तत्वों के सामंजस्य का चित्र में समान योगदान होना परम आवश्यक है ।

3· <u>संतुलन [बैलेन्स]</u>

कला में सन्तुलन समभिति और असमभिति दो प्रकार का होता है। समभिति चित्रों में आकृतियाँ दोनों ओर समान और समभार की होती हैं। असमभिति चित्रों में समान और समभार न होने पर भी चित्रों को संतुलित बनाने का प्रयास किया जाता है । यह अन्य कलाओं में सम्भव नहीं है । इस प्रकार चित्र में संतुलन भंग न हो । एक ओर यदि भारी वस्तुओं की रचना हो गयी है तो दूसरी ओर उसे संतुलित करने के लिए पेड़, मन्दिर अथवा बादल या अन्य किसी प्रकार की आकृति के द्वारा संतुलित किया

---

टु बी फ्लीजिंग, दि मेटीरियल विद इन ए पिक्चर नीड्स बैलेन्स, आर शुड सीम्स टु बी फ्लोजेन्टली रिपोजिंग विद इन दि पिक्चर लिमिट्स· "

जाएगा ।

संतुलन का मुख्य ध्येय विश्राम अथवा शांति है । इसकी प्राप्ति के लिए आकृतियों, वर्णों तथा तान को इस प्रकार किया जाता है कि समस्त चित्र भूमि पर आकर्षण का उचित वितरण हो सके । यही संतुलन है । संतुलन वह नियम है, जिसके आधार पर चित्र भूमि के सभी विरोधी प्रभावों को व्यवस्थित किया जाता है ।

संतुलन कला सृजन का वह सिद्धान्त है, जिसके अनुसार चित्रण के सभी तत्व इस प्रकार से सुनियोजित किये जायें कि उसका दृष्टिगत भार सारे चित्र पर समुचित वितरित हुआ जान पड़े । इस सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य है, चित्र को असन्तुलित होने से बचाना । चित्र में भार का अर्थ दृष्टिगत भार से है न कि वस्तु के वास्तविक भार से । रेखा, आकृति, वर्ण, तान, पोत एवं अन्तराल आदि भारों का समुचित ज्ञान एवं उचित वितरण चित्रण में होना आवश्यक है । तभी चित्र संतुलित हो कर सौंदर्य की अभिवृद्धि करता है ।

4· <u>प्रभाविता या प्राबल्य {डोमीनेन्स आर इम्फेसिस}</u>

चित्र की आकृति अथवा रंगों में जो प्रधान होता है, समस्त वातावरण को प्रभावित करता है और अन्य आकृति अथवा रंग उसके समक्ष गौण हो जाते हैं, यही आकृति अथवा रंग का समस्त चित्र का प्राबल्य {प्रभाविता} है । चित्र में प्रावल्य का तात्पर्य उस सिद्धान्त से है जिसके द्वारा दृष्टि संयोजन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व पर सर्व प्रथम पड़ती है तथा उसके पश्चात् महत्व के क्रमानुसार अन्य तत्वों पर तथा अन्य आकारों पर जाती है । जब कभी भी चित्र रचना में दृश्य प्रभाव को महत्व दिया

जाता है तभी प्राबल्य का सिद्धान्त प्रयुक्त होता है ।

इसी प्रकार चित्र में एक ऐसा मुख्य केन्द्रीय स्थल बन जाता है, जिसको दर्शक सर्व प्रथम देखता है । उसी के बाद दर्शक की दृष्टि चित्र के दूसरे अंश अथवा तत्व को देखती है । प्रभाविता का उद्देश्य चित्र में एकरसता को समाप्त करना, चित्रित वस्तु, आकृति के रूप को सहजता प्रदान करना तथा मुख्य विचार या विषय की दृष्टि अभिव्यक्त करने वाले तत्वों को प्रभावित करना होता है । प्रभाविता के लिए दो तत्व परम आवश्यक हैं -

1. विषयवस्तु की अनुरूपता ।
2. साधारणीकरण ।

इस प्रकार प्रभाविता के निम्न उद्देश्य हैं -

1. मुख्य विचार अथवा आकृति को सर्वाधिक महत्व प्रदान करना
2. एकरसता को समाप्त करना ।
3. चित्रित वस्तु, आकृतियों के रूप को सहजता प्रदान करना ।
4. कलाकृति में व्यवस्था और एकता उत्पन्न करना ।

<u>अनुरूप विषयवस्तु :</u>

चित्र रचना में अनुरूप विषयवस्तु का विशेष महत्व है । चित्र में संगति तभी स्पष्ट होती है, जब भावाभिव्यक्ति विषय के अनुकूल हो । इस प्रकार की रचना में देश, काल तथा वातावरण का विशेष महत्व होता है । आकृति का रूप, वेश - भूषा और वातावरण विशेष महत्व को लक्षित करते हैं ।

साधारणीकरण :

कला में साधारणीकरण की अपनी विशेषता है । किसी वस्तु को सार्वजनिक वस्तु बनाना साधारणीकरण कहलाता है । असाधारण विभूति द्वारा साधारण कृत्य को जब चित्र में प्रदर्शित किया जाएगा तो साधारणीकरण होगा । इस प्रकार प्रभाविता तत्व के कारण चित्र भूमि पर एक आकर्षक केन्द्र भी पैदा हो गया है । प्रभाविता के बिना, चित्र में भटकाव अथवा भ्रम की स्थिति आ जाती है ।

5• प्रवाह - लय [ रीदम ]

लय शब्द का अंग्रेजी रूपान्तर रिद्म है । इसकी उत्पत्ति प्राचीन ग्रीक शब्द रिन से हुयी है । जिसका अर्थ है प्रवाह । इस प्रकार लय का अर्थ है समान अथवा सामंजस्य पूर्ण अवयवों की पुनरावृत्ति से उत्पन्न निरन्तरता । और प्रवाह का अर्थ है - चित्र भूमि पर स्वतन्त्र अवधि एवं मधुर विचरण अथवा गति मयता । प्रवाह युक्त चित्र में नेत्र को उलझन अथवा कष्टदायक विरोधाभास का सामना नहीं करना पड़ता । यह प्रवाह रेखा, रूप वर्ण अथवा तान सभी मिलाकर उत्पन्न करते हैं। जैसे - किसी खाली कागज या कैनवास या अन्तराल में कोई गति नहीं होती अथवा वह शून्य अथवा निष्क्रिय मालूम होता है । लेकिन ज्यों ही चित्रकार उस पर किसी बिन्दु का निर्माण करता है, वह अन्तराल बहुत सक्रिय हो जाता है और उस बिन्दु पर हमारी दृष्टि जम जाती है ।

पाश्चात्य कला आलोचक हरबर्ट रीड ने कला के पाँच तत्व माने हैं । जिनमें रेखा - प्रवाह प्रथम, रूप योजना द्वितीय, विस्तार का वितरण तृतीय, छाया प्रकाश चतुर्थ एवं रंग पंचम ।[1] इन सबसे ज्ञात होता है कि

1• सर हरबर्ट रीड -कला के मूल सिद्धान्त, कला सौरभ, पृ0 14

कला के सर्वमान्य तत्वों में प्रवाह एक मुख्य तत्व है । प्रवाह में सर्व -मान्य रूप से रंग, रेखा और पोत के प्रवाह की संतुलित योजना एक चित्र में परम आवश्यक है । चाहे वह रेखा सम्बन्धी प्रवाह हो अथवा रंग सम्बन्धी प्रवाह हो । प्रवाह के अनुपस्थिति में चित्र निष्क्रिय सा लगता है तथा चित्रकार का मंतव्य दर्शक तक नहीं पहुंच पाता । अत: हम प्रवाह को भी एक अत्यन्त आवश्यक तत्व मानते हैं । उस सिद्धान्त को जिसके द्वारा हमारी दृष्टि चित्र के एक भाग से दूसरे भाग में विचरण करती है, उसे प्रवाह कहते हैं ।[1]

6· <u>प्रमाण :</u>

संयोजन के तत्वों में प्रमाण से हमारा तात्पर्य होता है तत्वों के आनुपातिक संयोजन से । किन - किन तत्वों को कितने - कितने प्रमाण से चित्र में संयोजित किया जाय कि चित्र सम्पूर्ण रूप से आकर्षक बन सके । तत्वों के सम्बन्ध में प्रमाण का अर्थ तत्वों को उचित मात्रा में चित्र में आयोजित करना हुआ । जबकि अनुपात का दूसरा अर्थ आकृतियों में छोटा- बड़ा भी होता है । किसी आकृति को चित्र में कितना छोटा - बड़ा भी होता है । किस आकृति को चित्र में कितना छोटा - बड़ा बनाया जाएगा यह बात अनुपात तत्व के अन्तर्गत ही आती है ।

प्रमाण को " सम्बद्धता का सिद्धान्त " भी कहा जाता है ।यह आकृतियों का अपना प्रमाण ( लम्बाई, चौड़ाई का सम्बन्ध) तथा सभी

---

1· अप्लाइड आर्ट हैण्ड बुक, पृ0 24

आकृतियों का एक - दूसरे से सम्बन्ध होता है तथा सभी आकृतियाँ तान तथा वर्ण इत्यादि का चित्र भूमि से सम्बन्ध निश्चित करता है। प्राचीन ग्रीस वासियों ने शताब्दियों तक सौन्दर्य की खोज कर ऐसा प्रमाण निकाला जिसके अनुसार बनाने पर प्रत्येक वस्तु रुचिकर लगे। इस प्रमाण को युक्लिड का स्वर्णिम आयत सिद्धान्त कहते हैं।[1]

भारतीय शिल्प शास्त्र में इस प्रमाण को ताल, प्रमाण, कार्य प्रमाण अथवा मानवोत्पत्ति के नाम से जानते हैं तथा प्रमाणहीन प्रतिमा का विरोध करते हैं।[2] मधुर प्रमाण का कोई एक सर्वमान्य सिद्धांत या विधि निश्चित नहीं है। फिर भी कुछ ऐसे तत्व हैं, जो प्रमाण को प्रभावित करने में अपनी अहम भूमिका निभाते हैं। अतः प्रमाण का सर्वप्रथम दायित्व चित्र में रुचि पैदा करना होता है। वर्गाकार आकृति, व्यक्ति को अधिक सुखद नहीं लगती, जबकि आयताकार व्यक्ति को बहुत देर तक आकर्षित करता है, पर बहुत लम्बा आयताकार भी अच्छा नहीं लगता। विभिन्न कला विद्वानों ने विभिन्न खोज कर कुछ सिद्धान्त बनाये हैं, जो कि सर्वमान्य तो नहीं कहे जा सकते पर उचित तो कहे ही जा सकते हैं। चित्रों में संयोजनात्मक स्वरूप की सैद्धान्तिक विधियों में प्रमाण, सौंदर्य की

---

1. प्रमाणहीनां प्रतिमा तथा वर्जिताम् ।
   अधिष्ठाताध विप्रेन्द्रा विशान्ति दिवौकसः ।। 3 ।।
   - वि० ध० अध्याय - 38

2. राम गोपाल विजयवर्गीय - बूंदी शैली, राजस्थान की लघु शैलियाँ, पृ० 59

सृष्टि करने के लिए एक आधार- स्तम्भ होता है ।

7· विरोध [कान्ट्राक्ट]

चित्रांकन में निरन्तरता अथवा एक रसता को भंग करना विरोध कहलाता है । चित्रों में विरोध उत्पन्न करने से दर्शक के नेत्रों को आराम मिलता है क्योंकि जब चित्र सदैव निरन्तरता या एकरसता बनी रहती है तो दर्शक का मन ऊबने लगता है और वह कुछ परिवर्तित स्वरूप देखना चाहता है । यह मनुष्य का स्वभावज गुण है ।

विरोधी तत्वों के समावेश से दर्शक कला कृति में अधिक रुचि लेने लगता है और अधिक आवेश में भी आ जाता है । इसे कृति में शक्ति, रोचकता एवं आकर्षण उत्पन्न हो जाते हैं । विरोध के द्वारा चित्र का संयोजन सघन हो जाता है और आकृतियाँ अधिक सार्थक प्रतीत होने लगती हैं । विरोध से चित्र में गतिशीलता भी आ जाती है । चित्र के रसा - स्वादन में तीव्रता आ जाती है और चित्र जायकेदार लगने लगता है ।

समस्त कलाकृतियाँ विरोधी तत्वों से अनुप्राणित रहती हैं । वर्ण बल के समान ही चित्र में रेखा, आकृति, गठन, अनुपात एवं दिशा आदि के विरोध से चित्र में नाटकीयता प्रदान की जाती है ।

चित्रांकन में विरोध उत्पन्न करने की कोई सीमा नहीं निर्धारित की जा सकती । यह कला - सृजन कर्ता की अभिरुचि एवं कलाकृति के

---

1· डा० जी० के अग्रवाल, रूपांकन, पृ० 58

उद्देश्य पर ही निर्भर है ।

विरोध का वर्गीकरण निम्न प्रकार है -

रेखा विरोध :

सरल रेखा की सहगामिनी वक्र अथवा कोणीय रेखा प्रयोग रेखा विरोध होता है ।

दिशा विरोध :

एक दिशा में बनी आकृति की विरोधी दिशा में बना दी गई आकृति से दिशा विरोध होता है ।

वर्ण विरोध :

लाल वर्ण के साथ हरा रंग, नीले के साथ पीला आदि विरोधी रंग संगति का प्रयोग करना वर्ण विरोध कहलाता है ।

बल विरोध :

किसी वर्ण के अधिक अन्तर वाले हल्के तथा गहरे बलों का एक साथ प्रयोग बल विरोध कहलाता है ।[1]

---

1. डा० जी० के अग्रवाल, "रूपांकन" 59

आकार विरोध :

जब दो आकृतियों में काफी अन्तर हो तो आकार विरोध होता है । कभी - कभी यह प्रयोग बहुत प्रभावशाली होता है । जैसे - पर्वत समीप छोटा ऊँट अंकित करना पहाड़ ऊँचाई को प्रकट करेगा ।

धरातलीय गठन विरोध :

चित्र में एक ही धरातल का कुछ भाग चिकना, कुछ खुरदरा अंकित करना धरातलयी गठन विरोध कहलाता है ।

सृजन कर्ता जब अपनी कृति में अपने संघर्ष मय विचारों की तीव्रता लाने, उलझनों तथा समस्याओं को व्यक्त करने, युद्ध तथा टकराव की स्थितियाँ पैदा करने के लिए संयोजन में विरोधी तत्व का होना आवश्यक होता है । कभी - कभी कोमल अथवा मधुर भाव के सृजन के लिए भी विरोध की आवश्यकता पड़ती है । विरोधों की विविधता से अलंकरण में रुचि उत्पन्न हो जाती है । कुछ निश्चित प्रकार की विविधता से एक-रसता की हानि होती है । अतएव चित्रों में विरोध रोचकता प्रदान करता है ।

3· संयोजन का स्वरूप एवं विस्तार :

संयोजन के स्वरूप एवं विस्तार पर प्रकाश डालने के पूर्व, यह सुनिश्चित कर लेना समीचीन समझता हूँ कि संयोजन के स्वरूप एवं विस्तार के क्या तात्पर्य हैं । इस अध्याय के प्रथम खण्ड में संयोजन का अर्थ और द्वितीय खण्ड में संयोजन के सिद्धान्तों का वर्गीकरण किया गया है । अब इस तृतीय खण्ड में संयोजन के स्वरूप एवं विस्तार पर प्रकाश डाला जाएगा।

"स्वरूप " का तात्पर्य है किसी भी वस्तु - विशेष के आकार के उभय - पक्ष { वाह्य एवं आन्तरिक } का विश्लेषण प्रस्तुत करना ।

" विस्तार " का अर्थ है किसी भी योजना अथवा किसी विधि-विशेष का व्यापक रूप में क्रियान्वयन प्रदान करना । इसी परिप्रेक्ष्य में हम संयोजन के स्वरूप एवं विस्तार की चर्चा - " मारवाड़ के लघु चित्रों को ध्यान में रखते हुए करेंगे । जैसा कि इसी अध्याय के द्वितीय खण्ड में संयोजन के सिद्धान्तों को सात वर्गों में वर्गीकृत किया गया है । इसी आधार पर संयोजन के सिद्धान्त के स्वरूप एवं विस्तार का अनुशीलन करना यथार्थ प्रतीत होता है ।

कला तत्वों के दो मुख्य उद्देश्य हैं - सार्थकता एवं रुचि।सार्थकता हेतु पूर्व योजना बनाना अवश्य होता है । इस योजना के अनुसार कलाकार सुन्दर प्रभाव उत्पन्न करने हेतु एक जैसे तत्वों का और संघर्ष पूर्ण प्रभाव उत्पन्न करने के लिए विरोधी तत्वों का प्रयोग करता है । इस प्रकार संयोजन के सिद्धान्त किसी निर्दिष्ट प्रभाव को उत्पन्न करने की दृष्टि से कला तत्वों को परस्पर सूत्रबद्ध करने की केवल तीन विधियाँ ही हो सकती हैं -

1. एक समान वस्तुओं को परस्पर सूत्र बद्ध करना ।
2. किंचित् विभिन्नता वाली वस्तुओं को सम्बन्धित करना यानी सामंजस्य स्थापित करना ।
3. पूर्णतः विरोधी वस्तुओं को सम्बन्धित करना अर्थात् विसम्वादित्य यानि विरोध पैदा करना ।

कला के समस्त रचना - विधान के ये ही तीन मुख्य आधार हैं ।

इन सम्बन्धित चित्र - संयोजना पर विचार करणीय है :-

**अनुपात का प्रयोग :**

मारवाड़ के लघु - चित्रों में अनुपात का विशेष महत्व है । मारवाड़ी लघु चित्रों में अनुपात का पूरा ध्यान रखने का प्रयास किया गया है । चूंकि मारवाड़ी चित्रण शैली पर अजन्ता कालीन शास्त्रीयता का प्रभाव है । अत: यहाँ के चित्रों में लम्बाई - चौड़ाई का परस्पर आनु - पातिक सम्बन्ध रखा गया है । चित्रों में मानवाकृतियों, वास्तु - चित्रण, प्रकृति चित्रण तथा पशु - पक्षियों के अंकन में अनुपात का सर्वथा ध्यान रखा गया है । § चित्र संख्या- 2, 37 §

इस चित्र में अन्तराल के आनुपातिक विभाजन एवं मानवाकृतियों के अंग - प्रत्यंगों की आनुपातिक संरचना चित्र के सौन्दर्य की अभिवृद्धि कर रही है ।

**सन्तुलन का प्रयोग :**

" बैलेन्स इज दि इक्विलिब्रियम आफ अपोजिंग फोर्स ."[1]

मारवाड़ी लघु चित्रों में सन्तुलन की उचित व्यवस्था प्रदान करने के लिए कलाकार बराबर सचेष्ट रहा है । यहाँ चित्रभूमि के विरोधी प्रभावों को व्यवस्थित ढंग से चित्रित करने का प्रयास किया गया है । मुख्य वस्तु

---

1. मि. एम. ग्रेव्स -" दि आर्ट आफ कलर एंड डिजाइन.", पेज 144

का आकर्षण बनाए रखने के लिए चित्र में उसे प्रधानता प्रदान किया गया है और उस प्रमुख चित्र के गुरुत्व भार को सन्तुलित करने के लिए अन्य उपादानों का चित्रण किया गया है । यहाँ का चित्रकार रंगों में भी संतुलन रखने का उत्तरोत्तर प्रयास किया है। चित्रों में सम सन्तुलन तथा असम - सन्तुलन का प्रयोग किया गया है । मानवाकृतियों के साथ पशु - पक्षी, पर्वत - जलाशय, वृक्ष लताएँ विशेषकर महलों के अलिंदों और बुर्जों तथा मीनारें अत्यन्त ही सन्तुलित स्वरूप में प्रस्तुत की गयी है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि मारवाड़ के चित्रकारों को लघुचित्रों में सन्तुलन की व्यवस्था देने में महारत थी । ( चित्र संख्या -18 ), रेखा सन्तुलन, आकृति सन्तुलन, वर्ण सन्तुलन तान सन्तुलन एवं परिप्रेक्ष्य सन्तुलन का प्रभाव यहाँ के लघु चित्रों में दृष्टिगत होता है ।

विरोध का प्रयोग :

मारवाड़ी लघु - चित्रण - विधान में चित्र की समरसता को समाप्त करने तथा चित्रों में सहज आकर्षण पैदा करने के लिए और प्रभावशीलता प्रकट करने के लिए चित्रों में विरोध उत्पन्न करके, चित्रण सजीव करने का उत्तरोत्तर प्रयास परिलक्षित होता है ।

चित्र - संयोजनों में रेखा - विरोध, वर्ण - विरोध, आकार-विरोध प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है । जहाँ तक बल - विरोध का प्रश्न है, चित्रों में प्रथम रंगत का प्रयोग होने के कारण, बल विरोध का ह्रास दिखायी पड़ता है । ( चित्र फलक — 12 )

प्रभाविता का प्रयोग :

मारवाड़ी लघु - चित्र संस्कृति में कला सृजकों ने चित्र के संयोजन को व्यवस्थित रूप देने के लिए प्रभाविता के सिद्धान्त का पालन किया गया है । यथेष्ट वस्तु या व्यक्ति को सर्वाधिक महत्व प्रदान करने के लिए चतुर चितेरों ने भरसक प्रयत्नशील रहे हैं । यदि चित्र में अनेक आकृतियाँ दर्शायी गयी हैं तो मुख्य आकृति का स्वरूप अन्य आकृतियों की अपेक्षा आकर्षक बनाने की चेष्टा की गयी है । रानी और सेविका, घुड़सवार और सईस, राजा और सामन्तों आदि में अन्तर दिखाकर चित्र में प्रभाविता को अक्षुण्ण बनाये रखने का सतत प्रयास हुआ है । प्रभाविता दिखाने में लोक-रुचि का समावेश " किशनगढ़ " शैलीके चित्रों में विशेष रूप से परि - लक्षित होता है । ( चित्र फलक — 13 )

प्रभाविता को पुनरावृत्ति के माध्यम से भी दर्शाने का प्रयास किया गया है । ( चित्र फलक – 42 ) घुमित बादलों की छटा, उड़ते हुए एक क्रम में पक्षीगण तथा अलंकरणों आदि के चित्रण में पुनरावृत्ति की प्रभाविता के दर्शन होते है ।

सामंजस्य का प्रयोग :

चित्रों में सामंजस्य का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है ।

---

1• डॉ० जी० के० अग्रवाल - रूपांकन, पृ० 62
" हारमोनी इज ए कम्बीनेशन आफ एलीमेन्ट्स व्हिच आर सिमिलर इन वन आर मोर रेस्पेक्ट्स "[1]

सामंजस्य दर्शक को शीतलता प्रदान करता है । मारवाड़ी चित्रों में विसम्वाद एवं एकरसता को ध्यान में रखते हुए सामंजस्य स्थापित करने में कला - सर्जक अपनी कला - पटुता का परिचय दिया है ।

भाव एवं विचार के भी सामंजस्य दिखायी देते हैं । कलाकारों की पैनी दृष्टि रेखा सामंजस्य, वर्ण एवं तान सामंजस्य, धरातलीय पोटा अथवा गठन सामंजस्य, आकृति सामंजस्य, श्रेणी क्रम द्वारा सामंजस्य आदि अत्यन्त सूक्ष्म एवं तीव्रता से गतिमान हुयी है । सामंजस्य के सुन्दर एवम् समुचित प्रयोग से चित्रण कार्य अत्यन्त ही सुरुचि पूर्ण हो गया है ।
§ देखिये चित्र फलक - 26 §

लय का प्रयोग :

प्रवाह सुखद होता है, चाहे वह सरिता का हो या कविता का, झरने का हो या संगीत का, घोड़ों की टाप का या सहेली के पायल का, कोयल की कूक हो या कला सृजन, सभी हृदय तन्त्री रूपी वीणा के तारों को झंकृत कर आनन्दानुभूति कराने लगते हैं । क्या ऐसे महत्वपूर्ण कला पक्ष पर मारवाड़ के चित्र - सर्जकों का ध्यान नहीं गया । उत्तर नकारात्मक है । मारवाड़ी लघु - चित्रों में गतिमयता का पूर्ण रूपेण निर्वाह किया

---

1. एच॰ एंड वी॰ गोल्डस्टीन: "आर्ट एंड एवरी डे लाइफ", पेज-108 " इन आर्ट रिदम मीन्स एन इजी, कनेक्टेज पाथ एलोंग व्हिच दि आई मे ट्रेवेल इन एनी अरेन्जमेन्ट आफ लाइन्स, फार्म्स आर कलर्स ."[1]

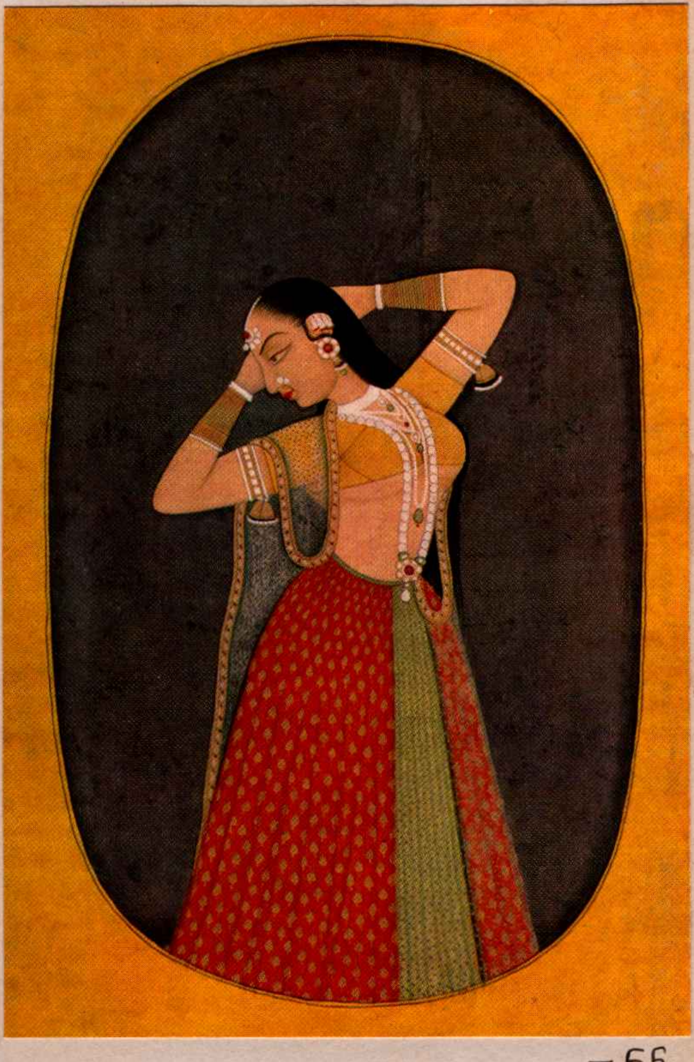

– 55

# पंचम अध्याय

******************************************************

## पंचम अध्याय

## मारवाड़ लघु-चित्रों का संयोजनात्मक अध्ययन तथा उपलब्धियाँ एवं विशेषताएँ

1} परिचय

2} विषयवस्तु

3} संयोजनात्मक अध्ययन:-

{क} जोधपुर :- प्रमाण एवं अनुपात - संतुलन - प्रभाविता
सामंजस्य - विरोध - लय -एकता एवं सहयोग

{ख} बीकानेर:- प्रमाण एवं अनुपात -संतुलन - प्रभाविता
सामंजस्य-विरोध-लय -एकता एवं सहयोग

{ग} नागौर :- प्रमाण एवं अनुपात-संतुलन - प्रभाविता
सामंजस्य-विरोध-लय- एकता एवं सहयोग

{घ} किशनगढ़:- प्रमाण एवं अनुपात -संतुलन - प्रभाविता
सामंजस्य-विरोध-लय- एकता एवं सहयोग

{ङ} जैसलमेर :- प्रमाण एवं अनुपात-संतुलन - प्रभाविता
सामंजस्य - विरोध-लय-एकता एवं सहयोग

4} उपलब्धियाँ एवं विशेषताएँ

******************************************************

पंचम अध्याय

**********************************

मारवाड़ के लघु - चित्र :

परिचय : मारवाड़ के लघु चित्रों की संयोजनात्मक अध्ययन के करने के पूर्व, मारवाड़ के लघु-चित्रों का संक्षिप्त परिचय एवं विषयवस्तु को प्रकाश में लाना तथ्य - परक एवं समीचीन है। भारत के गुफा - मन्दिरों के भित्ति - चित्रों की परम्परा अपने लघु रूप में ग्रन्थ चित्रों में विकसित

हुयी ।[1] जो कि लघु चित्रों के रूप में विकसित हुयी । ये चित्र आकार में छोटे होने के कारण, लघु चित्र कहलाये । तथा अपना स्वतन्त्र अस्तित्व होने के कारण इन्हें पुस्तक चित्रों से पृथक लघु - चित्र नाम से अभिहित किया गया । लघु चित्र का अंग्रेजी अनुवाद " मिनिएचर माना गया परंतु यह उपयुक्त नहीं था, क्योंकि " मिनिएचर " शब्द का प्रयोग धार्मिक ग्रन्थों के पृष्ठ के लिए होता था । विशेषकर अनुच्छेद [ पेराग्राम ] से पहले अक्षर में जिसे " रुकिक "[2] कहते थे । मिनिएचर का लेटिन शब्द " मिनिएर " है । योरोप के कला जगत में मिनिएचर शब्द का प्रयाग उन चित्रों के लिए होता था, जो " रेड लेड " रंगों से चित्रित किया जाता था । भारतीय लघु - चित्र एलबम में लगाने तथा पास से देखने के लिए खूब

---

1· [अ] मिनिएचर पेंटिंग्स वेर इन्ट्रोड्यूस्ड इन बुक्स, दे लुक ऐज इफ दे वेयर टैकेन आउट रिड्यूस्ड इन साइज फ्राम द वाल एण्ड पुट एलांग साइड द टेक्स्ट " सी० शिव राम मूर्ति " इण्डियन पेंटिंग, पृ० 85

[ब] "द मिनिएचर्स - हिड नाट स्ट्रांगली एनफ ओरिजिनेट ऐज - मिनिएचर्स, दीज आर सेवरल लार्ज साइज ड्राइंग्स एण्ड कार्टून्स हिव्च शो देट दिस वाज प्राइमरली ए " म्यूरल आर्ट - सी० शिवराम मूर्ति - वही - पृ० 92

2· राबर्ट रीफ - " ओरियण्टल मिनिएचर्स ", पृ० 41

3· आर० दास गुप्ता - " ईस्टर्न इण्डियन मिनिएचर पेन्टिंग ", " इन्ट्रोडक्शन ", पृ० 1

बारीकी से बने । संस्कृत साहित्य में सूक्ष्माकार चित्र, सूक्ष्म चित्र, लघ्वा का चित्र शब्दों का प्रयोग मिलता है कि " मिनिएचर " इनका अनुवाद नहीं है ।

बाह्य आक्रमणों के फलस्वरूप सांस्कृतिक आदान - प्रदान के कारण, संस्कृति तथा कला ने परिवेश में उभर कर सामने आयी । वास्तव में पुस्तकों में बने चित्रों का उद्देश्य ग्रन्थ - सज्जा था, जिससे ग्रन्थों में सौंदर्य युक्त लगे । लिपि के बीच उनका कार्य शेष स्थान की रंग पूर्ण सज्जा थी। ताड़ पत्रीय ग्रन्थों में बनी शोभन शुद्ध " अलंकारिक मोटिफ ] मात्र थे । ग्रन्थों के पृष्ठों में लिपिबद्ध सामग्री पहले और चित्र दूसरे स्थान पर थे । यद्यपि चित्रों का सहारा न लेकर केवल लिपि मात्र से ही पृष्ठ के संयोजन को सुन्दर बनाने के लिए लिपि के बीच रिक्त स्थान छोड़ कर नेत्रगत आकर्षण का केन्द्र बनाया । किन्तु इस परम्परा का विकसित रूप आगे नहीं मिलता ।

कालान्तर में चित्र के ऊपर, नीचे अथवा बीच में लिपि का अंकन होता था । इस प्रकार चित्र तथा लिपि दो पृष्ठ के संयोजन में महत्व पूर्ण अंग होते हुए भी चित्र को प्राथमिकता मिली । ऐसे चित्रित ग्रन्थों के साथ ही ग्रन्थों में चित्रित, शैलीबद्ध व्यक्ति चित्रों से ही " व्यक्ति चित्रों" के निर्माण की प्रेरणा मिली । इस प्रकार चित्रित ग्रन्थों तथा स्वतन्त्र व्यक्ति चित्रों के निर्माण ने स्वतन्त्र लघु चित्रों के विकास का कार्य प्रशस्त किया । यदि कुमार स्वामी के इस मत को स्वीकार कर लिया जाय कि " मुगल शैली ने राजपूत शैली के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया"- तब सहज ही स्वीकार किया जा सकता है कि मुगल शैली के चित्रों में लिपि को चित्र - संयोजन में स्थान देने की जो परम्परा चली, उसमें स्वतंत्र लघु -

चित्रण शैली का विकास हुआ । और लिपि केवल शीर्षक के रूप में प्रयुक्त होने लगी ।

ताड़-पत्रीय ग्रन्थों के उपरान्त, कागज पर लिखी गयी चित्रित पुस्तकों में ये ग्रन्थ सेतु का काम करते हैं । जिनका एक - एक पृष्ठ लिपि बद्ध शीर्षक पर बना है । ऐसे ग्रन्थ एक ओर पुस्तक - चित्रण -परम्परा में दिखायी देते हैं, तो दूसरी ओर उनका प्रत्येक पृष्ठ अपने में संपूर्ण है। रज्मनाम, चौर पंचाशिका, गीत - गोविन्द, महाभारत, भागवत - पुराण, रामायण, रसिक - प्रिया, बिहारी - सतसई आदि के चित्र इस कार्य के उदाहरण हैं । लघु - चित्र इकाई के रूप में सबसे अधिक स्वतंत्र चित्र, व्यक्ति चित्र के रूप में बने । दरबारों में विभिन्न चित्रों के"एलबम" बनाने में पहले ग्रन्थ विशेष होने के कारण सभी चित्रों में विषयवस्तु की एक सूत्रता होती थी । किन्तु विविध विषयों के चित्रों का एलबम बनाने में, केवल सुरक्षा की ही भावना थी, जो कालान्तर में पोथी - चित्र के ही अभिप्राय से " लघु - चित्र " की संज्ञा दी गयी ।

मध्य काल में देश के कोने - कोने में लघु - चित्रण - परम्परा का विकास हुआ । राजस्थान में ऐसे चित्रों की परम्परा काफी विकसित हुयी और मारवाड़ क्षेत्र की लघु - चित्रण, विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

---

1· डा0 शुकदेव श्रोत्रिय - " जैसलमेर का चित्र वैभव" - शोध प्रबन्ध, अप्रकाशित, पृ0 219

विषयवस्तु :

15 वीं शती में पश्चिमोत्तर भारत में चित्रण का क्रान्तिकारी विकास हुआ । जिसके लिए दो प्रमुख तत्व हैं । पहला कागज का प्रचलन दूसरा साहित्य का विकास । रामानन्द ने भक्ति का बिगुल बजाकर जो सहज रूप जन - मानस के समक्ष प्रस्तुत किया, जिससे उनके अनुयायी समस्त उत्तर भारत में फैल गये । 16 वीं शती में उसके इस आन्दोलन के अग्रणी धर्माचार्य ही नहीं, बल्कि कवि और संत, सूफी भी हुए । तुलसी से राम, चैतन्य, मीरा, सूर और रसखान से कृष्ण ने, सामान्य जन से लेकर राज- सिंहासन तक को अपने प्रेम रस में आकण्ठ निमग्न कर लिया ।राधा के प्रेमानुराग की ऐसी रस - वर्षा हुयी कि " साहित्य " और " कला" का पोर - पोर रसाप्लावित हो गया । न तो चित्रों का विवरण काव्य में रहा और न काव्य का दृष्टिगत रूप " चित्र " रहा । यहाँ तो दोनों एकाकार होकर रस वृष्टि करने लगे ।

कला इस युग में पोथी चित्रण से निकलकर " लघु - चित्र के परि- वेश में आयी और अब संस्कृति के अंग साहित्य तथा धर्म ही नहीं, वरन् " कला " { सौन्दर्य शास्त्र} संगीत, लोकोत्सव और लोकाचार भी जुड़ गया । चित्रों की विषय-वस्तु मुख्य तया, भक्ति [1], श्रृंगार [2] तथा

---

1. " द हिन्दू स्पिरिट आफ रिलिजस पावर एण्ड डेडिकेशन इज वेस्ट सीन इन द सिरीज आफ राजस्थानी एंड पहाडी मिनियचर्स" - सी० शिवराम मूर्ति, " इण्डियन पेंटिंग ", पृ० 93

2. सी० शिवराम मूर्ति -" साउथ इण्डियन पेन्टिंग्स", पृ० 25

संगीत[1] के द्वारा अनुप्राणित हुयी । इसके अतिरिक्त शौर्य तथा दरबारी वैभव चित्र विषय बना । अधिकतर मारवाड़ शैली के चित्रकार एवं उनके आश्रयदाताओं ने क्षेत्रीय विषयों ‖ नेटिव थीम्स ‖ को पसन्द किया जिसमें संगीत, पौराणिक प्रसंग तथा प्रणय - गाथायें थीं । चित्र, संगीत तथा काव्य तीनों ललित कलाओं का संगम लघु - चित्रशैली में देखने को मिलता है ।[2] धीरे - धीरे चित्रकार पुस्तकों में चित्रित रुढ़िबद्ध ‖टाइपड‖ व्यक्ति-चित्रण से हटकर सही अर्थों में व्यक्ति - चित्र ‖पोर्ट्रेट्स ‖ चित्रण आरंभ किया ।

देशी रजवाड़ों और मुगल शासित केन्द्रों में भी संस्कृति की मूल धारा अबाध प्रवाहित होती रही । इसी कारण, लघु चित्रों का विकास का जो क्रम राजस्थान व मध्य भारत में रहा, उसका प्रभाव मुगल चित्रों पर भी पड़ा । व्यक्ति चित्र, पशु - पक्षी, वन - उपवन, पुष्प, वृक्ष आदि चित्र को उन्नत स्वरुप देकर लघु चित्रों के निर्माण में मारवाड़ क्षेत्र का अप्रतिम योगदान रहा ।

मारवाड़ की विभिन्न रियासतों में पल्लवित चित्रण - परम्परा मुगल कला की तुलना में दरबार से कम बँधी हुयी थी । हिन्दू संस्कृति से ओत - प्रोत मारवाड़ी चित्रों में धर्म के अतिरिक्त साहित्य, संगीत तथा लोक - तत्वों का भी मिश्रण था । अतः मारवाड़ी चित्रों की विषयवस्तु

---

1. सुवर हाजक- " मिनिएचर फ्राम द ईस्ट - पृ0 22

2. रार्बट रीफ - " ओरियण्टल मिनिएचर " पृ0 41

में भक्ति अपने रहस्यात्मक विरोध पर कृष्ण भक्त के रूप में, साहित्य-लालित्य, श्रृंगार प्रेमाख्यानों के रूप में व संगीत - राग - रागिनियों की श्री को प्रतिष्ठित किया । इन प्रधान तत्वों के अतिरिक्त विलास - प्रिय शासकों ने अपनी शौर्य वृत्ति के प्रदर्शन में, व्यक्ति चित्र एवं शिकार तथा अन्तःपुर ( रनिवास ) जल केलि एवं चौसर - क्रीड़ा आदि का अंकन करवाया ।

भारतीय संस्कृति में वैष्णव धर्म की नींव अत्यन्त गहरी है ।[1] वैष्णव धर्म के दो चरित्र - कृष्ण और राम जन - मानस में आज भी आदर्श रूप में प्रतिष्ठित हैं । कृष्ण - भक्ति का मुख्य स्रोत भागवत पुराण तथा राम - भक्ति का आधार वाल्मीकि तथा तुलसी दास कृत रामचरित मानस है । हिन्दी साहित्य में भक्ति काल तथा रीति काल में वैष्णव धर्म की जो धारा बही, उसके प्रभाव में भक्ति से श्रृंगार और रास - विलास तक, कृष्ण, चित्रकारों के प्रिय नायक रहे ।[2] वैष्णव - भक्ति की यह लहर। 2वीं

---

1· आनन्द कुमार स्वामी -" आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स आफ इण्डिया एण्ड सीलोन " - पृ0 90

2· " राजपूत पेंटिंग आन द अदर हैण्ड, इलस्ट्रेट्स एवरी पेज आफ मेडिवल हिन्दी लिटरेचर एण्ड, इंडीड इट्स थीम्स केन नाट वी आण्डर स्टुड विदाउट ए थारो नालेज आफ द इण्डियन एपिक्स, द कृष्ण लीला लिटरेचर, म्यूजिक एण्ड एरोटिक " - आनन्द कुमार स्वामी, " हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट्स, पेज । 28

शती में, बंगाल से जयदेव के गीत - गोविन्द से शुरू हुयी और 15 वीं 16 वीं शती में अपने चर्मोत्कर्ष पर पहुँची । जिन कवियों की रचनाओं ने चित्रण को सर्वाधिक प्रेरणा प्रदान की उनमें सूरदास, केशवदास, तथा बिहारी का नाम विशेष उल्लेखनीय है ।

भारतीय चित्रों के इतिहास में 17 वीं शती को द्वितीय स्वर्ण युग कहा जा सकता है ।[1] कला साधना अपने चर्मोत्कर्ष पर पहुँची और न केवल मारवाड़ ( जोधपुर, बीकानेर, नागौर, किशनगढ़, जैसलमेर) वरन् राजस्थान के छोटे - छोटे ठिकानों में भी चित्र सृजित किये गये । हजारों की संख्या में बने इन चित्रों में विषय वैविध्य के साथ कलात्मक उत्कर्ष के दर्शन होते हैं । साहित्य में प्रकृति - वर्णन कवियों का प्रिय विषय रहा तो चित्र के क्षेत्र में भी स्वतन्त्र रूप से प्रकृति का अंकन चितेरों का प्रिय विषय बना । बारहों महीनों का चित्रण - " बारहमास " के नाम से विख्यात हुआ । जिसमें वर्षा, बसन्त का अप्रतिम वर्णन हुआ है ।[2]

मारवाड़ में उपलब्ध लघु चित्र विविध विषयों को समेटे हुए हैं। इन लघु - चित्रों का संकलन मारवाड़ के क्षेत्रीय ठिकानों, रजवाड़ों, किलों, महलों, ग्रन्थ - भण्डारों के व्यक्तिगत एवं राजकीय संग्रहालयों में किया गया है और कुछ विशिष्ट चित्रों का प्रकाशन " ललित कला अकादमी, दिल्ली एवं राज्य ललित कला अकादमी, राजस्थान द्वारा किया गयाहै ।

---

1· कार्ल खण्डेलवाल - " राजस्थानी पेंटिंग एन इन्ट्रोडक्शन " वार्षिकी, 63, पृ0 11912

2· सी0 शिवराम मूर्ति, इण्डियन पेन्टिंग, पृ0 94

## (क) जोधपुर के लघु चित्रों का संयोजनात्मक अध्ययन :

संयोजन के सिद्धान्तों की व्याख्या चतुर्थ अध्याय में सविस्तार से की जा चुकी है। इन " चित्र - सिद्धान्तों " की कसौटी पर " जोधपुर " के लघु - चित्रों की संयोजनात्मक - व्यवस्था का अध्ययन एवं विश्लेषण पंचम अध्याय में अंतरगत प्रस्तुत है।

यह बात तो सर्व मान्य है कि कोई भी कला अपने आँचल में अपने परिवेश की विशिष्टता को अक्षुण्ण निधि की तरह संजोये रहती है। इसी के आधार पर ही कला - मर्मज्ञ उसकी गुणवत्ता का आँकलन करके जन - मानस के समक्ष प्रकाशित करते हैं। इसी सन्दर्भ में प्रस्तुत है - " जोधपुर के लघु चित्रों का संयोजनात्मक अध्ययन।"

### 1. अनुपात - प्रमाण :

जोधपुर के लघु चित्रों में अन्तराल - व्यवस्था विविधता है परंतु अग्रभूमि एवं पृष्ठभूमि का आवंटन विषयानुकूल है। लघु - चित्र सं0 —2— " ढोला मारु " का चित्र है। इसमें अन्तराल की विशादता एवं अग्रभूमि की स्थिति - अन्य लघुता चित्र के अनुरुप है। इस चित्र में अन्तराल - आवण्टन ही चित्र को प्रभावी बनाने में सक्षम है। लघु चित्र सं0 —2— जो कि शृंगार करती हुयी महारानी " का है। इस अन्तराल का समान आवंटन है और परिप्रेक्ष्य का उचित विधान है। लघु - चित्र सं0 —41— जो कि " झूला झूलते हुए शाही युगल " का है। समगत लघुता एवम् विशादता के आधार पर महाराजा को प्रमुखता प्रदान की गयी है। आकारगत अनुपात का अत्यन्त उत्कृष्ट चित्र है। " शिकार करती हुयी रानियाँ - इसमें रानी, घोड़े, कुत्ते, बाज और अन्य पक्षियों में आकार-

गत प्रमाण दर्शनीय हैं । चित्र संख्या - 62, 40, 2, आदि )

2· संतुलन :

जोधपुर के प्राय: सभी लघु चित्रों में संयोजन सिद्धान्त के महत्व-पूर्ण वर्ग सन्तुलन की उचित व्यवस्था की गयी है । चित्र से समसन्तुल और असम - संतुलन दो का भरपूर समावेश है । चित्र संख्या — 62, 41, 2 में झूले के दोनों स्तम्भ, दोनों किनारों पर खड़ी गायिकाएँ । सेविकाएँ शीर्ष के मध्य भाग में अंकित छतरी, स्थित - जन्य परिप्रेक्ष्य को दिखाते हुए दो ओर सम रूप में वन वर्जु, अग्रभूमि पर बनी हुयी जाली आदि चित्र के विशिष्ट सन्तुलन के परिचायक हैं । ( लघु चित्र संख्या — 2 ) ।

असम सन्तुलन में " ढोला मारु ", " शृंगार करती हुयी और " शिकार करती हुयी रानियाँ हैं । इन चित्रों में असम सन्तुलन को अत्यन्त ही जीवन्त विधा से निरूपित किया गया है । जिससे चित्रों में किसी प्रकार न्यूनता नहीं झलकती । देखिये लघु - चित्र संख्या 40 आदि ।

3· प्रभाविता :

जोधपुर के लघु - चित्र त्रिभुजाकार, आयताकार तथा वृत्ताकार संयोजन दृष्टिगत होते हैं । त्रिभुजाकार संयोजन विधा वाले चित्र में दृष्टि शीर्ष स्थान पर पहुँचती है, जहाँ राजा का चित्र है, जिसे मुख्य रूप से चित्र में प्रधानता दी गयी है । ( लघु चित्र संख्या — 28 ) । वर्गाकार वाले चित्र में दृष्टि बिन्दु मध्य भाग में पहुँचती है, जहाँ रानी शृंगार कर रही है । रानी के चित्र को प्रभावी बनाने के लिए रानी को केन्द्र बिन्दु

पर प्रतिष्ठित किया गया है । ﴾ लघु चित्र संख्या – 28 ﴿ । इसी प्रकार इसी चित्र में वृत्ताकार स्थिति बन जाती है । इसमें भी दृष्टि का आकर्षण केन्द्र बिन्दु केन्द्र ही होता है, जहाँ पर रानी का चित्र है । ﴾ लघु चित्र संख्या – 40 ﴿ ।

4. <u>सामंजस्य :</u>

जोधपुर के लघु - चित्रों को संयोजनात्मक दृष्टि से विश्लेषित करने पर यह तथ्य सामने आता है । इन लघु - चित्रों में रेखा, वर्ण, रूप और अंतराल ,तान और गठन चित्र तत्वों और अनुपात आदि चित्र -सिद्धान्तों का समुचित तालमेल बैठाकर संयोजनात्मक व्यवस्था में सौन्दर्य की अभि - वृद्धि की गयी है । लघु चित्र संख्या – 27 में ऊर्ध्वाकार और क्षैतिज रेखाओं में सामंजस्य स्थापित करने के लिए परिप्रेक्ष्य के दृष्टिक्रम में तिरछी रेखाओं का प्रयोग किया गया है । वर्ण - सामंजस्य का सुन्दर विधान लघु- चित्र सं0 – 2 है । रूप - सामंजस्य, अंतराल सामंजस्य, तान सामंजस्य एवम् गठन - सामंजस्य का उत्तम स्वरूप विस्तार " शृंगार करती हुयी रानी " के चित्र में है । लघु चित्र सं0 40,41,48,28 आदि ।

5. <u>विरोध :</u>

चित्र की एक रसता को भंगकरके प्रभाविता उत्पन्न करना ही विरोध - सिद्धान्त का गुण - धर्म है । लघु चित्र संख्या - –40 में रेखा विरोध ऊँट की टाँगों में तथा लटकते हुए गजरे और रानी के पैर में हैं । वर्ण विरोध लघु चित्र संख्या – 2 में स्पष्ट रूप से नीले आसमान में श्वेत पक्षिगण तथा परस्पर घोड़ों में तथा रानी का शरीर और कंचुकी में विशेष रूप से उल्लेखनीय है । लघु चित्र संख्या – 33 में सेज पर बिछी

चादर और मसनद में वर्ण विरोध प्रभाविता उत्पन्न कर रहा है । वर्ण-विरोध के अन्य चित्र देखिये लघु चित्र संख्या — 33 आदि में ।

6· <u>लय:</u>

चित्रों में लय का अति विशेष महत्व है । लयहीन चित्र निर्जीव लगते हैं । जोधपुर के लघु चित्रों में लय के अनुपम प्रयोग से संयोजनात्मक - व्यवस्था सजीव एवं लालित्य पूर्ण हो गयी है । रेखा, वर्ण रूप एवं तान का लयात्मक प्रयोग चित्रों को नन्दतिक स्वरूप प्रदान कर रहा है । लघु चित्र संख्या — 2 में घोड़ों की और कुत्तों की गतिमान मुद्रा, रानियों की भाव - भंगिमा, पक्षियों की भयाक्रांत उड़ान में लयात्मक गतिशीलता लावण्य एवं चारुता की सृष्टि करने में समर्थ है । कुत्तों के कान और पूंछ, घोड़ों की पूंछ और के बाल तथा रानियों की साड़ी की फहरन में लयात्मकता दर्शनीय है । लयात्मक सौन्दर्य के अनेकानेक लघु चित्र हैं । देखिये लघु चित्र संख्या 2,27,28,40,41 आदि ।

7· <u>एकता :</u>

जोधपुर शैली के लघु चित्रों में संयोजन के सिद्धान्तों एवं संयोजन के तत्वों की समन्वित एकता अन्यत्र दुर्लभ है । संयोजनात्मक परिप्रेक्ष्य में चित्र तत्वों तथा चित्र सिद्धान्तों का एकीकरण ही चित्र को भाव एवम लालित्य से समृद्ध पूर्ण बनाता है । लघु चित्र संख्या — 13 में " झूला झूलते हुए शाही युग्म " में लय, प्रभाविता, सामंजस्य आदि गुण चित्र तत्वों के सहयोग से लालित्य एवं प्रभाविता उत्पन्न कर रहे हैं । महाराज के मुख - मण्डल का अंकन करके प्रभाविता एवं सौन्दर्य - सृष्टि करने में समर्थ है । इसी प्रकार " रानी के श्रृंगार वाले चित्र में भी चित्र तत्वों और

असिद्धान्तों का पूर्ण समावेश है । यही कारण है कि इन चित्रों में अद्वितीय सौन्दर्य की छटा झलकती है । लघु चित्र संख्या —— ।

{ख} बीकानेर लघु चित्रों का संयोजनात्मक अध्ययन :

चित्र संयोजन के सिद्धान्तों की विशिष्ट व्याख्या चतुर्थ अध्याय में की जा चुकी है । पंचम अध्याय में हम बीकानेर के लघु चित्रों के संयोजन तत्वों एवं सिद्धान्तों के माप दण्ड से परितुल्यित करके एक विश्लेषित अध्ययन प्रस्तुत करेंगे । जिससे बीकानेर की लघु - चित्रण शैली की विशिष्टता का आँकलन किया जा सके । बीकानेर के लघुचित्र जन-मानस के हृदय - पटल पर छाये हुए मध्य - कालीन चित्र संस्कृति के द्वितीय स्वर्ण युग की गाथा प्रस्तुत करते हैं । जिनका सम्यक् अनुशीलन करना नितान्त आवश्यक एवं समीचीन प्रतीत होता है । इसी सन्दर्भ में बीकानेर के लघु चित्रों का संयोजनात्मक अध्ययन की विश्लेषणात्मक समीक्षा प्रस्तुत की जा रही है ।

1. अनुपात प्रमाण :

बीकानेर शैली के लघु चित्रों में अनुपात का सर्वथा निर्वाह किया गया है । चित्र संख्या — 3 में अभिसारिका नारी और वास्तुचित्रण में परस्पर रूपगत अनुपात है । अभिसारिका अंग - प्रत्यंगों में अनुपात दृष्टिगत हो रहा है । वास्तु चित्रण में गवाक्षों { रोशनदानों और उसकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई में परस्पर अनुपात विद्यमान है । अंतराल विभाजन समुचित ढंग से किया गया है । अग्रभूमि व पृष्ठभूमि का सुन्दर समन्वय हुआ है । वास्तु में रेखायें अत्यन्त ही सन्तुलित हैं । लघु चित्र संख्या — 18 में राजा - रानी एवं परिचारक एवं परिचारिकाओं के

स्वरूप में समुचित अनुपात दृष्टव्य है । लघु चित्र संख्या — 45 में भी परिचारिका और रानी की आकृति में सुन्दर प्रमाण विधान का अनुपालन किया गया है । देखिये लघु चित्र सं0 ———— आदि ।

2· **संतुलन :**

बीकानेर शैली के लघु चित्रों में संतुलन का समुचित विकास हुआ है । लघु चित्र संख्या ———— में नायिका केन्द्र विन्दु पर स्थित है और उसके आगे तथा पीछे वृक्षों का अंकन चित्र के अग्रभाग को संतुलित करके सौंदर्य की सृष्टि कर रहे हैं । पृष्ठ भाग में महल को संतुलित करने के लिए उसकी विपरीत दिशा में दो बड़े वृक्षों का अंकन किया गया है । ताकि चित्र में समभार परिलक्षित हो सके । लघु चित्र संख्या———— में भी इसी प्रकार रानी और परिचारिका मध्य भाग में अंकित करके संतुलन का पार्श्व में अंकित वृक्षों के माध्यम से किया गया है । लघु चित्र संख्या ———— में राजा और रानी के पीछे क्रमशः अंगरक्षक एवं परिचारिका के चित्र अंकित करके चित्र में सौन्दर्य - सृष्टि का विधान किया गया है । लघु चित्र संख्या 47, 3 — में भी पूर्ण संतुलन का सृजन हुआ है ।

3· **प्रभाविता :**

बीकानेर के लघु चित्रों में प्रभाविता को पूर्ण महत्व दिया गया । प्राय: चित्रों में ऊर्ध्वाकार कोणीय एवं त्रिकोणीय तथा वर्तुलाकार - संयोजन दृष्टिगत होते हैं । जिनके माध्यम से लघु चित्रों में प्रभाविता है, जिनके माध्यम से लघु - चित्रों में प्रभाविता की सृष्टि करके मुख्यता एवं गौणता का प्रभाव पैदा किया गया है । चित्र संख्या ———— में रानी, परिचारिका तथा राजा और अंगरक्षक के चित्रों को साथ देते हे सहज

स्वरूप में समुचित अनुपात दृष्टव्य है । लघु चित्र संख्या — 45 में भी परिचारिका और रानी की आकृति में सुन्दर प्रमाण विधान का अनुपालन किया गया है । देखिये लघु चित्र सं० ——— आदि ।

2· संतुलन :

बीकानेर शैली के लघु चित्रों में संतुलन का समुचित विकास हुआ है । लघु चित्र संख्या ——— में नायिका केन्द्र बिन्दु पर स्थित है और उसके आगे तथा पीछे वृक्षों का अंकन चित्र के अग्रभाग को संतुलित करके सौंदर्य की सृष्टि कर रहे हैं । पृष्ठ भाग में महल को संतुलित करने के लिए उसकी विपरीत दिशा में दो बड़े वृक्षों का अंकन किया गया है । ताकि चित्र में सम्भार परिलक्षित हो सके । लघु चित्र संख्या——— में भी इसी प्रकार रानी और परिचारिका मध्य भाग में अंकित करके संतुलन का पार्श्व में अंकित वृक्षों के माध्यम से किया गया है । लघु चित्र संख्या ——— में राजा और रानी के पीछे क्रमश: अंगरक्षक एवं परिचारिका के चित्र अंकित करके चित्र में सौन्दर्य - सृष्टि का विधान किया गया है । लघु चित्र संख्या 47, 3 — में भी पूर्ण संतुलन का सृजन हुआ है ।

3· प्रभाविता :

बीकानेर के लघु चित्रों में प्रभाविता को पूर्ण महत्व दिया गया । प्राय: चित्रों में ऊर्ध्वाकार कोणीय एवं त्रिकोणीय तथा वर्तुलाकार - संयोजन दृष्टिगत होते हैं । जिनके माध्यम से लघु चित्रों में प्रभाविता है, जिनके माध्यम से लघु - चित्रों में प्रभाविता की सृष्टि करके मुख्यतया एवं गौणता का प्रभाव पैदा किया गया है । चित्र संख्या ——— में रानी, परिचारिका तथा राजा और अंगरक्षक के चित्रों को अलग देखाने से सहज

ही प्रभाविता स्वरूप प्रकट हो जाता है । इसी प्रकार लघु चित्र संख्या- में चित्र के मध्य भाग कुम्भ लिए हुए नारी पर दृष्टिक्रम केन्द्रित होता है अतएव चित्र में मुख्य पात्र कुम्भ रागिनी की उद्दीपक नारी का चित्र महत्वपूर्ण है ओर दृश्य गौड़ है । लघु चित्र संख्या ——— आदि ।

4· सामंजस्य :

बीकानेर के लघु चित्रों में सामंजस्य का निर्धारण सम्यक् रूप में किया गया है । मूलतः चित्रों में रेखा सामंजस्य, रूप सामंजस्य और वर्ण तथा तान सामंजस्य स्पष्ट रूप से अवतरित हुआ है जिससे बीकानेर के लघु-चित्रों की चित्र - माधुरी विश्व भर में विख्यात है । चित्रों में जो शालीनता उभर कर सामने आती है, उसका रहस्य है चित्र सिद्धान्तों के साथ चित्र तत्वों का सामंजस्य अर्थात् सम्मिश्रण । एतदर्थ हमें बीकानेर के लघु चित्रों में रेखा एवं वर्ण - सामंजस्य निर्धारण लघु चित्रों के माध्यम से करेंगे । चित्र संख्या ——— में " अभिसारिका " नायिका के उपयुक्त एकांत वातावरण उत्पन्न करने में चित्रकार ने वर्णों के गहरी हल्की रंगत का प्रयोग करके सामंजस्य स्थापित किया है । मेघाच्छादित बादलों के तले अपने प्रेमी से मिलकर लौटी हुयी घबराहट के साथ गृह में प्रवेश करना चाहती है । चित्र संख्या ——— में भी तत्वों एवं सिद्धान्तों का पूर्ण अभाव दृष्टिगत होता है ।

5· विरोध :

चित्र की समरसता एवं एकरसता करके चित्र को प्रभावशाली बनाना ही विरोध है । इसमें रेखाओं, वर्णों आदि का विरोध चित्रों में पैदा किया गया है । लघु चित्र संख्या ——— में रानी और अभिसारिका

जामे परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं । श्वेत वर्ण के महलों के समक्ष गहरी हरीतिमा अद्भुत सौंदर्य की अभिवृद्धि कर रहा है । लघु चित्र सं० ——— में राजा और रानीके वस्त्रों में विरोधी रंग संगति प्रदान करके चित्र को चित्रकार ने प्रभावी बना दिया है ।

6· लय :

बीकानेर के लघु चित्रों में लय का अद्वितीय स्वरूप उभर कर आया है । रेखाओं की कमनीयता वर्णों का माधुर्य रूपाकारों का लालित्य पावन सलिला त्रिवेणी की तरह चित्रों में रेखा, रूप, रंग की त्रिवेणी बहाकर जन - मानस शुद्ध एवं सरल बना कर सौन्दर्य की उपासना में तल्लीन कर देता है । " लघु चित्र संख्या——— में " अभिसारिका " का रूपलावण्य एवं कमनीयता रेखाओं की लयात्मक गति एवं वर्णों के वर्ण मे भी विधान से उत्पन्न हो रही है । इस चित्र वास्तु की रेखाओं में बादलों के रेखात्मक लय का उत्तम निवेश है । मैत्री - वर्ण संगति के साथ ही विरोधी वर्ण संगति चित्र को अत्यधिक चारु बनाने में समर्थ हो रही है । लघु चित्र संख्या में राजा - रानी व अंगरक्षक एवं सेविका के चित्रों में जामे की फहरन, मुद्राओं में लयात्मक गति सन्निवेश अत्यन्त ही दर्शनीय है । इसी प्रकार सन्निवेश अत्यन्त ही दर्शनीय है । इसी प्रकार बहुत से अन्य लघु चित्रों में है । देखिये लघु चित्र संख्या 3, 45 आदि ।

7· एकता - सहयोग :

बीकानेर के लघु चित्रों के अन्तर्गत लघु चित्रों की " संयोजनात्मक गुणवत्ता " चित्र तत्वों एवं चित्र सिद्धान्तों के ही माध्यम से मापी जाती है । इन तत्वों एवं सिद्धान्तों की एकता में ही सौन्दर्य - सृष्टि है और

इनकी विशृंखलता में कुरूपता । एतदर्थ, हम इसके चित्रगत सौन्दर्य को चित्रों के माध्यम से निर्धारित करेंगे । लघु चित्र संख्या 3,45 में सभी चित्र - तत्वों का सन्निवेश है और उन तत्वों को सिद्धान्तों के सहयोग से सौंदर्य सृजन में बल एवं योगदान प्राप्त होता है । लघु चित्र संख्या 3, 45 आदि में इसी उपरोक्त सभी गुण विद्यमान हैं ।

## §ग§ नागोर के लघु चित्रों का संयोजनात्मक अध्ययन :

किसी भी देश विशेष अथवा उसके क्षेत्र - विशेष की पारंपरिक गतिविधियों के प्रभाव से प्रस्फुटित हुयी धारा उसके साहित्यिक एवम् सांस्कृतिक स्वरूप को आप्लावित करती रहती है । ऐसी स्थिति में कला भी उस धारा का आनन्द लेने में पीछे नहीं रहती और अपनी - अपनी शैलीगत विशिष्टताओं के परिधान में आवृत होकर नयी - नवेली का स्वरूप धारण करके मनुष्य की लालित्य - भावना को झकझोरकर उसे सौंदर्य उपासना की ओर उन्मुख कर देती है ।

नागोर के लघु - चित्रों की शैली के स्वरूप का निर्धारण तृतीय अध्याय में किया जा चुका है तथा चतुर्थ अध्याय में संयोजन का अर्थ, स्वरूप विस्तार व वर्गीकरण की व्याख्या की जा चुकी है ।

प्रस्तुत है नागोर के लघु - चित्रों का संयोजनात्मक अध्ययन - जैसा कि चतुर्थ अध्याय में संयोजन सिद्धान्तों § अनुपात, संतुलन, प्रभाविता, सामंजस्य, विरोध, लय तथा एकता § के विषय में विशद चर्चा हुयी है । अब इन संयोजन के सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में " नागोर के लघु चित्रों के संयोजनात्मक अध्ययन " का विश्लेषण करेंगे ।

नागोर के लघु - चित्र बहुत ही कम उपलब्ध हैं । फिर भी उनकी

उनकी संयोजनात्मक समीक्षा करना समीचीन है ।

1· अनुपात -प्रमाण:

नागौर के लघु चित्रों में चित्रभूमि के उभय पक्ष, अग्रभूमि एवं पृष्ठ-भूमि के आवंटन में विभिन्न अनुपातों का प्रयोग किया गया है । अन्तराल अंकन में भी बहुरूप परिलक्षित होती है । आयतों को भी क्षैतिज एवं ऊर्ध्वाकार स्वरूप प्रदान किया गया है । इन आयतों का निर्माण किसी स्थाई प्रमाण पर आधारित नहीं है । किन्तु फिर भी आयतों को छोटा -बड़ा बनाकर वैषम्य में ऐक्य की भावना को प्रदर्शित किया गया है । दिखिये चित्र संख्या

2· संतुलन :

नागौर के लघु चित्रों में प्राय: सर्वत्र सन्तुलन दर्शनीय है । चित्र को संतुलित बनाए रखने के लिए उभय दिशाओं (खड़ी एवं पड़ी) का प्रयोग किया गया है । संयोजन समद्विबाहु, त्रिभुजाकार, समबाहु त्रिभुजाकार एवं क्षैतिज आयताकार रूपों में किया गया है । रेखा व वर्ण को तान में विरोध उत्पन्न करके संतुलन के वर्चस्व को प्रतिस्थापित किया गया है । देखिये चित्र संख्या — 4, 29 आदि ।

3· प्रभाविता :

नागौर के लघु चित्रों में प्राय: त्रिभुजाकार संयोजन में शीर्ष -बिन्दु पर स्थित चित्र को प्रभावी बनाया गया है । शीर्ष बिन्दु तक दर्शक का ध्यान आकृष्ट करने के लिए चित्रकार ने पुरजोर प्रयत्न किये हैं। और चित्र को नेत्र रंजक एवं आकर्षक बनाकर प्रभाविता के सिद्धान्त को

पुष्टि करने में सचेष्ट रहा है । प्रभाविता उत्पन्न करने के लिए विरोधी वर्णों एवं रंगतों का भी प्रयोग किया गया है । देखिये लघु चित्र सं० – ———— आदि ।

4· सामंजस्य :

नागौर के लघु चित्रों में अन्तराल, रूप, रेखा व वर्ण का समुचित सामंजस्य संयोजनात्मक उपलब्धि का परिचायक है । रेखा – सामंजस्य विपरीत दिशाओं में आरेखित रेखाओं में मध्यमान रेखाओं का प्रयोग कर के सामंजस्य लाने की चेष्टा की गयी है । रूप सामंजस्य में लघु एवं दीर्घाकारों को प्रभाविता को ध्यान में रख कर सुनियोजित किया गया है । विरोधी रंग – संगति में वर्ण – मैत्री का कुशल अंकन किया गया है । अन्तराल – विभाजन में भी सामंजस्य स्थापित किया गया है । देखिये लघु चित्र संख्या ———आदि ।

5· विरोध :

चित्रों में जब दर्शक एक रसता से ऊब जाता है तो उसके नेत्रों को आकृष्ट करने के लिए विरोध का सहारा लेना पड़ता है । नागौर के लघु-चित्र में रेखा व वर्ण – विरोध का एवं वर्ण के विरोधाभास से चित्र – विशेष प्रभावशाली एवं चित्ताकर्षक बन गये हैं । चित्रों में हरे रंग की रंगतों और लाल रंग की रंगतों के प्रयोग से चित्र प्रभावी बन गये हैं ।उष्ण-वर्ण – संगति एवं शीत – वर्ण – संगति के प्रयोग से चित्रों में प्रभाविता परिलक्षित होती है । देखिये लघु चित्र संख्या – ——)

6· लय: नागौर के लघु चित्रों में लय – गुण को प्रतिष्ठित करने में

चित्रकारों ने काफी सतर्कता से कार्य किया है । प्रमुख रूप से रेखा की लयात्मक गति और प्रवाह से उत्पन्न सौन्दर्यात्मक परिलब्ध दृश्यमान होती है । जो कि संयोजनात्मक व्यवस्था का अद्वितीय गुण है। रेखाओं का वर्तुलाकार, वृत्ताकार प्रयोग चित्रों को सजीव एवं गतिमान बनाने में सक्षम प्रतीत होता है । वस्त्रों की फहरन - लहरन, भाव व मुद्राओं की गतिमयता सहज ही चित्त को बरबस चुरा लेती है । मदमस्त हाथियों के युद्ध में जो लयात्मक - गतिमयता उत्पन्न हुयी है, वह सचमुच सुधीचितेरों की गतिशील मानसिकता का परिचायक है । देखिये लघु चित्र सं0- 2,29 ) आदि ।

7· एकता - सहयोग:

नागौर के लघु चित्रों में एकता व सहयोग, संयोजनात्मक सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए " चित्र - तत्वों " एवं " चित्र - सिद्धान्तों " का उपयोग भरपूर किया गया है । रेखाओं में दिशा परिवर्तन ही चित्र को एक सूत्र बद्ध करने में सहायता प्रदान करते हैं ।

चित्रों में अनुपात, संतुलन, सामंजस्य, विरोध, लय, प्रभाविता आदि गुणों पुंजीभूत करके आकर्षक बनाने का प्रयास किया गया है ।लघु-चित्र संख्या 2, 29 आदि दृष्टव्य है ।

(घ) किशनगढ़ के लघु चित्रों का संयोजनात्मक अध्ययन :

ललित भावनाओं से ओत - प्रोत किशनगढ़ चित्र कला यद्यपि अपने सुदीर्घ कलेवर और अपनी भव्य सौन्दर्य अभिव्यक्ति के लिए सुविख्यात रही है । परन्तु इसके बावजूद भी किशनगढ़ शैली में बने लघु चित्रों की

संख्या न्यून है । फिर भी किशनगढ़ चित्रकला एक स्वतन्त्र एवं महत्वपूर्ण शैली के रूप में सर्वत्र मानी जाती है । इस शैली के कुछ लघु चित्र बड़े आकार के भी बने हैं । इन लघु - चित्रों का संग्रह किशनगढ़ के महाराजा के संग्रहालय में मोजूद है । बनारस कला भवन तथा दिल्ली के नेशनल - म्यूजियम आदि में, लघु चित्रों की कृतियाँ सुरक्षित हैं ।

चूँकि किशनगढ़ शैली का अपना महत्व है । अत: किशन गढ़ शैली के लघु चित्रों का संयोजनात्मक अध्ययन " इस शैली के सृजनात्मक ललित भावनाओं को प्रकाश में लाने का एक लघु प्रयास होगा ।

1· अनुपात प्रमाण :

चित्र में अनुपात का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है । उचित कलात्मक संयोजन में प्रमाण उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि रेखा, रूप और रंग । चित्र संख्या 5 मु०पृ० में गोपियों के साथ राधा - श्री कृष्ण नृत्य करते हुए दर्शाये गये हैं । इस चित्र में राधा - कृष्ण को प्रभावी बनाने के लिए अन्य गोपियों की अपेक्षा बड़े बनाए गये हैं । अग्रभूमि एवं पृष्ठभूमि का आवंटन चित्र के अनुरूप उचित ढंग से किया गया है। अन्तराल सौष्ठव दर्शनीय है । इसके विभाजन में चित्रकार ने अपनी दूर-दर्शिता का परिचय दिया है । अवकाश में बादलों एवं पृष्ठभूमि में वृक्ष झुरमुट - झाड़ियाँ, अग्र भाग में जमुना - पुलिन पर तृण समूह आदि सभी में अनुपात प्रमाण एवं परिप्रेक्ष्य का समुचित समाहार प्रस्तुत किया गया है। चित्र सं० — 47 में राधा - श्री कृष्ण , बारहदरी में शोभायमान हो रहे हैं । इस चित्र में वास्तु - चित्र में प्रमाण एवं अनुपात अत्यन्त ही सुनियोजित ढंग से दिखाया गया है । संगीत का आनन्द प्रदान करने वाली

टोली तथा परिचर्या करने वाली गोपिकाएँ तथा अन्य फव्वारे का आनंद ले रही गोपांगनाओं के समूह आदि के चित्रण में कलाकार ने आनुपातिक परिदृश्य प्रस्तुत किया है । वह अत्यन्त सुन्दर एवं अवलोकनीय है । विषयानुरूप अग्रभूमि का अधिक स्थान आवंटित कर समस्त दृश्यों को समुचित स्थान प्रदान किया है । रूपाकृतियों का अनुपात संतुलित है । श्री कृष्ण को प्रभावी बनाने के लिये आभा - मण्डल का प्रयोग किया गया है । पृष्ठभूमि एवं अंतराल विभाजन की समुचित व्यवस्था की गयी है ।इसीप्रकार शोध - प्रबन्ध में लगे अन्य चित्र भी दृष्टव्य है । चित्र संख्या- 48 आदि

2• <u>संतुलन :</u>

चित्र - संयोजना में सन्तुलन का एक महत्व पूर्ण स्थान है ।चित्र संख्या - 35 में सुनहरी मसनद के सहारे बैठे श्री कृष्ण और राधा केंद्र बिन्दु हैं । इसमें सम - त्रिकोणात्मक रचना विधि का प्रयोग है।श्री कृष्ण शीर्ष बिन्दु पर संयोजित करके श्री कृष्ण के स्वरूप को प्रभाविता प्रदान किया गया है । आधार बिन्दु के दोनों ओर पर फव्वारे का आनन्द लेती हुयी ब्रज बालाएँ हैं । मध्य भाग में फव्वारा है और दाहिनी व बायीं पार्श्व रेखाओं पर एक ओर संगीत मण्डली तो दूसरी ओर ब्रज - ललनाओं को अनुरंजित कर चित्र के सन्तुलन - सौष्ठव में चार - चाँद लगा दिया है। पृष्ठभूमि में अंकित वास्तु - चित्रण में भी समुचित सन्तुलन है । लता-पुष्प वल्लरियों का पृष्ठभूमि में सन्तुलित रूप में अंकन दर्शनीय है । चित्र संख्या - 44-) में श्रीकृष्ण - राधा का चाँदनी रात में नौका - बिहार का दृश्य है । नाव के मध्य में विराजमान श्री कृष्ण के चित्र के मध्य बिन्दु की ओर दिखायी पड़ रहे हैं । यह गतिमयता चक्षु को शीर्ष अक्ष - बिन्दु की

और सहज ही आकर्षित करके चित्र में सन्तुलन बनाने में सक्षम है । अग्रभूमि और पृष्ठभूमि के मध्य भाग में जमुना के मध्य में नौका - विहार एवम् अग्रभूमि पर सुन्दर उपवन और पृष्ठभूमि पर अंकित सुन्दर महल वास्तु - सन्तुलन का सुन्दर परिचय दे रहा है ।

चित्र संख्या ——— में राधा जी के महल में प्रवेश करते हुए श्री कृष्ण जी दर्शाये गये हैं । यह धरातलीय आयताकार सन्तुलन का स्वरूप प्रस्तुत कर रहा है । वाम - पार्श्व में श्री कृष्ण जी महल के अन्दर आते हुए तो, दक्षिण पार्श्व से राधा उनके स्वागतार्थ निकलती हुई दिखा कर चित्र सन्तुलन को सहज ही आकर्षक बना दिया है । दृष्टिगत भार से राधा और कृष्ण को जोड़ने के लिए मध्य भाग में दही मथती हुई गोपी का अंकन किया है । इस चित्र दृश्य अंकन में संतुलन के साथ "समय- संतुलन" का सुन्दर निरूपण किया गया है । चित्र में दही मथती गोपी को दिखा कर माखन खाने के उचित अवसर पर पधारने के " संतुलित - समय" का चित्रण कलाकार की अन्तर्दृष्टि का सुन्दर परिचायक है जो अन्यत्र दुर्लभ है ।

3. <u>प्रभाविता :</u>

चित्रों में प्रभाविता संयोजनात्मक - सौष्ठव का महत्वपूर्ण अंग है। चित्र संख्या ——— में नागरीदास द्वारा चित्रित नव- यौवना राधा का चित्रण किया गया है । इस चित्र में राधा की मुखाकृति के सौष्ठव - संवर्धन के साथ ही साथ उनके उन्नत उरोजों का अनुरंजन विकसित नव - यौवना के सहज आकर्षक स्वरूप की ओर अक्ष - दृष्टि को आकर्षित कर लेता है । इसी तरह से चित्र संख्या - 63 में बनी - ठनी का चित्र है, जिसमें दृष्टि भार उसके मुख- मण्डल की ओर बढ़कर उसके खंजनाकार नेत्र,

उन्नत नासिका, चमेली की पंखुड़ी के समान मधुर स्मित युक्त अधर सहज ही नेत्र दृष्टि को बाँध कर बार - बार रूप - सौन्दर्य का आनन्द लेने के लिए आकृष्ट करते हैं। यह प्रभाविता का अत्यन्त ही समुन्नत स्वरूप है।

4· सामंजस्य :

चित्र - संयोजना में संयोजनात्मक सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए सामंजस्य सिद्धान्त अत्यन्त ही अहम् भूमिका प्रस्तुत करता है। चित्र संख्या— —— में " पूजा करते भक्तवर कवि नागरी दास एवं बनी - ठनी" के चित्र - संयोजन में सामंजस्य का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। वाम पार्श्व पर अंकित नागरी दास पूजा करते हुए, मध्य में बनी - ठनी नागरी दास की ओर गतिमान तथा दक्षिण पार्श्व की ओर से परि - चारिका पूजन नैवेद्य लाती हुयी तथा अन्य उसके पीछे बनी - ठनी के दक्षिण भाग तुलसी का बिरवा, खिड़की पर खड़ी महिला एवं पेड़ पर बन्दर तथा पक्षी अनुरंजित किये गये हैं, जिसके समन्वित स्वरूप में सुन्दर सामंजस्य स्थापित करके अत्यन्त ही मनोहारी दृश्य जो कि शान्त भाव का वातावरण पैदा करने में समर्थ हैं, जो कि विभिन्न आकृतियों में सुंदर सामंजस्य उत्पन्न करके चित्र की भावाभिव्यक्ति एवं रूप - सौष्ठव में अनुपम योगदान किया है। चित्र संख्या—33 में जो कि एक प्रेमी युगल का है। इसमें रेखा, रूप, वर्ण, तान, गठन एवं अन्तराल आदि तत्वों का

---

1· प्रो० देवकी नन्दन शर्मा - वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली {राजस्थान} वार्ता द्वारा

इतना सुन्दर समन्वित स्वरूप प्रस्तुत किया गया है जो कि संयोजनात्मक सौन्दर्य - अभिवृद्धि का अप्रतिम उदाहरण है । अग्रभूमि - पृष्ठभूमि के आवंटन का सुन्दर सामंजस्य है । प्रेमी - युगल के प्रेमालाप एवं हाव-भाव का सामंजस्य दर्शनीय है । नमित नयनों की गुनगुनाहट बरबस दर्शक के चित्त को लुभाकर शृंगारिकता के मधुर रस का पान करा कर मदमस्त बना देता है । इस चित्र में कला के समस्त तत्वों एवं सिद्धान्तों का एक साथ दिग्दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है । संयोजनात्मक दृष्टि से यह अत्यन्त ही परिपुष्ट एवं सौन्दर्य - वर्धक चित्र है । इस चित्र में अनुरंजनकार की अप्रतिम कल्पना - शक्ति संदर्शित होती है ।

5. <u>विरोध :</u>

चित्र - संयोजन में संयोजना का सिद्धान्तों के विरोध की एक अहम भूमिका होती है । चित्र समरसता से ऊब कर जब दर्शक की दृष्टि व्याकुल हो उठती है तो उसे आवश्यक होती है किसी नये परिवर्तन की, जिसे देख कर वह सुखानुभूति कर सके । ऐसी स्थिति में विरोध का सिद्धांत लागू कर रेखा - विरोध, वर्ण - विरोध, रूप - विरोध आदि तत्वों का सहारा लेकर दर्शकी उलझन को शान्त करने में समर्थ होता है । चित्र संख्या —— में, " फूल रचना उत्सव " का दृश्य है । प्रस्तुत चित्र में वर्ण - विरोध के सिद्धान्त को लागू करके पृष्ठभूमि गहरे रंगों से और चित्राकृतियाँ हल्के रंगों के प्रभाव से प्रभावित की गयीं । जिससे चित्र में प्रभाविता एवं ग्राह्यता का प्रभाव परिलक्षित होता है । इसी तरह चित्र संख्या —— में " प्रेमी युगल " पृष्ठ भूमि और अग्र भूमि के वर्णों का विरोध दिखाकर प्रभाविता उत्पन्न करने का सफल प्रयास किया गया है । देह - वर्ण { बाडी कलर } में भी पर्याप्त विरोध का संचार करके

लालित्य - सौष्ठव की सृष्टि की गयी है । प्रेमी एवं प्रेमिका के पार्श्व में लगी मसनद एवं आसन के वर्ण और प्रेमी - युगल के परिधान के रंगों में भी वर्ण - विरोध दृष्टव्य है । कुल मिलाकर चित्र को उत्कृष्ट बनाने में वर्ण - विरोध उत्पन्न करके कलाकार ने संयोजनात्मक - सौन्दर्य अभिभूत कर दिया है जो उसकी सृजन शीलता धर्म का परिचायक है ।

6• <u>लय:</u>

" लय " शब्द अपने आप में ही सुरुचि पूर्ण है । यदि इसका निर्वहन चित्रों में किया गया है तो निश्चय ही कितना लालित्य पूर्ण होगा । देखिये चित्र संख्या — 1 में " राधा एवं अन्य गोपियों का अंकन दूध - दही ले जाती हुयी में किया गया है । रेखाओं में लय -सुन्दर लँहगों की फहरन एवं चूनरी व ओढ़नी लयात्मकता में रेखाओं की गति एवं लय इतनी सशक्त बन पड़ी है कि दर्शक का मन मोह लेती है । राधा एवं गोपियों की सुन्दर अलकावलियों की वलय में लय का मनोहर स्वरूप नेत्र - रंजक है । खंजनाकार नेत्रों की लयात्मक - सौष्ठव बरबस मन को मचला देता है । बार - बार देखने के लिए सुन्दर लावण्य मयी राधा व गोपियों के स्वरूप को आतुर हो उठता है मन । यही है चित्रकार के अंतरमन एवं अन्तर्दृष्टि का " मोहन मंत्र ", जिसके विन्यास से दर्शक एवं प्रेक्षक चित्र को देखकर स्वत: वशीभूत हो जाता है । यही नहीं सिर पर रखे घड़ों एवं पैरों की गति से जो लय उत्पन्न हो रही है, उससे यह प्रतीत हो रहा है कि उनके पैरों के नूपुरों की रुनझुन की मधुर तान काम-देव के पुष्पायुध से बढ़ कर हो गयी है, जो कि दर्शक के हृदय में बिंध जाती है और वह प्रेम बावला बन जाता है । यही चित्र की लयात्मक - गति का सौन्दर्य जो यही नहीं किशनगढ़ के सहस्त्रों चित्रों में दर्शनीय है।

जो कि तत्कालीन कलाकारों एवं दर्शकों की सौन्दर्य - पिपासा को शांत कर देती है ।

7· <u>एकता - सहयोग :</u>

किशनगढ़ के लघु - चित्रों में चित्र की गुणवत्ता को स्थापित करने के लिए कला के तत्वों एवं संयोजन के सिद्धान्तों की ऐक्यता अर्थात् सूत्र - बद्धता की परम आवश्यकता होती है । यदि रूप, वर्ण, रेखा आदि में एक सूत्रता और अनुपात, लय, सामंजस्य आदि सिद्धान्त के सहयोग की सुनियोजित व्यवस्था न होने पर चित्र असुन्दर हो जायेगा । इसी से चित्र में एकता एवं सहयोग सिद्धान्त पर आवश्यक है । चित्र संख्या में राधा व गोपियाँ एक साथ दूध - दही बेचने जा रही हैं । उनका आपस में एक साथ गमन से उत्पन्न हुए लयात्मक गतिमयता, रेखाओं व रंगों का समन्वय, रूपाकृतियों का गठन, दही - पात्रों ( घड़ों ) की एक - रूपता वर्णों का तालमेल तथा अंतराल की लघुता - जन्य स्थिति चित्रों की विशदता को प्रतिभाषित एवं प्रतिपादित करती है ।

चित्र संख्या में " ताम्बूल सेवा " का चित्र है। प्रस्तुत चित्र में राधा - श्री कृष्ण । राजा - रानी का चित्र मध्य भाग में करके दोनों पार्श्व में पासवानो को अंकित किया गया है । ऐक सेविका सिंहासन के पास नीचे बैठी है । अग्रभूमि की आकृतियों तथा पृष्ठभूमि में अनुरंजित महल एवं प्रकृति - अंकन की एकता एवं वर्णों का सुन्दर सहयोग चित्र को एकता के धागे में पिरो कर चित्र की संयोजनात्मक -सौंदर्य की सृष्टि करने में समर्थ है । इसी प्रकार किशनगढ़ के लगभग सभी चित्रों में कला के तत्वों एवं संयोजन के सिद्धान्तों की परिपुष्टि करके रचना सौंदर्य

में निखार अनुरंजित किया गया है ।

(ख) जैसलमेर लघु चित्रों का संयोजनात्मक अध्ययन :

चतुर्थ अध्याय में संयोजन सिद्धान्तों ( अनुपात, संतुलन, प्रभाविता सामंजस्य, विरोध, लय तथा एकता ) के विषय में चर्चा की जा चुकी है। अब इन सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में " जैसलमेर के लघु चित्रों के संयोजनात्मक अध्ययन की विस्तार से व्याख्या प्रस्तुत करेंगे ।

किसी भी देश, काल, परम्परा में अवतरित चित्र शैली का अपना महत्व होता है और अपनी विशिष्टताएँ होती हैं । तभी उस चित्र शैली का स्वरूप सामने उभर कर प्रस्तुत होता है । जैसलमेर लघु-चित्र शैली के स्वरूप का निर्धारण तृतीय अध्याय में विस्तार पूर्वक किया गया है ।

इस " पंचम अध्याय " में जैसलमेर के लघु - चित्रों में संयोजनात्मक अध्ययन की समीक्षा संयोजन के सिद्धान्तों के आधार पर परिपुष्ट करेंगे ।

1· अनुपात प्रमाण :

जैसलमेर के लघु चित्रों के अन्तराल के दोनों आयामों के अनुपात में विविधता नहीं है । प्राय: चित्रों में चौड़ाई व लम्बाई का अनुपात1:1:5 है । अन्तराल के विभिन्न अनुपातों का प्रयोग किया गया है ।इन अनुपातों से चित्रों में रूप - व्यवस्था, सन्तुलन, प्रवाहिता आदि गुणों को दर्शाया गया है । चित्र भूमि में विभाजन जिन चित्रों अस्पष्ट हैं, उनमें क्षैतिज आयतों को विभिन्न अनुपातों में बनाया गया है । यद्यपि इन आयतों का अनुपात किसी एक ही प्रमाण पर आधारित नहीं है, किन्तु संतुलन और प्रभाविता को ध्यान में रखे हुए आयतों को छोटा - बड़ा बनाकर विभिन्नता

में एकता की भावना को विकसित किया गया है । चित्रों के अनुपात में उदाहरण चित्र संख्या :7,8,9,10,11,12 आदि में दृष्टव्य हैं ।

2· <u>संतुलन :</u>

जैसलमेर के प्राय: सभी लघु - चित्रों में संतुलन देखने को मिलता है। संतुलन के लिए ऊर्ध्व एवं क्षैतिज दोनो दिशाओं में प्रयुक्त किया गया है । एक मानवाकृति चित्र संख्या – 6 में रूप का ऊर्ध्व संतुलन दर्शनीय है । इस चित्र में दूर क्षितिज से भार नीचे की ओर बढ़ता है और नीचे की गहरी रेखा पर स्थिर हो जाता है । इसमें ऊपर के रूप दूरी के कारण, लघु आकार में होते हुए भी नीचे के रूपों को संतुलित कर देते हैं । चित्र में नीचे आधार पर बनी समबाहु त्रिभुजाकृति ( ) में स्वत: भार का दबाव नीचे की ओर होने से चित्र संतुलित हो जाता है । चित्र सं· 7 के मध्य में क्षैतिज रेखा से दो भागों में विभाजित किया गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों पार्श्व के त्रिभुजाकार रूपों ने मध्य के आयत और उस पर बने त्रिभुजाकार रूप को जैसे अपनी भुजाओं पर उठा रखा हो, क्योंकि बीच के रूप को अन्तराल में कोई आधार प्राप्त नहीं है । (चित्र सं· 8 ) में प्रमुख रूप का भार चित्र की मध्य क्षैतिज रेखा से ऊपर की ओर अधिक है। किन्तु चित्रकार ने साँप की कुण्डली का घुमाव नीचे की ओर अधिक बड़े वृत्त में संयोजित करके रूप को सन्तुलित किया है । इसी चित्र के पार्श्व के वृक्षों से बने हुए ऊर्ध्व आयत को दो क्षैतिज आयतों से संतुलित किया गया है ।

समद्विबाहु आकार में संयोजनों में प्राय: दोनों ओर समान भुजा, समान भार की सन्तुलन - व्यवस्था की साधारण स्थिति कुछ चित्रों में है,

शोष में भुजा को समान करके समान भार से सन्तुलन किया गया है । चित्र संख्या —5, 15 में हनुमान की ओर के पार्श्व का भार कम है । किन्तु विस्तृत अन्तराल में उठी हुयी पूँछ से अंतराल इतना सक्रिय हो गया है कि दोनों पार्श्व में रूप संतुलित हो गये हैं । चित्र संख्या 15 में यद्यपि केन्द्र से लम्बी भुजा की ओर रूप का भार अधिक है किन्तु तान के विरोधाभास के कारण छोटी भुजा पर अन्तराल की सक्रियता बढ़ जाती है और चित्र संतुलित हो गया है । चित्र संख्या – 15 में केन्द्र से लम्बी भुजा की ओर कम भार तथा छोटी भुजा की ओर अधिक भार से संतुलन लाया गया है ।[1]

3. **प्रभाविता :**

लघु चित्रों के त्रिभुजाकार संयोजन में प्रायः शीर्ष बिन्दु पर स्थित रूप प्रभावी होता है और इस तक दृष्टि को पहुँचाने में चित्रकार को सफलता सहज ही मिल जाती है । जैसलमेर के अनेक लघु – चित्रों में इस प्रकार के संयोजन देखे जा सकते हैं । जिन चित्रों में एक ही मानवाकृति चित्रित है, वहाँ तो मुखाकृति की प्रमुखता सहज ही दिखायी देती है। किंतु जहाँ किसी व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों के समूह में प्रमुखता दी गयी है, उसके अन्तराल में उसकी स्थिति, समूहीकरण, विशेष सज्जा, रिक्त स्थान तथा आभा – मण्डल का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया गया है ।

अधिकांश त्रिभुजाकार संयोजनों में सीधी अथवा वक्र रेखाओं के सहारे दृष्टि शीर्ष बिन्दु तक पहुँचती है । चित्र संख्या ——में गज सिंह

---

1. पद्म श्री श्री गोपाल विजयवर्गीय, जयपुर से वार्ता द्वारा ।

की स्थिति ऐसे शीर्ष पर है कि आँखें वहीं जाकर ठहरती है । एक हाथी की सूँड़ की रेखा तथा दूसरी ओर पूँछ की रेखा दोनों मानवाकृतियों के समूहों से उठ करके गज सिंह के रूप पर मिलती है । इस प्रकार रेखाओं का दिशा - निर्देश, समूहीकरण, विशेष सज्जा का प्रयोग तथा आभा मण्डल के कारण गजसिंह का रूप विशिष्ट हो गया है ।

चित्र संख्या——में हाथी के पावों तथा कपड़े की झूल से जो चाप बनता है, उसके समानान्तर हाथी की देह रेखा का चाप बनता है, जिसके ऊपर मानवाकृतियों के त्रिभुज के शीर्ष पर राज पुरुष की मुखाकृति स्थित है । इस मुखाकृति के पीछे टीले का अर्ध वृत्त भी आँख को केन्द्र की ओर देखने को बाध्य करता है, जहाँ मुखाकृति को आभामण्डल में बनाया गया है । आकार में विशालता से प्रभाविता लाने का उदाहरण चित्र संख्या ——में है । जिसमें कृष्ण को प्रमुख बनाने में गोप तथा राधा कुछ लघु आकार में हैं और इन्द्र तथा ऐरावत हाथी कृष्ण से चौथाई आकार में बनाये गये हैं । इन्द्र को एक बालक की भाँति भूमि पर बैठा दिखाया गया है । इस चित्र में ऐसा प्रतीत नहीं होता कि इन्द्र तथा हाथी अनायास ही छोटे बन गये हों, जबकि कृष्ण की तुलना में गोप तथा राधा कुछ ही छोटे हैं । इन्द्र को इतना छोटा बनाना कृष्ण की महानता को रूप के माध्यम से व्यक्त करता है । चित्र संख्या—— में पूरी साज सज्जा के बीच अधिक सज्जित कृष्ण पर दृष्टि का ठहराव स्वाभाविक है । इस चित्र में दोनों ओर नारियों के समूह से बनाने वाले दो त्रिभुजों का शीर्ष क्षैतिज रूप से राधा - कृष्ण के रूप पर जुड़ जाता है । चित्र सं0 - 48 में तीन मानवाकृतियाँ एक ओर प्रभावी हैं तथा दूसरी ओर संत की गहरी तान का देह रंग { बाडी कलर } कपड़ों के विरोधाभास में तथा वृक्ष के नीचे

स्थित होने के कारण प्रभावी बन गया है। कृष्ण के सभी चित्रों में उनका श्याम वर्ण, विशेष सज्जा तथा उनकी त्रिभंगी मुद्रा, उनके रूप को विशिष्टता प्रदान करती है। तान और वर्ण के विरोधाभास से प्रभाविता का क्षेत्र चित्र संख्या — 35 आदि में देखा जा सकता है। चित्र संख्या—48 में राधा, कृष्ण की देह छाया तथा प्रकाश के अर्ध - वृत्त बनाती हैं, जो पूरे चित्र का केन्द्रबिन्दु है।

4. <u>सामंजस्य :</u>

जैसलमेर के लघु चित्रों में रेखा, रूप और वर्ण इन तीन प्रमुख तत्वों का सामंजस्य दृष्टिगत होते हैं।

रेखा - सामंजस्य में एक दिशा में जाती हुयी रेखा के बल को विपरीत दिशा में जाने वाली रेखा के बल से जोड़ने के लिए उभय गुणों वाली रेखाओं का प्रयोग किया गया है। चित्र संख्या —48 में वृक्ष की शाखा मुख्य तने से एक वृत्त खण्ड का रूप बनाती हुयी घूमती है। झूले की रस्सियों की ऊर्ध्व रेखा दो ओर नीचे के वस्त्रों के घुमाव पर घूम कर क्षैतिज हो जाती है तथा पुनः ऊर्ध्व हो जाती है। चित्र संख्या —— में ऊर्ध्व रेखायें एक दिशा में सामंजस्य दिखाती हैं। पूरे संयोजन की क्षैतिज गति को ऊर्ध्व रेखा समकोण पर काटती है। जिससे घोड़े की देह -रेखा ( बाडी लाइन ) कर्णवत् दिशा देकर क्षैतिज तथा ऊर्ध्व के बीच उभय - निष्ठ स्थिति बनाकर सामंजस्य का नया रूप प्रस्तुत करती है। चित्र संख्या-6,7,8 में रेखा और रूप सामंजस्य का उत्तम उदाहरण है। नीचे सरोवर की क्षैतिज रेखा पर हाथी के पाँव तथा कूल से कम गहरा वक्र बनता है, जो धीरे - धीरे अधिक गहराई में पहुँच कर आभा - मण्डल में

पहुँच कर पूर्ण गोल हो जाता है । ‖ रेखा चित्र संख्या —— ‖ और पुनः दोनों कोनों में वर्णचित्र रेखायें उर्ध्व गति को क्षैतिज बनाते हुए रूप को प्रमुखता प्रदान करती है । इस चित्र में हाथी का रूप अर्ध -वृत्ताकार है जिसके साथ ढाल, आभामण्डल तथा पीठिका सभी वृत्ताकार रूप - सामंजस्य स्थापित करते हैं ।

विरोधाभास के बीच वर्ण - मैत्री का उदाहरण चित्र सं० — में है । जिसमें लाल की अनेक रंगतों तथा हरे की अनेक रंगतों में वर्ण - सामंजस्य दिखायी देता है । गर्म रंगतों के सामंजस्य का उदाहरण चित्र - संख्या 27 में है । जिसमें लाल विभिन्न गहराइयों तथा रंगतों के वर्ण - सामंजस्य के दर्शन होते हैं ।

5· <u>विरोध :</u>

यद्यपि विरोध से एकरसता भंग होती है तथापि चित्र में प्रभाविता उत्पन्न करने के लिए " विरोध " सिद्धान्त परमावश्यक है । चित्र संख्या ———तीन मानवाकृतियाँ एक ओर प्रभावी हैं और दूसरी ओर सन्त की गहरी तान का देह रंग, कपड़ों के विरोधाभास में, तथा वृक्ष के नीचे स्थित होने का कारण अत्यन्त ही प्रभावी बन गया है । तान और वर्ण के विरोधाभास से चित्रगत विशेषता प्रभावशाली बन गई है ।‖देखिये चित्र संख्या —— ‖, चित्र सं० — 6 में राधा - कृष्ण की देह की छाया और प्रकाश से जो अर्ध वृत्त का पुंज बनता है, वह पूरे चित्र का केन्द्र बिन्दु बन जाता है । विरोध के बीच वर्ण - मैत्री का उदाहरण लघु चित्र सं० — 6 में है जिसमें लाल और हरे विरोधी रंगों की रंगतों से चित्र को प्रभावी बनाया गया है । गर्म रंगतों से उत्पन्न

प्रभाविता के उदाहरण लघु चित्र संख्या –17 में परिलक्षित होते हैं ।

जैसलमेर के लघु चित्रों में वर्णों, रेखाओं एवं आकृतियों (रूप) के विरोध उत्पन्न करके चित्रों को अत्यन्त ही प्रभावशाली स्वरूप प्रदान किया गया है ।

6· <u>लय :</u>

जैसलमेर के लघु - चित्रों में लय - गुण, कोमलता, माधुर्य एवम् ललित भाव प्रदर्शित करते हैं । इनमें प्रमुखतः रेखा की लयात्मकता दर्शनीय है जो कि संयोजनात्मक - व्यवस्था का प्रमुख अंग है । लघु - चित्र संख्या में घोड़े तथा ऊँट की आकृति में रेखाओं के घुमाव दर्शनीय हैं ।एक रेखा सवार से प्रारम्भ होकर घोड़े की गर्दन के सहारे झुककर ऊँट की देह-रेखा की ओर बढ़ जाती है, जो ऊँट की देह पर पड़े कपड़े के साथ घूम जाती है । घोड़े की गर्दन के निचले भाग की रेखा इसे सहयोग करती है । इस चित्र में ऊँट के शरीर पर कपड़े का घुमाव, पीछे पुट्ठे तथा पूँछ के साथ लयात्मक रेखाओं में घूमते चले जाते हैं । लघु चित्र संख्या 5,15 में हनुमान की आकृति में केन्द्र के चारो ओर की रेखाएँ लयात्मक गति से प्रसारित होती हैं । पूँछ तथा धर के घुमावों में प्रवाह है । लघु चित्र सं0 10,11 में दोनों नारी आकृति की देह - भंगिमा रेखा की लयात्मक अनुभूति होती है । बैठी नारी के माथे से घूम कर ओढ़नी के सहारे एक रेखा, बाँह के साथ चलती है । इस रेखा के समानान्तर दूसरी प्रवाही रेखा हार के निचले छोर पर कटि प्रदेश से प्रारम्भ होकर नीचे पैर तक चली जाती है। खड़ी नारी - आकृति की एक रेखा सिर के घुमाव से ओढ़नी के साथ पैरों तक चली गयी है । दूसरी रेखा ठोढ़ी के नीचे ओढ़नी से घूमती हुई कुरते

के छोर तक चली जाती है । लघु चित्र संख्या — में दूध की धार को चित्रकार ने अनेक लयात्मक मोड़ों में बहाया है । गोपी की देह -रेखा में, उसके लम्बे हार में तथा कृष्ण के परिधान में लोचदार प्रवाही रेखाये दर्शनीय हैं ।[1]

हाथी की देह की लम्बी प्रवाही रेखायें दिखाने में तो जैसलमेर के चित्रकार अत्यन्त ही प्रवीण थे । लघु चित्र संख्या — में उसकी गति एवं प्रवाह दर्शनीय है । लघु चित्र संख्या- 6 में कृष्ण की देह -रेखा के बीच एक ऊर्ध्व - प्रवाही रेखा विद्यमान है । लघु चित्र संख्या -17 घोड़े के पृष्ठ भाग, एवं गर्दन की रेखायें अत्यन्त ही प्रवाहमान हैं । शिकारी कुत्तों की पूंछ से मुँह तक लम्बे पैरों की रेखायें घुमावों की आवृत्ति से लयमय एवं लोचपूर्ण हो गयी है ।

लघु चित्र संख्या -13 में बल खाते लहराते वृक्ष की पूरी देह लयात्मक है । राम तथा लक्ष्मण के परिधान तथा हार की रेखाओं के अतिरिक्त सबसे महत्वपूर्ण हनुमान जी की आकृति की प्रवाही रेखायें उल्लेखनीय हैं । पूंछ की लहर नीचे पैरों तक बल - खाती सौंदर्य की अभिवृद्धि करती हैं ।

7· <u>एकता-सहयोग:</u>

जैसलमेर लघु चित्रों के अन्तर्गत चित्र की संयोजनात्मक गुणवत्ता".

---

1· कुँ0 संग्राम सिंह, महाराजा नवलगढ़, जयपुर द्वारा वार्ता के आधार पर ।

चित्र तत्वों एवं चित्र सिद्धान्तों की " एकता " तथा " सहयोग " के ही माध्यम से उत्पन्न होती है । यह सहयोग एक प्रभाव होता है, जो चित्र में समग्रता का भाव लाता है । " चित्र तत्वों " में रेखा, रूप, वर्ण, अन्तराल आदि में स्थित " एकता " सर्वाधिक योगदान करती है । "चित्र सिद्धान्तों " में सामंजस्य, लय सन्तुलन विरोध, प्रभाविता, एकता और अनुपात, सहयोग - गुण को प्रतिष्ठित करते हैं ।

रेखा, दिशा - निर्देश गुण से चित्र को " एक सूत्रता " में बाँधती है, वह चित्र में प्रत्यक्ष अथवा अनुभूत होकर चित्र के रूपों को एक क्षेत्र में घेर लेती है । ऐसे उदाहरण लघु चित्र संख्या - 6,7,8,9,10,11 आदि में उपलब्ध हैं । रूप की अन्तराल में स्थित एकता के उदाहरणों में लघु - चित्र संख्या 6,7,8,9,10,11,12,13,14 आदि प्रमुख हैं । लघु - चित्र संख्या - 17 में रूपों की गतिमय मुद्रा से बनता हुआ वृत्त पूरे चित्र को समेटे हुए प्रतीत होता है। चित्र - सिद्धान्तों में प्रभाविता तथा सन्तुलन से एकता के प्रभाव की सृष्टि करने वाले लघु - चित्रों के उदाहरण लघु चित्र संख्या — 16 आदि में विशिष्टतया उल्लेखनीय हैं ।[1]

4· <u>उपलब्धियाँ एवं विशेषताएँ :</u>

मारवाड़ चित्र शैली के लघु - चित्रों की " संयोजनात्मक व्यवस्था" का अध्ययन करने के पश्चात् उसकी उपलब्धियों एवं उसकी विशिष्टताओं पर एक विहंगम दृष्टिपात करना समीचीन होगा । कलात्मक उपलब्धि

---

1· डा० रामअवतार अग्रवाल, मेरठ द्वारा वार्ता के आधार पर ।

हमारी सांस्कृतिक विरासत है । ऐसी अमूल्य निधि जो हमारे देश के विभिन्न क्षेत्रों में फैली हुयी कलात्मक - चेतना के स्वरूप को प्रस्तुत करने में सक्षम है । जो हमारे समाज की गति - विधियों, रीति - रिवाजों, धार्मिक कृत्यों, उत्सवों एवं सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यक, ऐतिहासिक तथा राजनैतिक मूल्य का आंकलन प्रस्तुत करती है । वह कलात्मक उप - लब्धि ही है । इसी परिप्रेक्ष्य में " मारवाड़ के लघु - चित्रों में "संयोजन-व्यवस्था " का अध्ययन करने से तत्कालीन समाज की गतिविधियों का स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत हो जाता है । यदि हमें अपनी संस्कृति एवं समाज की उपलब्धियों को ध्यान में रखते हुए अपने क्रिया - कलापों को पूर्ण निष्ठा एवं प्राचीन आदर्शों को ध्यानगत रखते हुए करें तो भविष्य की प्रगति निश्चय ही एक उन्नत मार्ग प्रशस्त करेगी ।

हमें अपनी कला संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए अपनी कलात्मक - निधि की संरक्षा, सुरक्षा एवं अध्ययन, अनुशीलन तथा प्रकाशन की परम आवश्यकता है । इसी परिप्रेक्ष्य में इस शोध - प्रबन्ध का प्रणयन " मारवाड़ के लघु - चित्रों में संयोजन व्यवस्था " के अध्ययन एवं अनु - शीलन को प्रकाशित करने में समर्थ होगा । आगे आने वाली संतति को सहजता से मारवाड़ शैली के चित्रों की संयोजन - परिकल्पना एवम् उसके आधार, उसका वर्ण्य - विषय, कला के तत्वों एवं संयोजन के सिद्धान्तों के दृष्टिक्रम में एक ज्ञान की रश्मि से आलोकित हो सकेंगे" ऐसी मेरी अव-धारणा एवं मान्यता है ।[1]

---

1. डा० सी० एस० मेहता व श्री शेखावत से वार्ता के आधार पर

मारवाड़ शैलियों के लघु - चित्रों की विशेषताओं पर इस अध्याय में की गयी संयोजनात्मक मूल्यों के आधार पर विश्लेषित करना विषयानुकूल एवं विषय संगत होगा ।

जोधपुर के कलाकारों की सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति रेखा, रूप, वर्ण आदि तत्वों के आधार पर विशेष रूप से हुयी है । कला - जगत में रेखा का महत्व सर्वविदित है । जोधपुर के कलाविदों ने रेखा के लावण्य एवं गतिमयता को खूब परख कर रेखाओं जो लयात्मक गति प्रदान की है, वह अद्वितीय है । जोधपुर के चित्रों में अजन्ता के चित्रों की रेखांकन गति - मयता का स्वरूप प्रस्तुत होता है । इसमें " गतिज - ऊर्जा " विद्यमान है । जिसका आंकलन सहज ही किया जा सकता है । कालान्तर में जैन पोथी - चित्रण की रेखा की बारीकियाँ, जोधपुर शैली की प्रधान विशिष्टता का स्वरूप ग्रहण किया । रेखाएँ काफी दूर तक प्रवाहमयी हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे रेखायें श्वांस के साथ चल रही हों । चित्र संख्या-2 यहां के प्राचीन चित्रों में प्रवाह तो विद्यमान है पर बारीकियों का अभाव है ।

[1] जोधपुर के कलाचार्यों ने अपनी सतत साधना एवं लगन रेखांकन इतना सजीव हो उठा है कि अत्यन्त ही सुकोमल भावों को रूपायित करने में सक्षम है । जोधपुरी लघु चित्रों की रेखायें नागौर के लघु चित्रों से मिलती है ।

---

1· श्री रामावल्लभ सोमानी द्वारा वार्ता के आधार पर ।

किसी भी शैली का निर्धारण करने में रूप की एक महत्वपूर्ण तत्व है। इसका सृजन चित्रकार अपने कौशल, साधना एवं अभिव्यक्ति के आधार पर करता है और उसे मुखरित करता है। कलाकार अपनी संवेदनात्मक अनुभूति को और बौद्धिक - चेतना के अनुरूप रूपों को आंतरिक रूपों में परिवर्तित करता है। जो कुछ भी कलाकार भौतिक चक्षु से देखता है उसकी इंद्रिय जनित प्रक्रिया हमारे मानस - पटल पर कल्पना की सक्रियता के साथ विभिन्न प्रकार के बिम्ब उत्पन्न होता है। और वह बिम्ब चित्र - फलक पर रूपायित होता है। इस बिम्ब - चित्रण के सरलीकृत, विकसित एवं आलंकारिक स्वरूपों का चित्रण जोधपुर शैली में मिलता है।

चित्रकार दृष्टि सौन्दर्य के प्रति सदैव सजग रहती है। एतदर्थ रूपाकृतियों में कला के तत्वों, षडांगों,[1] एवं संयोजन - सिद्धान्तों के आधार पर सृजन करने से नन्दतिक आनन्द का सृजन होता है। इसी क्रम में जोधपुर के कलाकारों ने नंदतिक रूपाकारों का सृजन किया। जो शैली की विशिष्टता को रूपायित करती है।

मारवाड़ शैलियों के लघु - चित्रों में तकनीक एवं वर्ण - विधान का अद्भुत साम्य है। किन्तु फिर भी हर एक शैली की अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व है। जोधपुर के चित्रों में गढ़ रोली, पीले रंग का अधिक

---

1. " रूप भेदाः, प्रमाणानि, भाव, लावण्य-योजनम्।
सादृश्यं, वर्णिका भंग, इतिचित्रम् षडंगकम्।।

— वात्स्यायन कृत कामसूत्र

प्रयोग हुआ है । कभी - कभी पृष्ठभूमि में हरा रंग भी दृष्टिगोचर होता है ।

नभ - मण्डल में काले, नीले रंग के गोलाकार बादल उमड़ते - घुमड़ते जिसकी गोलाइयों में काली, सफेद एवं सुनहरी रेखाओं का अंकन हुआ है । स्वर्ण रेखाओं से विद्युत का अंकन किया गया है और बादलों में उड़ते कूजा पक्षी एक अलौकिक दृश्य उत्पन्न करते हैं । इसी परम्परा में बीका-नेरी चित्रकारों ने ग्रहण किया और बीकानेर किले के महल में उत्कृष्टतम उदाहरण का चित्रण किया गया है । प्रकृति में गहरे रंगों के श्वेत वास्तु - विरोध उत्पन्न करने में सहायक है । प्राकृतिक दृश्यों के मध्य धवल भवन अलौकिक एवं अद्भुत दृश्य उपस्थित किया ।

बीकानेर के लघु - चित्रों की शैली में आकाश को सुनहरे छल्लों से युक्त मेघाच्छादित दिखाया गया है । मेघ - मालाओं का आधार गोल, श्वेत और नीलाभ रंगों से युक्त है, जो नीले आकाश में छंड अथवा समूह के रूप में बिखरे हैं । चित्रों में पीले रंग की प्रमुखता है । वेशभूषा की दृष्टि से लघु - चित्र मुगल शैली से बेहद प्रभावित है । कहीं - कहीं पर जोधपुर शैली पर भी यह प्रभाव परिलक्षित होता है ।

अधिकांशतः पीला और गुलाबी तथा किनारों पर पीला और लाल रंग बीकानेर शैली के चित्रों की सामान्य पहचान है ।

नागौर चित्र - संख्या अत्यल्प है । फिर जो हैं, नागौर के लघु चित्र - शैली का एवं लघु - चित्रण - परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं । नागौर के चित्रों में जोधपुर के लघु - चित्रों का प्रभाव परिलक्षित होता है । लघु - चित्रों में लयात्मकता, गत्यात्मकता है, जो नागौर के

चित्रकारों की निपुणता एवं दक्षता का परिचायक है ।

किशनगढ़ लघु - चित्र शैली अपने आप में एक शैलीगत विशिष्टता रखती है । आकृति के अंकन में मुगल कलम का सूक्ष्मियानापन झलकता है । आकृतियों में ओज एवं माधुर्य का प्रतिपादन हुआ है। रेखाओं की प्रवाहमयता एवं गतिमयता रेखांकन की गतिज - ऊर्जा की परिचायक है रेखा की सम्पन्नता किशनगढ़ के लघु चित्रों की महत्वपूर्ण विशेषता है। कलाकारों ने रंगों का जादू फेर कर और दृश्यों को सबल आधार दे कर सम्पूर्ण वातावरण को अद्भुत बना कर दर्शक को आध्यात्म की ओर अभिमुख कर देता है ।

वास्तव में यहाँ की चित्र - कृतियाँ पशु - पक्षी, प्रकृति,वास्तु एवं जन - जीवन को इतनी चारुता के साथ अनुरंजित किया है कि सत्यता का आभास होने लगता है और दर्शक अपने आप को भूलकर कृति को ही क्षण - मात्र के लिए साथ मान बैठता है ।

जैसलमेर में पर्याप्त चित्र यहाँ के कला - प्रेमियों एवं कला संग्रह को यहाँ प्राप्त होते हैं । रंग, आकृति एवं भाव - विधान की दृष्टि से राजस्थान के अन्य स्थानों के चित्रों से पर्याप्त भिन्न है । जैसलमेर के लघु-चित्र अत्यन्त ही सुन्दर एवं कला पूर्ण है ।

जैसलमेर के चित्रों में रंगों की बहुलता नहीं है । इन लघु -चित्रों में कला के तत्वों एवं सिद्धान्तों का विशिष्टता से प्रयोग किया गया है। यहाँ कलाकार आध्यात्मिक सौन्दर्य को उड़ेलने का भरसक प्रयास किया है, जो उनकी कला - कृतियों में दृष्टिगत होती है । यही कारण है कि रंगों के माध्यम से यहाँ के कलाकारों ने बड़ी ही सजीवता के साथ विचित्र

चित्र बनाए । जो आज मारवाड़ी चित्र कला में रंग विधान, सजीवता और भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से अपना अलग ही महत्व रखती है । जैसलमेर के चित्र जो भी उपलब्ध हैं, उनमें कलाकारों के नाम नहीं अंकित हैं। जिन्होंने उनकी रचना की है । हां इतना अवश्य है कि उन राजाओं, रियासत दारों का नाम अवश्य मिलता है; जिनके संरक्षण में इन चित्रों की रचना हुयी है । उनके नाम हैं - महारावल हरराज, अखेसिंह और मूल राज । इन्हें कला से अत्यन्त ही प्रेमानुराग था और इनके दरबार में अच्छे कवि एवं विभिन्न विषयों के ज्ञाता रहते थे ।

यह तो निर्विवाद है कि जैसलमेर चित्र शैली का मारवाड़ी - कला में अपना विशिष्ट एवं उल्लेखनीय स्थान है ।

निष्कर्षया मारवाड़ी लघु - चित्रों की शैली ऐसे वातावरण में पली, जहाँ मारवाड़ की भूमि तो शुष्क है, पर वहीं कला के क्षेत्र में इतनी सरस है कि जो कला - संस्कृति को वृक्ष को पुष्पित, पल्लवित एवं पोषित करती रही है । राजाश्रय एवं जन - सहयोग इसका विकास करता रहा है । प्रत्येक घर - द्वार, शुद्ध रूप में लोक - जीवन के सांस्कृतिक पक्ष को परम्परा के माध्यम से ऐसा जोड़ते हैं, जो एक उदाहरण बन जाता है।

मारवाड़ में जहां रण - भेरी व जुझारु वाद्यों का उद्घोष, मन्दिरों के घण्टों व मृदंगों की गूंज तथा महलों व हर्म्यों में नर्तकियों के नूपुरों व आलापों की मधुर ध्वनि है, वहीं पर चित्रकला अपने आँचल में कला - संस्कृति के सौरभ ऐसा बिखेरा है कि समस्त मारवाड़ है कि समस्त मारवाड़ प्रदेश सुभासित हो उठा । इसी सन्दर्भ में, मारवाड़ के लघु - चित्रण - चित्रण शैली की संयोजनात्मक - व्यवस्था पर यत्किंचित

प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है । सुधीजन, मेरे इस लघु - प्रयास को कला की विरासत में एक कड़ी के रुप में जोड़कर मेरे सायास प्रयास को सफल बनायें तो मैं अपने को धन्य स्वीकारुँगा ।

---

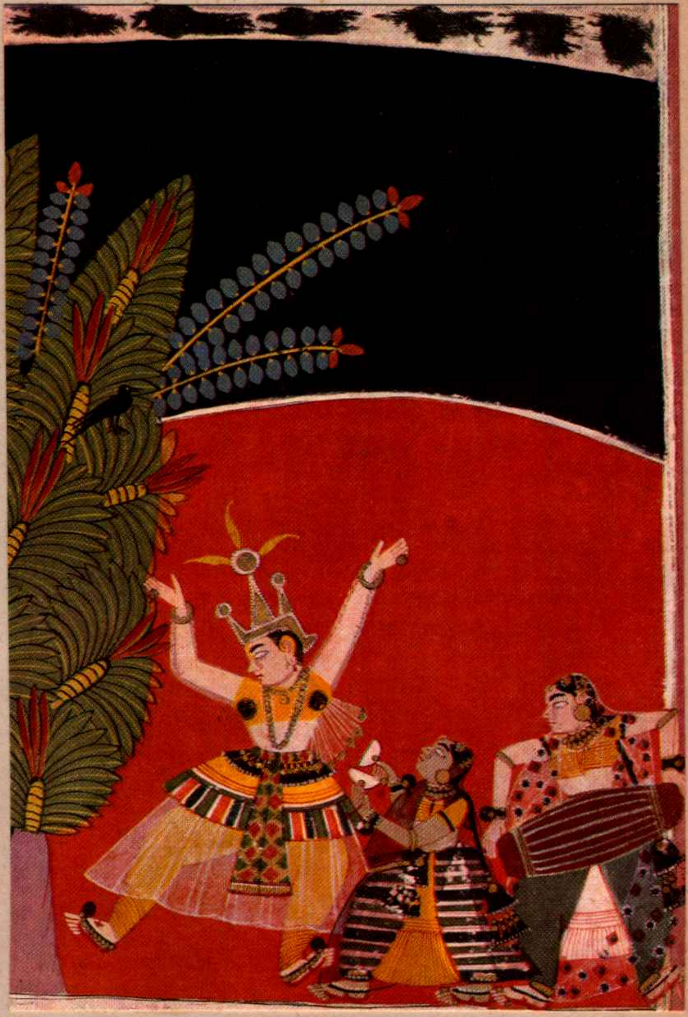

-56

# षष्ठम् अध्याय

षष्टम् अध्याय

उपसंहार

मारवाड़ चित्र शैलियों की कला को देन व विशिष्टताएं, आशायें तथा भविष्य

क) मारवाड़ चित्र शैलियों की कला को देन

ख ) मारवाड़ चित्र शैली की विशिष्टताएं

ग) आशाएं तथा भविष्य

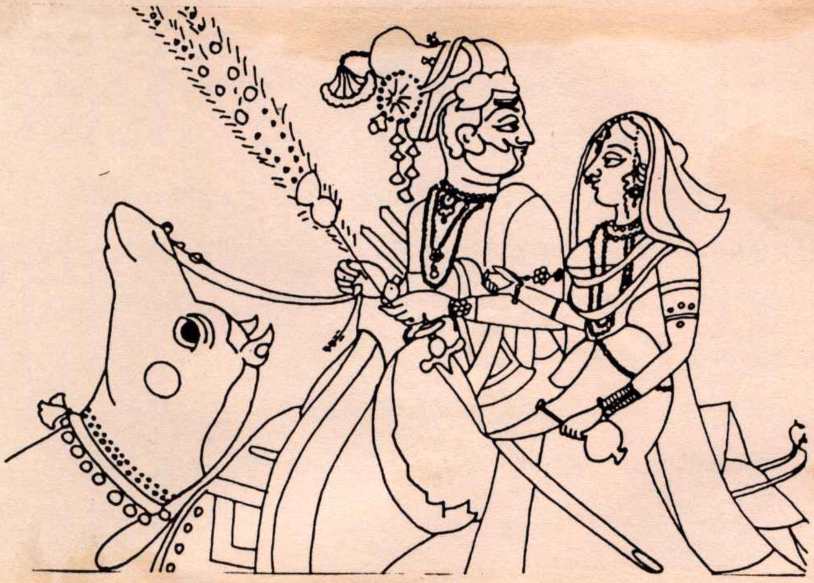

षष्ठम् अध्याय

**************************************

(क) मारवाड़ चित्रशैलियों की कला को देन :

प्राचीन काल से ही भारतीय चित्रकला का विकास हो चुका था । सिन्धु सभ्यता के ठीकरों (दोसों) पर जो चित्रकारी हुयी, वह लगभग 5000 वर्ष पूर्व का इतिहास है । वैदिक काल में चित्रों का उपयोग किया जाता था । अजंता की गुफाओं के चित्रों को देखकर लगता है कि उस जमाने में चित्रकला अपनी चरम अवस्था पर थी। इसी

(गुप्तकाल) के पश्चात् चित्रकला का ह्रास होता चला गया । पठानों के काल में तो कला लुप्त प्राय हो गयी । परन्तु उत्तर मध्य काल में जब इस्लाम में उदारता आयी तो मुस्लिम समाज भी कला के प्रति उन्मुख हुआ। और कला की अजस्र धारा फूट पड़ी जो गगन मन को सींच - सींच कर हरा भरा कर दिया । यहाँ तक कि एक अलग ही मुगल शैली चल पड़ी । और मुगल कलम शुद्ध भारतीय कलम के रूप में प्रकट हुयी । परन्तु कला के इस हरे भरे पुष्पित - पल्लवित वृक्ष को औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति एवं निरंकुशता ने एक ही झटके में उखाड़ फेंका । मुगल दरबार के चित्रकार इधर - उधर भागने लगे । राजपूताने के रजवाड़ों ने इन पलायित कलाकारों का स्वागत किया और पूर्व से ही चली आ रही राजस्थानी कला लहलहाने लगी ।

राजस्थान की चित्रकला का विकास का श्रेय मारवाड़ और मेवाड़ को है । पांचवीं शती में गुजरात में जैन शैली का पूरा जोर था । निकटवर्ती क्षेत्र होने के कारण, जैन कला का प्रभाव मेवाड़ एवं मेरु प्रांत पर रहा ।

मारवाड़ी चित्रकला 16 वीं शती में पनप रही थी । स्थानीय वातावरण, भौगोलिक स्थिति, जैन एवं मुगल कला - शैली के योग से राजस्थान में विभिन्न शैलियों का उद्‌भव एवं विकास हुआ । जिसे देख कर सारा विश्व विमुग्ध हो उठा । यद्यपि मुगल कला की लहर का प्रभाव तो अवश्य था, परन्तु राजपूत शैली और मुगल शैली में अत्यधिक अंतर था ।

राजस्थानी चित्र - शैलियों की भाव - धारा अजन्ता के उत्स से फूट कर आगे बढ़ी और राजस्थान की अलग - अलग रियासतों में अलग-अलग

शैलियों का विकास हुआ । जोधपुर, किशनगढ़, कोटा, बूंदी, अलवर, नाथ द्वारा, नागौर, उदयपुर, बीकानेर, जैसलमेर आदि रियासती ठिकानों पर कलाकारों ने रियासती शैलियों का अभ्युदय किया । इन विभिन्न शैलियों के चित्रों को देखकर आश्चर्य होता है ।

वैष्णव - धर्म की प्रतिष्ठा धर्माचार्यों, कवियों, महात्माओं, राजाओं, महाराजाओं आदि में श्री कृष्ण के रूप - माधुर्य में अर्पित कर कला को जीवन्त स्वरूप प्रदान कर उसे खूब संवारा - सजाया ।

यही कारण है कि गीत - गोविन्द, भागवत - पुराण, रसिक-प्रिया आदि कृष्ण भक्ति ग्रन्थों के आधार पर कृष्ण और राधा के रूप सौन्दर्य को तूलिका बद्ध करके जन - मानस को आह्लादित किया । इसके अतिरिक्त स्थानीय परिवेश और राजाओं की रुचि का भी विशेष प्रभाव पड़ा । परिणाम स्वरूप सभी शैलियों में बहु - आयामी चित्रण की विविधता प्राप्त होती है और यही कारण भी है कि रियासती - शैलियां अपना निजी स्वरूप, विशेषता एवं सृजनात्मक विशिष्टता को स्थापित करती है ।

यहाँ के वीर राजा - महाराजा गण प्राणार्पण से युद्ध में जूझे, उतने ही मनोयोग से भोग - विलास एवं रसिकता में सराबोर हो गये । राजाओं की यह रसिक - प्रिय क्षुधा को कवियों, नृत्यांगनाओं एवं संगीताचार्यों, तथा कलाविदों ने कुछ हद तक शांत किया । केशव और जयदेव ने कविता दी तो मारवाड़ के कलाकारों ने भावमयी चित्रों का सृजन किया । बिहारी सतसई एवं पंचतन्त्र की मनोहर कथाओं आदि पर कला का सृजन हुआ । तो सूर की बाल - लीलाओं पर लालित्य - पूर्ण

सृजन कला के क्षेत्र में हुआ । ढोलामारु, राग - रागिनियों, बारह मासे आदि तथा संयोग - श्रृंगार एवं मान मिलन पर किशनगढ़ के चितेरों ने अभूतपूर्व सौन्दर्य छटा बिखेर दी ।

मारवाड़ की लघु - चित्र शैलियों में चित्रों की पृष्ठभूमि को संवारने के लिए प्रकृति में फैले अनन्य साधनों का उपयोग किया । लता, वृक्ष, पर्वत, सरोवर, पुष्प - वल्लरी, चन्द्र एवं तारागण आदि के अतिरिक्त सत्रह प्रकार के पक्षी, चार प्रकार के कीट - पतंगों, भ्रमर, तितली आदि और नौ प्रकार के पशुओं का अंकन हुआ । उनका अंकन एवं निरूपण भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप किया गया ।

जोधपुर, बीकानेर एवं नागौर शैली में आम, ऊँट और घोड़ों, कुत्तों की संख्या अधिक है । तो जैसलमेर में हाथी, बैल, घोड़े और किशन गढ़ में भ्रमर का अंकन विशेष उल्लेखनीय है ।

मारवाड़ के चित्रकारों ने शरद, हेमन्त, शिशिर, बसंत, ग्रीष्म एवं वर्षा आदि षड् - ऋतुओं, बारहमासे आदि पर पर्याप्त अंकन किया । बादलों के अंकन में विभिन्न शैलियों की शैलीगत विविधताएँ हैं । किशन गढ़ में बादल धुँए के समान, तो बीकानेर शैली में छल्लेदार झालर की तरह झूलते हुए, जोधपुर शैली में गोलाकार घने बादलों में विद्युत - छटा है । नागौर के घने - काले बादल तो जैसलमेर के चित्र नीले - भूरे रंगों से आच्छादित चित्रित किये गये हैं । बादलों की घनीभूत उमड़ - घुमड़ से सारा वातावरण आकर्षक बन पड़ा है । अन्तराल में सौन्दर्य की सृष्टि में सहायक बन गया है ।

मारवाड़ी चित्रों का विषय काफी विस्तृत रहा है । अनेकानेक राग - रागिनियों यथा - भैरव, मालकोष, हिन्डोल, दीपक, श्री एवं मेघ के तथा विभिन्न प्रकार की नायक - नायिकाओं तथा समाज के प्रत्येक वर्ग के स्त्री - पुरुषों पर लगभग साठ प्रकार के चित्र बनाए गये हैं ।

मारवाड़ शैलियों के लघु - चित्रों में कलाकारों ने पुरुषों को बीरोत्साही एवं स्त्रियों का सजीली - लजीली अंकित किया है । चित्रों में अंकित तृण - समूह इतने चैतन्य हैं कि नवेलियों के पैरों के नूपुरों रूनझुन उन्हें सुनायी देती है, तो भला रमणियों के रूप - सौन्दर्य में चैतन्यता और रमणीयता क्यों न हो ।

कलाकारों ने नारी सौन्दर्य को अनेकानेक प्रकार से परखा और अंकित किया है । यथा - किशनगढ़, जोधपुर एवं बीकानेर के चित्रकारों ने नेत्रों को खंजन के रूप में तो नागौर और जैसलमेर के चित्रकारों ने मीन और आम्रपत्रों के । सादृश्य में अंकित किया । इसी प्रकार नारियों को लगभग बत्तीस प्रकार के परिधानों एवं सैंतीस प्रकार के आभूषणों से सजाया - सँवारा है तो लगभग साठ प्रकार के रंगों का सुन्दर उपयोग किया गया है तो पुरुषों को भी पन्द्रह प्रकार के वस्त्रों एवं 14 प्रकार के आभूषणों से युक्त चित्रित किया गया है जो उनके वैभव, शौर्य एवं शालीनता का परिचायक है ।

मारवाड़ के लघु - चित्रों की दार्शनिक पृष्ठभूमि में वैष्णव धर्म की भक्ति एवं चिन्तन तथा मोक्ष की प्राप्ति एवं आशावादिता झलकती है । जो प्रेम एवं माधुर्य - भाव से अनुप्राणित होकर जन - मानस को ईश्वरीय अनुभूति की ओर अग्रसर करती है । यही कारण है कि चित्र शांत

एवं शालीन प्रतीत होते हैं ।[1]

भारतीय दर्शन का अनुगुंजन मारवाड़ चित्र - शैलियों के लघु - चित्रों में स्वरित होती है । आत्मा के चित्रण की जो परम्परा बढ़ी वह केवल देव - प्रतिमाओं तक ही नहीं सीमित रही, वरन् सतों, महात्माओं राजाओं यहां तक कि नारी चित्रों में भी समायी रही । मारवाड़ शैली के लघु - चित्रों के चित्रकारों ने प्रेम और विरह की अनन्तता तथा अदृश्य परम शक्ति के अनुसन्धान में अनुशीलन रत रहे । यही कारण है कि उनकी कला समरसता लिए हुए अमरता की ओर अग्रसर होती दृष्टिगत प्रतीत होती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मारवाड़ शैलियों के लघु चित्रों की देन हमें एक ओर आध्यात्मिक अनुभूतियों से आह्लादित करती है तो दूसरी ओर संगीतात्मक मधुर गुंजार से अनुप्राणित तथा तीसरी ओर लौकिक - जीवन के प्रेमोल्लास, हास - विलास की श्रृंगारिकता के सागर में निमग्न कर देती है । एतदर्थ ये लघु - चित्र सुधी दर्शकों एवं कलाविदों को भक्ति, संगीत एवं श्रृंगार की पावन त्रिवेणी में नहला कर नव - चेतना प्रदान करते हैं ।

§ख§ <u>मारवाड़ चित्र - शैलियों की कला को देन व विशिष्टतायें, आशाएँ तथा भविष्य :</u>

शोध - प्रबन्ध के पंचम अध्याय में " मारवाड़ के लघु - चित्रों की

---

1. " स्वचिंतन " - शोध प्रबन्ध के प्रणयन के साथ ।

संयोजनात्मक अध्ययन एवं उपलब्धियों की समीक्षा प्रस्तुत करने के पश्चात् षष्ठम् अध्याय में उसका कला के क्षेत्र में क्या उपादेयता है, उसकी देन क्या है, उसकी विशेषता क्या है तथा उनका भविष्य में क्या उपयोगिता होगी इस प्रकरण पर भी विचार कर लेना अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। तथा इस शोध - प्रबन्ध की सार्थकता प्रभावी होगी।

कला संसार के द्वितीय स्वर्ण युग की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि एवं देन है। मारवाड़ की उप - शैलियों की विशिष्टताओं को स्थापित करना एक दुरूह कार्य है, फिर भी अपने इस शोध - प्रबन्ध की रचना प्रयास के अध्ययन से तथा गुरुजनों, मित्रों, शुभेच्छु - कला मर्मज्ञों एवम् कला - समालोचकों के श्लाघनीय सहयोग से जो वांछित सामग्री जुटा पाये हैं, उससे निश्चय ही मारवाड़ की लघु - चित्रण शैलियों की विशिष्टताओं पर प्रकाश पड़ेगा।

" मारवाड़ शैली " § जोधपुर, बीकानेर, नागौर, किशनगढ़ तथा जैसलमेर § की कला की देन व विशिष्टताओं को क्रमशः जोधपुर शैली से शुभारम्भ करते हैं। जोधपुर शैली की कलात्मक गतिविधि समुचित रूप से विकसित थी। यहाँ सहस्त्रों की संख्या में यहाँ जैन तथा वैष्णव साहित्यिक - कृतियों का चित्रण हुआ। इस युग के जितने सचित्र ग्रन्थ मिलते हैं पाली की रागमाला पर मारवाड़ की लोक - कला का स्वरूप परिलक्षित होता है। जोधपुर पुरुषों के अलंकरण में, तुर्रे, कलंगी, सरपेंच जुल्दा, वाली, मोती की मालाएँ, कटार तथा ढाल और तलवार तथा स्त्रियों की पोशाक में लाल, पीला, नीला, केसरिया एवं कसुम्बल रंगों का प्रयोग किया गया है। स्त्रियों के वस्त्रों में लंहगा, ओढ़ना, कांचली,

लूँगड़ी, थी । किन्हीं चित्रों में मुगल - प्रभाव के कारण, चूड़ीदार पायजामा, तथा ऊपर पारदर्शी जामा पहनती थीं । स्त्रियों के आभूषणों में मोतियों का बाहुल्य है । मुख्य आभूषण हैं - टीका, टोंटी, वाली, बेसर, लूंग, नथ, आड़, टेवटा, गलसरी, कंठीमाला, लाकेट, भुज - बन्ध इत्यादि । पैरों में जूर, कड़े आदि का प्रयोग होता था । पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी लम्बी - तगड़ी बनायी गयी हैं । सिर पर बाल काले और घने तथा नितम्बों तक लहराते हुए, हाथ लम्बे तथा अंगुलियाँ पतली तथा लम्बी होती बनी हैं । हाथों में मेंहदी और माथे पर सुन्दर बिन्दी होती है । स्त्रियों की कमर किशनगढ़ शैली के विपरीत बनायी गई हैं। आँखें खंजन पक्षी की भाँति बनी हैं । प्रमुख चित्रण विषय " रागमाला, बारह मासा, ढोलामारु, राजकीय - वैभव एवं विलास, शिकार, युद्ध आदि का चित्रण हुआ है ।

प्रत्येक शैली की अपनी एक विशेषता होती है । जिसमें एक रंग - विशेष का बाहुल्य होता है । इस प्रकार मारवाड़ - शैली में पीले रंग पर विशेष बल दिया गया है । जोधपुर के चित्र में पीले रंग का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है । इसी प्रकार जोधपुर शैली में अन्य वृक्षों की अपेक्षा आम के वृक्ष आधिक बनाये गये है ।

पशु - पक्षियों में ऊँ, हाथी, घोड़ा, कुत्ता आदि का अंकन हुआ है । यहाँ के बादलों को खूब घने और काले रंग में गोलाकार दिखाया गया है ।

उपर्युक्त विशेषताएँ जोधपुर के चित्रों में परिलक्षित होती हैं ।

बीकानेर शैली के चित्र कालान्तर में मुगल - शैली से प्रभावित

हुए पर अपने निजत्व को अक्षुण्ण बनाए रखे । बीकानेर चित्रों का प्रमुख विषय है - राजा - महाराजाओं की शबीहें ( पोर्ट्रेट्स ) तैयार करवाना तथा दरबार, आखेट, राग - रागिनियों का चित्रांकन किया गया है । मुगल - कालीन चित्रों की प्रतिलिपियाँ तथा रसिक - प्रिया आदि श्रृंगारिक आख्यानों को भी बीकानेर के चित्रकारों ने अपनी कूँची के माध्यम से रंगों को बाँधा ।

फव्वारों, दरबारी सजावट एवं दृश्यांकनों में बीकानेर -शैली के लघु चित्र, दक्षिणी - शैली के काफी निकट बने हैं । भागवत - कथा सम्बन्धी चित्र जो नगर के प्रमुख संग्राहक के संग्रह में उपलब्ध हैं, विषयवस्तु की दृष्टि से ये चित्र उत्तम कोटि के हैं ।

बीकानेर शैली के चित्रों में आकाश को सुनहरे छल्लों से युक्त, मेघाच्छादित दिखाया गया है । मेघ - मालाओं का आकार गोल, श्वेत तथा नीलाभ रंगों से युक्त है जो चित्र रंग योजना के द्योतक हैं, जो कि नीले आकाश में बिखरे हुए मेघों की झालर खूब शोभायमान एवं दृष्टि को बरबस बाँधने वाली बन जाती है । इन चित्रों को पीले रंग की प्रधानता ही प्रमुखता है । वेश - भूषा की दृष्टि से बीकानेर के ये चित्र मुगल शैली से अधिक प्रभावित हैं तथा कहीं - कहीं पर जोधपुर या मारवाड़ शैली का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

अधिकांशतः पीला व गुलाबी तथा किनारों पर पीला और लाल रंग बीकानेर - शैली के चित्रों की एक खास पहचान है । पुरुषों की आकृतियाँ उग्र, तेजस्वी दाढ़ी - मूँछों से युक्त, वीर भाव से प्रदर्शित करती हुयी हैं । पुरुष ऊँची शिखराकार पगड़ियाँ बाँधे हुए, फैले हुए जामे पहने

हुए लम्बे और सीधे खड्ग हाथ में धारण किए हुए हैं । नारी आकृतियाँ जोधपुर और मुगल - शैली की नारियों के समन्वित स्वरूप की झाँकी प्रस्तुत करती हैं । आँखें, होंठ, नाक और सम्पूर्ण कद के चित्रण में बीकानेर शैली के कलाकार ने नारी - आकृति को अनूठा सौन्दर्य प्रदान किया है । कोमल और मनो - मुग्धकारी आकृतियों के साथ - साथ इन चित्रों में दृश्य - चित्रण का सम्मिश्रण भी बड़े समीचीन ढंग से प्रस्तुत किया गया है ।

बीकानेर की कला को समृद्धि - शालिनी बनाने वाले कलाकार हैं - रुकनुद्दीन, रहीम खाँ, साधू, मुराद, कासम, शाह मुहम्मद, राम लाल, अली रजा एवं हसन आदि प्रमुख हैं ।

यह कहना अत्यन्त ही युक्ति - संगत है कि बीकानेर शैली के लघु - चित्र मौलिक रूप से अपना एक अलग अस्तित्व रखते हैं और रेखाओं की गतिमयता, रंगों के आकर्षक प्रयोग तथा आलेखन की सहजता के कारण, राजस्थान की अन्य लघु - चित्र शैलियों से किसी तरह कम नहीं है । शब्दों की पकड़ से परे इस शैली में अनेक मौलिक गुण मिलते हैं, जो इसे एक स्वतन्त्र और संतुलित कला - शैली के रूप में प्रतिस्थापित करते हैं ।

नागौर के लघु - चित्रों एवं वहाँ की कला - प्रियता अद्वितीय रही है । यहाँ के भित्ति - चित्रों पर तथा लघु चित्रों पर जोधपुर शैली के प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं । महाराजा भक्त सिंह (1724-50) यहाँ काफी मात्रा में लघु - चित्रों का निर्माण हुआ । पर समय की असह्य मार से काल - कवलित हो गये हैं । कुछ लघु - चित्र महाराजा संग्राम सिंह के अपने व्यक्तिगत संग्रह में हैं । इन दुर्लभ चित्रों को

देखकर तथा भित्ति - चित्रों को जो कि अभी बादल महल के बराम्दे ( प्रथम तल पर ) तथा दूसरी मंजिल की नायिकाओं के चित्र अद्वितीय हैं, जिन्हें देखकर नागौर की चित्र - शैली पर प्रकाश पड़ता है। जनानी ड्योढ़ी, शीश महल, हवा महल की छतों एवं दीवारों पर नागौर के सुन्दरतम चित्रों का निर्माण हुआ है। इनमें सुन्दर, सजीव नायिकायें, गुलदस्ते, अप्सरायें, आखेट, स्नान तथा आमोद - प्रमोद के दृश्यों को देख कर नागौर चित्र शैली का एक विशद आंकलन होता है।

नागौर का यह दुर्ग यद्यपि आज एकदम जीर्ण - शीर्ण होकर अपनी जर्जरावस्था से गुजरते हुए भी कला की अप्रतिम धरोहर को अपने में समेटे है। यहाँ के भित्ति - चित्र ही यहाँ की कला - परिपाटी का अध्ययन करने में प्रचुर योगदान प्रदान करते हैं। अब नागौर के किले में अर्ध-सैनिक बल तथा कुछ स्थानीय जन - साधारण जनता इसमें अपना निवास-स्थान बनाकर इसकी रही - सही अलौकिक छवि को धूमिल कर रहे हैं।

नागौर के बीस जैन - मन्दिरों में भी विशाल भित्ति - चित्रों में विभिन्न तीर्थंकरों के लक्षण, सोलह स्वप्न एवं तीर्थंकरों के जीवन - सम्बन्धी शैली के विभिन्न लक्षण घुमाव दार बादलों का अंकन किया गया है। इन जैन मन्दिरों के पास राम स्नेही सम्प्रदाय के एक मन्दिर में सम्प्रदाय के गुरुओं, उनके प्रवचन एवं कृष्ण - लीला विषयक ( गोवर्धन - धारण ) के सुन्दर चित्रों के अध्ययन से चित्रों की शैलीगत विशेषता की जानकारी प्राप्त होती है। जो कि अत्यन्त ही सजीव व सुन्दर है।

यहाँ पर विपुल संख्या में व्यक्ति चित्रों का निर्माण हुआ है। यहाँ के लघु चित्रों में नागौरी वेश - भूषा जिस पर मुस्लिम मेरवाड़ा क्षेत्र

का प्रभाव स्पष्ट होता है । ऊँची उठी हुयी पगड़ी, लम्बी मूँछें, नागोरी व्यक्ति - चित्रों की अलग पहचान कराने में यथेष्ट है । इन्हीं प्राप्त लघु-चित्र, भित्ति - चित्र एवं व्यक्ति - चित्रों के आधार पर ही नागोर के लघु - चित्रों की शैली का निर्धारण किया जाता है । नागोर - शैली अपने आप एक स्वतन्त्र शैली के रूप में उभरी, पनपी, पल्लवित एवं पुष्पित हुयी । चित्रों में विशिष्ट परिधानों एवं पुरुषों के आकारों, उनकी ऊँची पगड़ियों तथा लम्बी मूछों की बनावट से विशेषतया नागोर -शैली के लघु - चित्रों पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है तथा इसके शैलीगत - अध्ययन में सहायक होता है । जिससे हम कला - चिन्तकों को अध्ययन में पर्याप्त जानकारी होती है । तथा इसी के आधार पर ही इस शैली की निजस्व एवं अस्मिता की पहचान कराने में समर्थ है । यही इसकी विशिष्टता है ।

किशनगढ़ शैली के बारे में यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि मारवाड़ की लघु - चित्र शैलियों में किशनगढ़ एक - मात्र ऐसी शैली है, जो कलात्मक दृष्टि से इतनी समर्थ एवं सशक्त तथा आकर्षक है कि इस शैली के बने चित्र दर्शकों की दृष्टि को बरबस बाँध लेते हैं । अपनी रस-मय, मनोहारी रंग - योजना, आकर्षक एवं गतिमान रेखा - सौन्दर्य तथा लावण्य - मय संयोजन वैशिष्ट्य के कारण, किशनगढ़ शैली के चित्र न केवल भारत में वरन् विश्व भर में ख्याति प्राप्त कर चुके हैं । काव्य और कला का जो कमनीय संगम हम किशनगढ़ शैली में पाते हैं, वह अद्वितीय है ।

अंकित विषय के प्रतिपादन, विश्वास पूर्ण आलेखन तथा तूलिका की गतिशीलता को दृष्टि - पथ पर रख कर देखा जाय तो किशन गढ़

शैली के लघु चित्र तत्कालीन कलाकारों की साधना और भावना की जीवन्त साक्षी देते हुए से प्रतीत होते हैं । इन चित्रों के कल्पना - लोक में विचरण करते हुए दर्शकों को कभी - कभी तो ऐसा अनुभव होने लगता है कि जैसे वे आत्मा व परमात्मा के सामंजस्य के पवित्र सूत्र को पकड़ने की चेष्टा में प्रवृत्त हो गये हैं ।

कृष्ण भक्ति धारा में निमग्न नागरी दास की रसिकता एवम् भावुकता की प्रेरणा शैली " बनी - ठनी का अनिंद्य रूप, रूप सौंदर्य का सृजन राधा के रूप में करके चितेरों ने किशनगढ़ कला की लालित्य - भावना को उजागर किया । श्री बल्लभाचार्य के अनुयायियों ने कृष्ण भक्ति के माध्यम से मोक्ष प्राप्त करने की ललक से बाल - कृष्ण के मोहक स्वरूप, नट-खट नन्द किशोर और युगल रूपों को चितेरों ने तूलिका बद्ध किया ।

किशनगढ़ की चित्र शैली को कलात्मक उत्कर्ष पर पहुँचाने का श्रेय राजा सावन्त सिंह ( 1699 - 1764 ) को है । जो नागरी दास के नाम से विख्यात हुए । भावुकता एवं श्रृंगार - प्रियता ने " बिहार-चन्द्रिका ", रसिक रत्नावली, मनोरथ मंजरी एवं गीत - गोविन्द के लालित्य - मय शब्दों को " रूपगत " आकार में सजा दिया । यह किशनगढ़ शैली की महान उपलब्धि है ।

किशनगढ़ के सुन्दर प्राकृतिक परिवेश ( झीलों, पहाड़ों, वनों, उपवनों, विहग - वृंद आदि किशनगढ़ के चितेरे अंकन का प्रिय विषय बन कर लघु - चित्र शैली परम्परा को उच्च सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया । इस शैली के लघु चित्रों का मोहक एवं प्रभावशाली स्वरूप बनाने के लिए चित्रकारों ने प्रकृति के अन्य उपादानों का यथा - कुंजों से झाँकती श्वेत

मुण्डेरा, अट्टालिकाओं, फव्वारों, केले के वृक्षों और सरोवरों में विकसित कमल - दलों का भी सहारा लिया है । ये चित्रण किशनगढ़ लघु चित्रों की शैली को एक जीवन्त विस्तार देते हुए प्रतीत होते हैं । पृष्ठभूमि पर भव्य प्रासादों, केलों के कुंजों, चाँद - तारों से शोभित चाँदनी रात को दिखाकर ऐसा स्वरूप प्रस्तुत करते हैं, मानों स्वर्ग भूमि पर उतर आया है ।

कविवर नागरी दास की " बनी - ठनी " प्रेयसी थी, जो कि एक विदुषी, सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति एवं संगीत दक्षा व कवि सहृदया भी थी । यह नागरी दास की आराध्य देवी थी । इसके प्रति आत्म निवेदन एक स्वस्थ काव्य - धारा के रूप में प्रस्फुटित हुयी जिसने " मोरध्वज निहालचन्द " ऐसे कलाकारों को विषयवस्तु की विस्तृत पृष्ठभूमि तथा कल्पना एवं सौन्दर्य का विशाल आकाश प्रदान किया ।

किशनगढ़ की लघु - चित्र शैली अंकन की विशिष्टता एवं रंग-संयोजन की प्रखर अभिव्यक्ति को विस्तारित किया है । इस शैली में बने चित्रों में पुरुष आकृतियाँ, समुन्नत ललाट वाली, पतले अधरों, उत्तिष्ठ नासिका, कालिमा से युक्त दीर्घ नेत्रों, आजानु प्रलम्ब भुजाओं, उन्नत - स्कन्धों, सुकुमार अँगुलियों तथा प्रभावान् मुखमण्डल से युक्त है ।

यहाँ के लघु - चित्रों की विशिष्टता की कड़ी में नारी - आकृतियों में नारी सुलभ लावण्य एवं कोमलता, विशाल व मोहक नेत्र, विस्तृत अलकावली, दीर्घ नासिका, समुन्नत ललाट, चमेली की पंखुड़ियों से अधर, अर्ध - विकसित किन्तु खिला हुआ उरोज, नारी के काव्य - मय रूप सौन्दर्य के साथ जुड़ जाता है ।

इन्हीं विशिष्टताओं के मध्य छरहरे पुरुष, खुले केश, पेच बन्दी पगड़ियाँ जो प्रायः मोतिया एवं दूधिया रंग की होती थी, अधरों पर सिन्दूरी रेख, मादक भाव से युक्त नेत्र, कानों में मुक्ता - माला, मणि-मालाओं से आच्छादित कण्ठ, पौरुष को व्यक्त करने वाले स्कन्धों पर लहराता हुआ अलंकृत दुकूल धारी पुरुषाकृति निःसन्देह स्तुत्य है ।

किशनगढ़ के लघु चित्रों में नारी के लालित्य - पूर्ण कमनीय स्वरूप को कस्तूरी व चन्दन के लेप से पीताभ हुए कोमल नारी शरीर पर खेलती हुयी उन्मुक्त केशराशि जो कटि - प्रदेश तक लहराती, अरूणाभ नेत्रों में काजल की घनी किन्तु चित्ताकर्षक पतली रेख, चमेली की पंखुड़ियों से अधर, अग्रगामी चिबुक, कल्पित भृकुटी अत्यधिक कृश - कटि बन्ध एवं पाँवों को छिपाये लँहगा, कमल कोष सा पल्लवित किन्तु अर्ध - विकसित उन्नत उरोज प्रदेश मुक्ता - मणि मालाओं से आच्छादित अंकित करना चित्रकारों को विशेष रूप से अभीष्ट था ।

कंचुकी और ओढ़नी में आवृत, अलंकारों से सुसज्जित, हाथ में अर्ध कमल कली से युक्त सुकोमल नारी - शरीर का सौष्ठव यहाँ के लघु-चित्रों की विशिष्टता है ।

किशनगढ़ के लघु - चित्रों में श्वेत एवं गुलाबी रंगों का सम्मिश्रण एक अद्भुत सौन्दर्य का सृजन करता है । अन्य रंगों में हरा, गहरा नीला, लाल प्रमुख हैं । कुसुम शैया, फूलों के भार से झुके हुए हरित आभा वाले वृक्ष तथा पृष्ठ भूमि ऐसे सुवर्ण से आलेपित आकाश कतिपय इन चित्रों की विशेषताएं हैं ।

विशेषतया जन - जन के आराध्य देव घनश्याम की भी नील छवि

ही चतुर्दिक दृष्टि गत होती है । कांगड़ा शैली का किंचित् प्रभाव भी किशनगढ़ के लघु चित्रों में दृष्टव्य है । कांगड़ा प्रान्त जोधपुर के निकट था । अतः सम्भवतः उसका भी प्रभाव यहाँ हुआ हो । किशनगढ़ के चित्र साहित्यिक पृष्ठभूमि की दृष्टि से भी कांगड़ा के समकक्ष रखे जा सकते हैं । कांगड़ा और किशनगढ़ के अतिरिक्त अन्य किसी शैली का इतना सबल एवं सफल साहित्यिक आधार नहीं है ।

किशनगढ़ शैली के लघु - चित्रों की आकृतियों के ओज एवम् माधुर्य, रेखाओं की सम्पन्नता, रंगों के जादू और दृश्यों का सफल आधार बनाकर यह मनोहर एवं कमनीय कला - प्रबद्ध दर्शक को लौकिक से अलौकिक जगत तक ले जाने में समर्थ हैं । वहाँ वह उन्हें यह सोचने पर भी बाध्य करती है कि वास्तव में ये चित्र कृतियाँ सत्य के निकट हैं अथवा सत्य उनके निकट है । इस दृष्टि से किशनगढ़ शैली के लघु चित्रों को रहस्य - मयी कल्पनाओं का अमूर्त स्वप्न भी कहा गया है । यही इस शैली के लघु-चित्रों की अत्यन्त ही महत्वपूर्ण विशिष्टता है ।

जैसलमेर की लघु - चित्र शैली पर किसी भी शैली का प्रभाव परिलक्षित होता है । जैसलमेर के चित्रकारों में रेखाओं के लावण्य में इतने कुशल थे कि इतना सुन्दर रेखा - सौष्ठव मारवाड़ की अन्य शैलियों में दुर्लभ हैं । जैसलमेर के कलाविदों ने मुगल कला का प्रभाव अपने पर आने नहीं दिया । न, ही किसी के अनुकरण की चेष्टा ही की । जोधपुर निकट होने के कारण भी यहाँ की शैली को प्रभावित नहीं कर सकी । इस शैली के चित्रों में अपनी निजस्वता और अनोखापन है ।

जैसलमेर के कलानुरागी अधिशासकों के अवसान के पश्चात् न तो

विशेष कोई संग्रह रहा न ही कला - मर्मज्ञों का आवागमन ही ।फलस्वरूप जैसलमेर शैली के चित्रों का संग्रह एक स्थान पर नहीं हो सका । थोड़े बहुत चित्र जो कि इन प्रासादों, मोहल्लों की हवेलियों, पटुओं की हवेलियों और निजी संग्रहालयों से प्राप्त हुए हैं, उन्हीं के आधार पर ही जैसलमेर लघु - चित्रण शैली का मूल्यांकन किया गया है ।

जैसलमेर स्थापत्य कला एवं प्रस्तर - कला की सौन्दर्यमयी नारी अपनी चित्र शैली के सुन्दर लघु - चित्रों को राज - प्रासादों एवं भवनों में लगे जैसलमेर शैली के चित्र अपने में अत्यन्त ही सुन्दर एवं आकर्षक तथा प्रभावोत्पादक हैं । भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से ये चित्र अत्यन्त ही सजीव हैं । रंग, फूल, पत्र, मुखाकृति, भवनों आदि के आलेखन में जोधपुर शैली और मुगल शैली का बहुत ही कम या न्यूनतम प्रभाव दिखाई पड़ता है । जैसलमेर के चित्रों में अपनी मौलिकता दृष्टिगत होती है । इस शैली के पुरुषों के मुख पर दाढ़ी - मूँछों की नीलिमा की जो छटा है, वह चेहरों को प्रभावी बनाती है । मुखाकृति में ओज तथा वीरता से परिपूर्ण है । एक विशेष प्रकार से सिर पर बँधी हुयी पगड़ियाँ पीछे की तरफ झुकी हुयी दिखायी पड़ती हैं । चित्र तने हुए और शक्तिशाली दिखायी देते हैं, जो यहाँ की वीर भावना का प्रतीक है ।

नारी - चित्रण में नारी के मुख खिंचे हुए, यौवन की दीप्ति से परिपूर्ण, सुन्दर एवं कला पूर्ण हैं । नेत्रों को अंगों के अनुपात से चित्रित किया गया है न कि निकला हुआ अन्य शैलियों की भाँति हैं ।कलात्मक दृष्टि से इन्हें तीखे एवं रस भरे कहा जा सकता है । अँगुलियों की बनावट आकर्षक एवं विशिष्टता लिए हुए है ।

जैसलमेर की अन्य शैलियों की तरह राग एवं रागिनियों की अंकन परम्परा की विशिष्टता है । अन्यान्य शैलियों में " माल कोष " राग को राग के रूप में चित्रित किया गया है । परन्तु जैसलमेर शैली में उसे शिकारी के रूप में चित्रित कर अत्यन्त ही सजीवता का परिचय दिया है ।

इस शैली के चित्रों में रंग का बाहुल्य न हो कर कला - तत्वों का बाहुल्य दिखायी पड़ता है । यहाँ के चित्रकारों ने कला के वाह्य - स्वरूप की ओर अधिक ध्यान से न देखकर उसके आन्तरिक पक्ष की ओर विशेष महत्व दिया है । यही कारण है कि रंगों की न्यूनता होते हुए भी यहाँ के कलाकारों ने बड़ी ही सजीवता के साथ विभिन्न चित्र बनाए जो आज मारवाड़ी - कला में रंग - विधान, सजीवता और भावाभि - व्यक्ति की दृष्टि से अपना अलग स्थान रखते हैं, जो जैसलमेर की जिनस्वता का परिचायक है ।

जो भी चित्र इस शैली को प्राप्त हुए हैं, उनमें कलाकारों के नाम नहीं अंकित किए गये हैं । जिनके द्वारा वे चित्र रचे गये हैं । परन्तु जिन नरेशों का शासन - काल में यहाँ की चित्रकला का विकास हुआ, उनके कार्य सराहनीय हैं । जो भी हो जैसलमेर की लघु - चित्रण परंपरा मारवाड़ शैली के अन्तर्गत व एक महत्व पूर्ण स्थान रख कर अपने अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाए हुए है ।

§ग§ आशाएँ तथा भविष्य :

मारवाड़ की लघु - चित्र शैलियों को विशद - विवेचना के उपरान्त, प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि इन शैलियों के मूलभूत आदर्शों

की उपयोगिता वर्तमान के सन्दर्भ में और भविष्य के सन्दर्भ में क्या होगी यद्यपि यह कलाना अत्यन्त ही दुरुह है, फिर भी इसकी उपादेयता को नकारा नहीं जा सकता ।

आज से लगभग 400 वर्ष प्राचीन कला - परम्परा जो कि कला के द्वितीय " स्वर्ण युग " के रूप में अवतरित हुयी, पल्लवित एवं पुष्पित हुयी । ऐसी अमूल्य कला - निधि की शैलीगत विशिष्टताओं का मूल्यांकन एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण विषय था । इस लघु - चित्र शैलियों का अवगाहन कराना कला - चिन्तकों का पुनीत धर्म है कि अपने देश, समाज एवं सांस्कृतिक परिवेश में जन्मी, पली, एवं समृद्धिशालिनी हुयी जोधपुर, बीकानेर, नागौर, किशनगढ़ एवं जैसलमेर आदि शैलियों के लघु-चित्रों की संयोजनात्मक व्यवस्था " का वर्तमान एवं भविष्य में आने वाली सन्तति को ज्ञानार्जन का लाभ प्राप्त हो सके ।

भविष्य में भारतीय चित्रकला के क्रमिक विकास के अध्ययन के लिए इन तथ्यों के प्रकाश में आने से एक श्रृंखला और जुड़ जायेगी । आज की आधुनिक चित्रकला के परिप्रेक्ष्य में पंचम अध्याय में वर्णित संयोजन के सिद्धान्तों के आधार पर चित्रांकन करने से चित्रकला का भविष्य और भी उज्ज्वल हो सकेगा और आज हमारी सभ्यता एवं संस्कृति पर जो पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव पड़ रहा है, उसके उद्धार के लिए हमारी इन सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए इनका अध्ययन परमावश्यक है ।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मारवाड़ शैली के लघु- चित्रों की संयोजनात्मक - व्यवस्था का अध्ययन कला - तत्वों ( रेखा, वर्ण, तान, गठन, आकृति एवम् अन्तराल ) एवं कला -सिद्धान्तों

§ अनुपात, संतुलन, विरोध, प्रभाविता, सामंजस्य, लय एवं एकता § के परिप्रेक्ष्य में एक मानक प्रस्तुत करने में समर्थ होगा जो कि शैलीगत विशिष्टता का निर्वहन करती हुयी विगत चतुर्शताब्दी पूर्व की कला का अवगाहन कराने में एक अहम् भूमिका प्रस्तुत करेगी ।

---

57

परिशिष्ट

## मेसकरण द्वारा प्रस्तुत रागों, उनकी रागिनियों एवं राग पुत्रों की सूची

भैरव राग – बंगाली, भैरवी, वैलावली, पुन्याकी, स्नेहकी ॥रागिनी॥
बंगाल, पंचम, मधु, हर्ष, देसाख, ललित, विलावल, माधव ॥पुत्र॥

मालकोंस राग – गुंडाग्री, गंधारी, श्रीहठी, आंध्राकी, धनाश्री ॥रागिनी॥
मारू, मेवाद, खरवली, मिस्तंग, चंद्रास्या, भ्रमर, नंदन
खोखार – ॥पुत्र॥

हिन्डोल राग – तिलांगी, देवगिरी, बसंती, सिंदूरी, अभीरी ॥रागिनी॥
मंगल, चंद्रविंभ, सुमंग, आनंद, विभास, वर्धन, विनोद, बसंत ॥पुत्र॥

दीपक राग – कामोदिनी, पटमंजरी, टोडी, गूजरी, कहेली ॥रागिनी॥
कमल, कुसुम, राम, कुंतल, कलिंग, बाहुल, चम्पक, हेंमल ॥पुत्र॥

श्री राग – भरैती, कर्णाटिका, सवेरी, गौड़ी, राम किरी, सैंधवी ॥रागिनी॥
सैधव, मालव गौड़ा, गंभीर, गुणसागर, विगाड़, कल्याण,
कुंभ, अगाध – ॥पुत्र॥

मेघ राग – मल्हारी, सोरठी, सुहावी, असावरी, कोंकणी ॥रागिनी॥
नट, कनड़, सारंग, केदार, गौण मल्हार, गुण, जलंधर,
शंकर – ॥पुत्र॥

## हनुमान द्वारा प्रस्तुत राग रागिनियों का वर्गीकरण

| क्र.स. | राग | | रागिनियाँ | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | भैरव | मध्यमादी या मधु माधवी | भैरवी | बंगाली | भैरती | सैन्धवी |
| 2. | मालकौंस | टोडी | खम्बावती | गौरी | गुणकरी | ककुभा |
| 3. | हिन्डोल | विलावल | रामकिरी | देसख | पटमंजरो | ललिता |
| 4. | दीपक | केदारी | कनंद | देसी | कामोदी | नट |
| 5. | श्री | बसंत | मारू या मालवी | माल श्री | धंसिखा | आसावरी |
| 6. | मेघ | मल्हार | देसकरी | भूपाली | गुजरी | टंक |

उपरोक्त तालिका के आधार पर उत्तर भारत में अनेक रागमाला चित्रावलियों का निर्माण हुआ है, किन्तु ग्रंथ में वर्णित राग-रागिनियों के लक्षणों में अन्य ग्रंथों से कई स्थानों पर भेद हैं। किन्तु फिर भी यह ग्रंथ उत्तर और दक्षिण भारत में सामान्य रूप से प्रचलित रहा है।

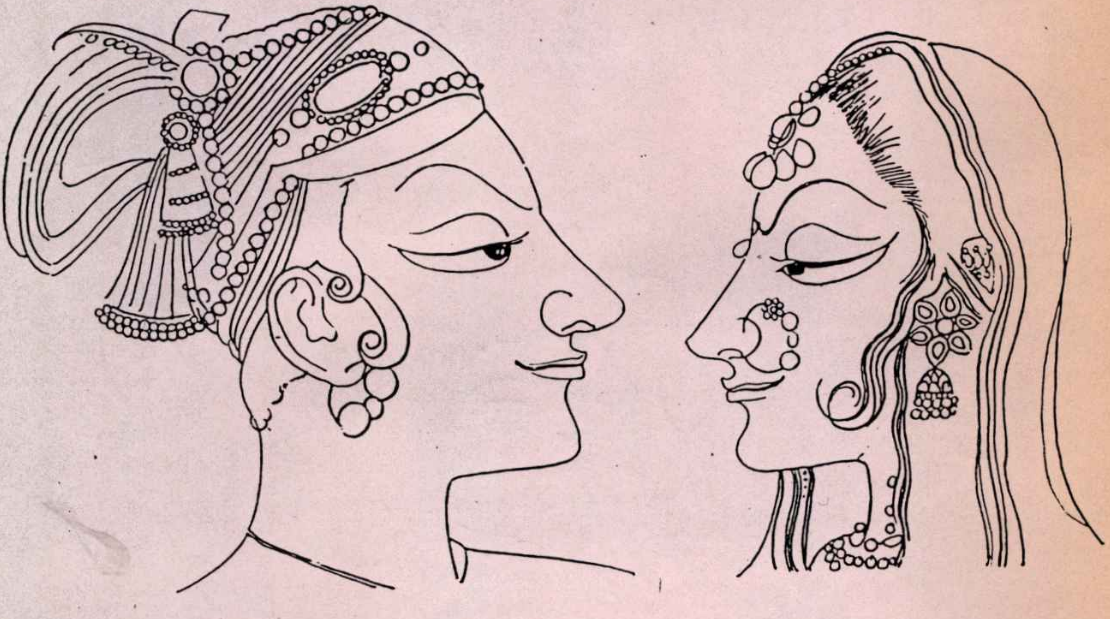

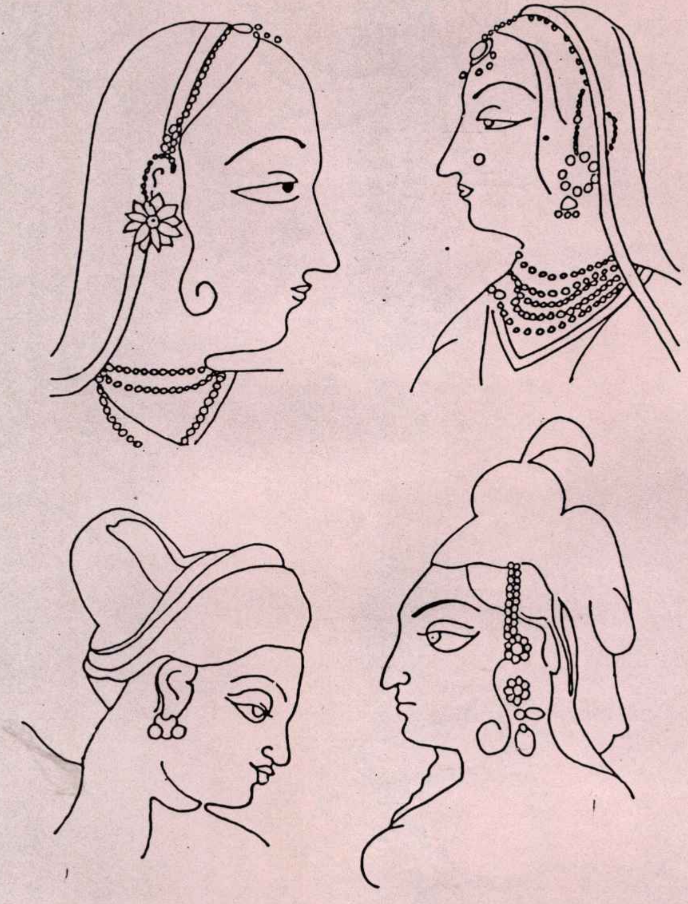

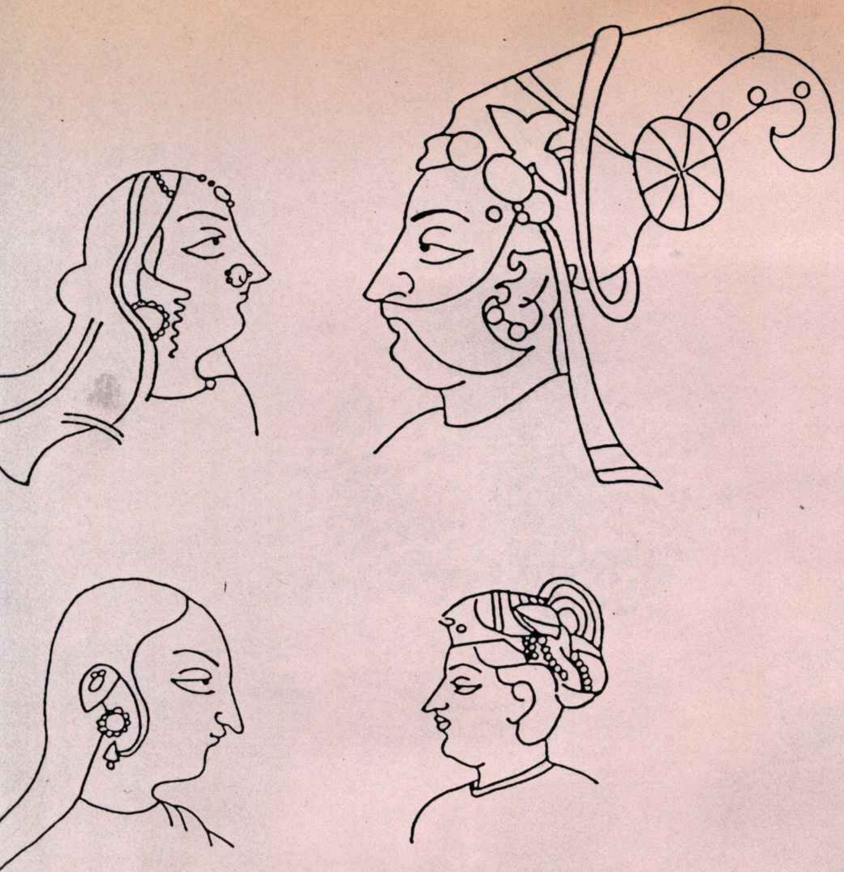

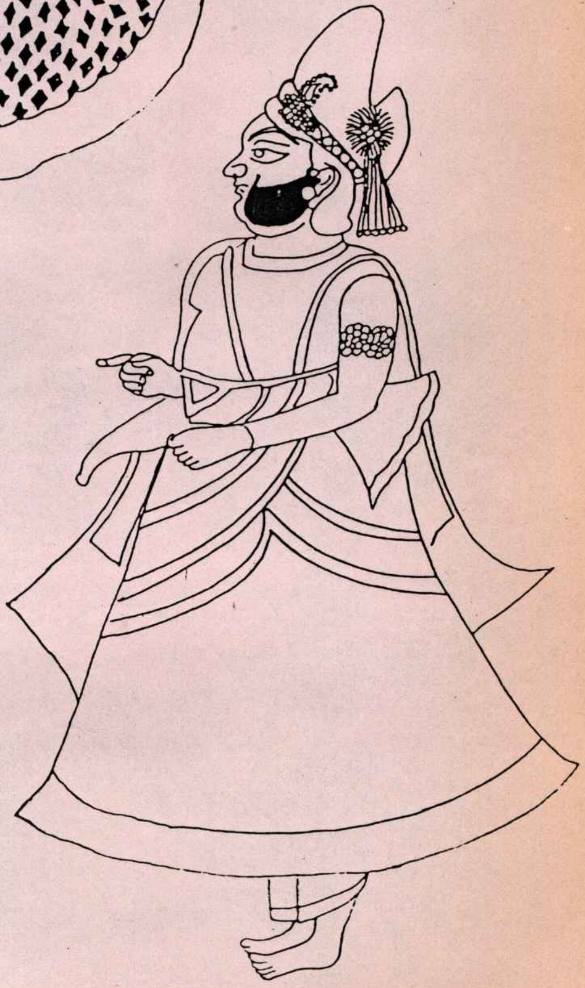

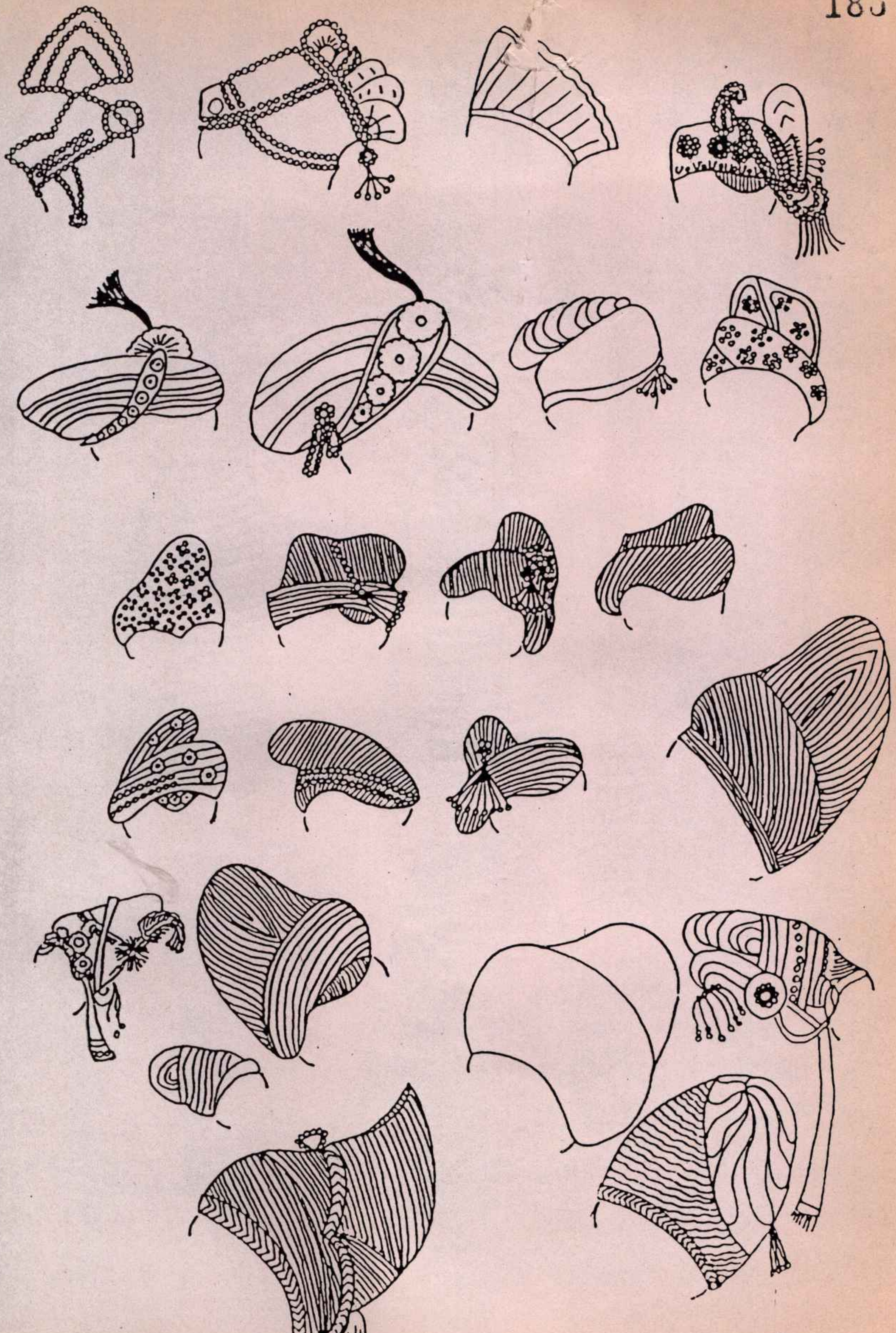

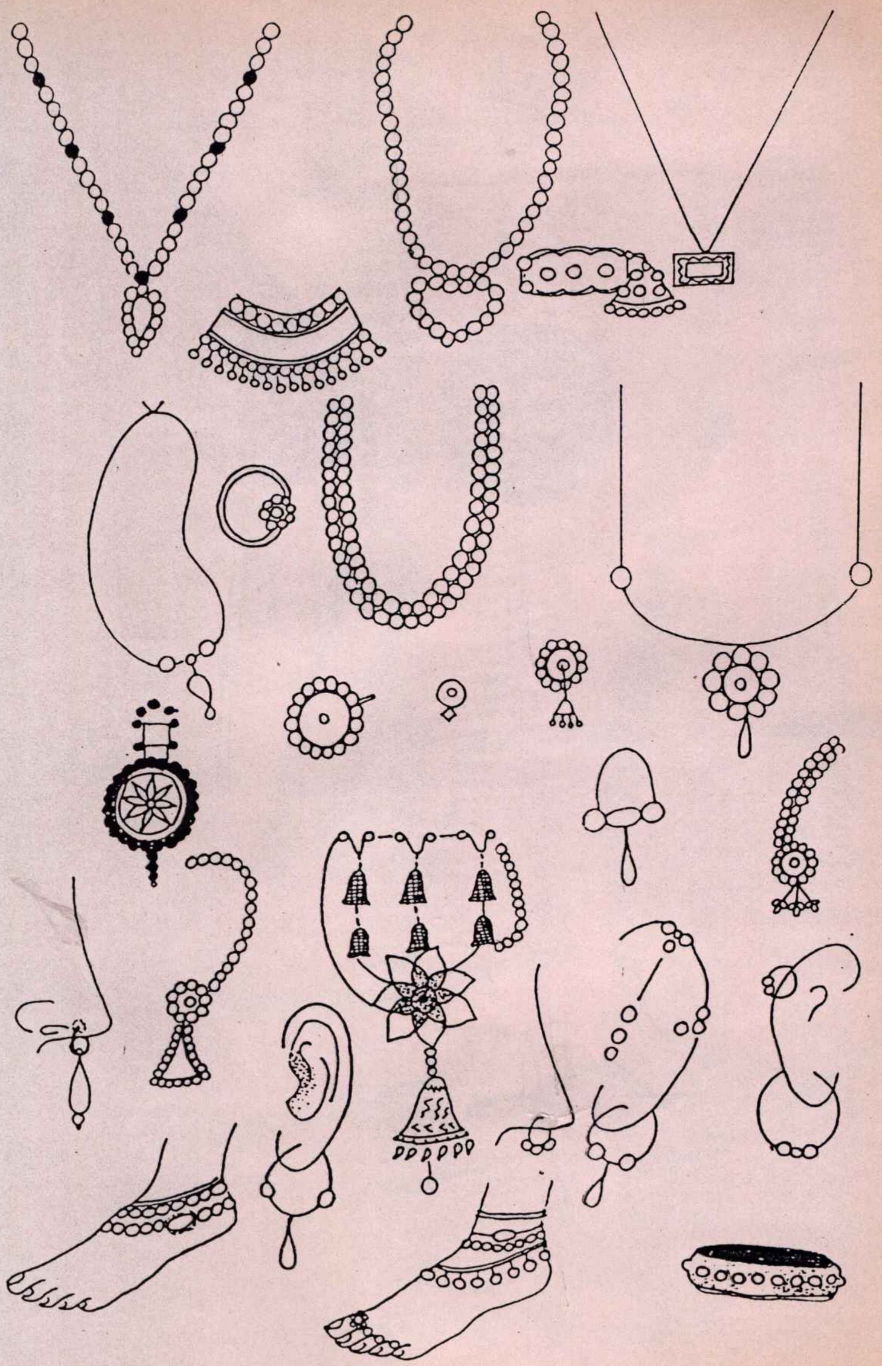

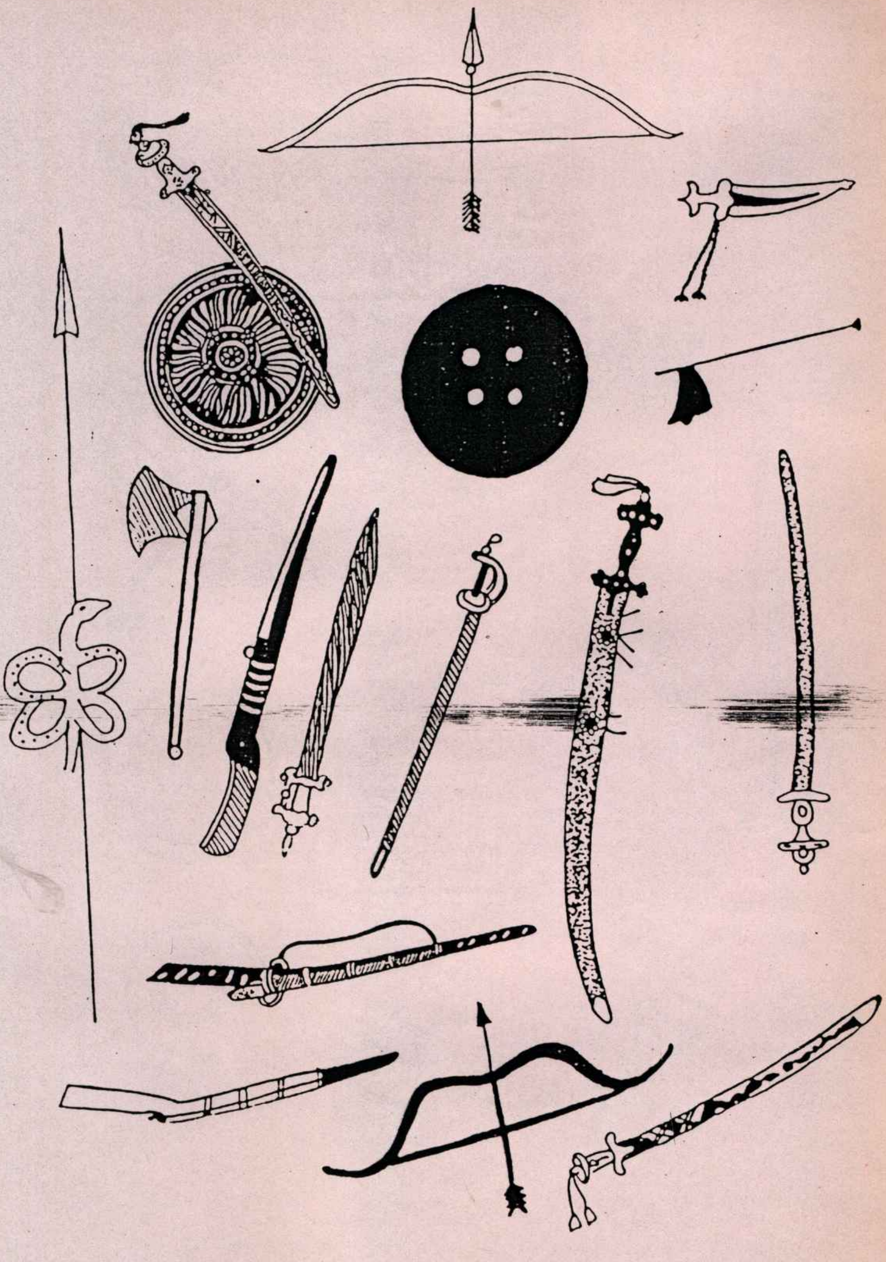

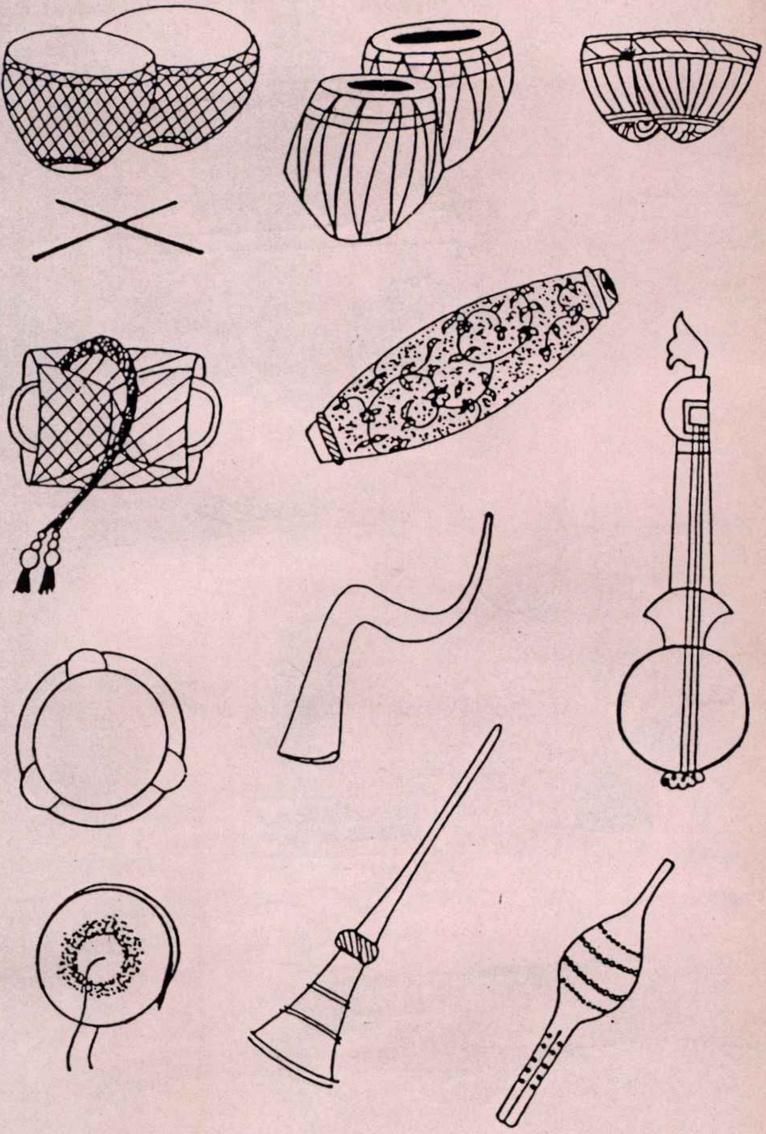

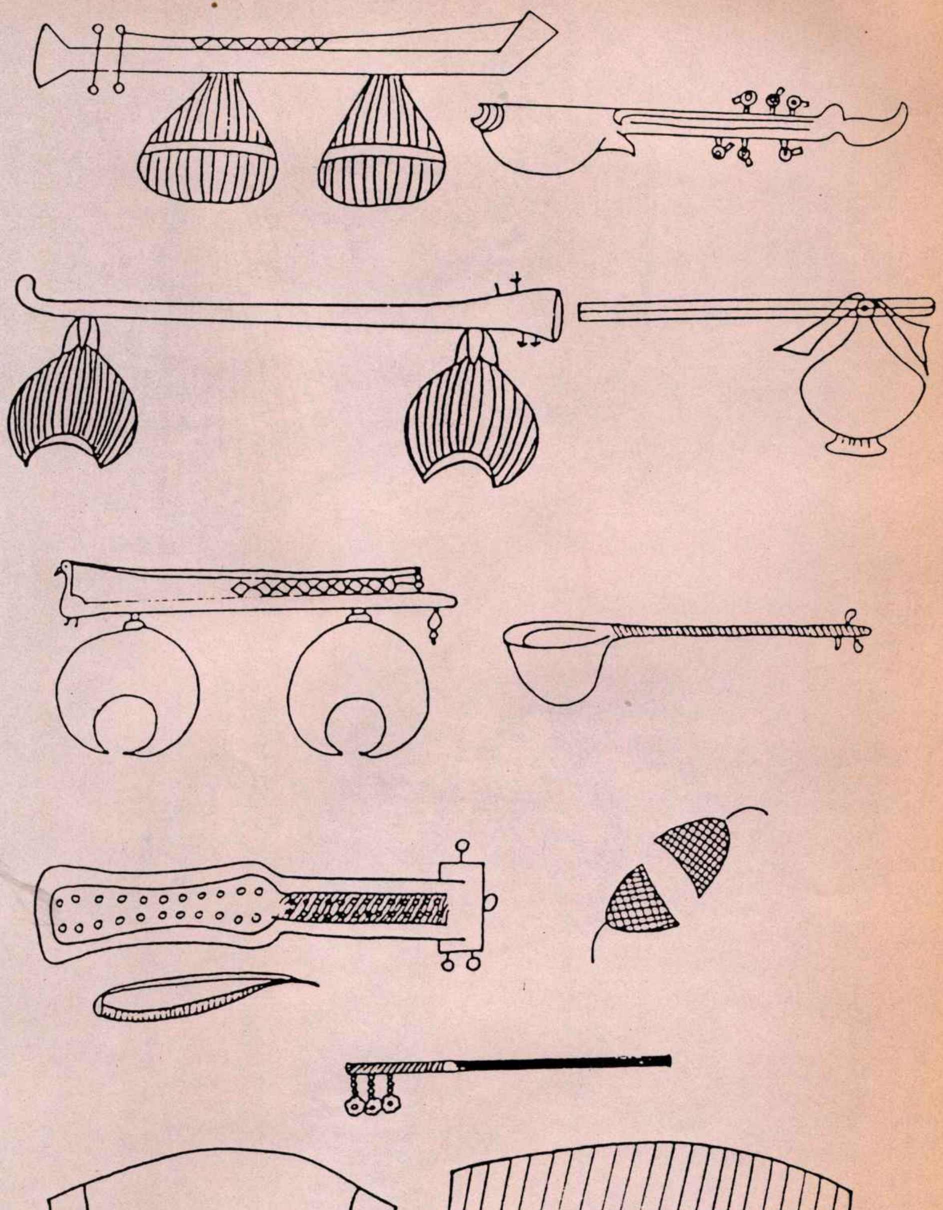

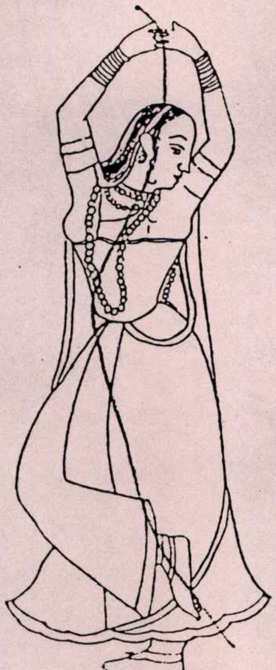

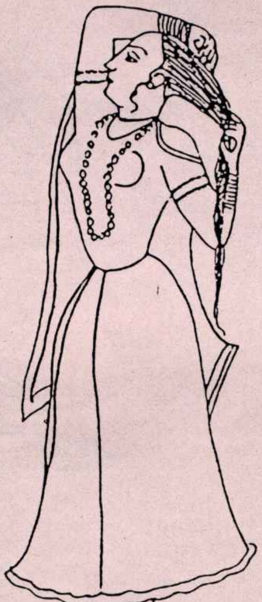

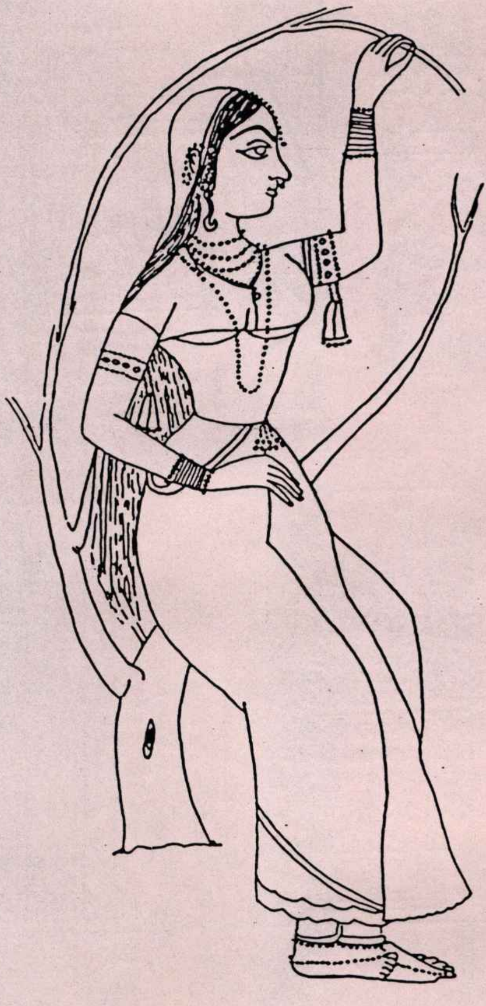

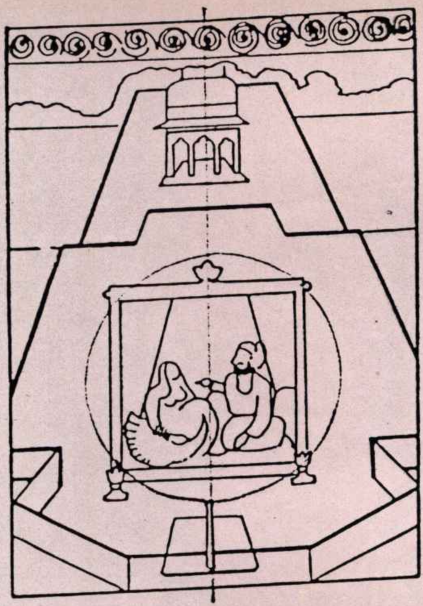

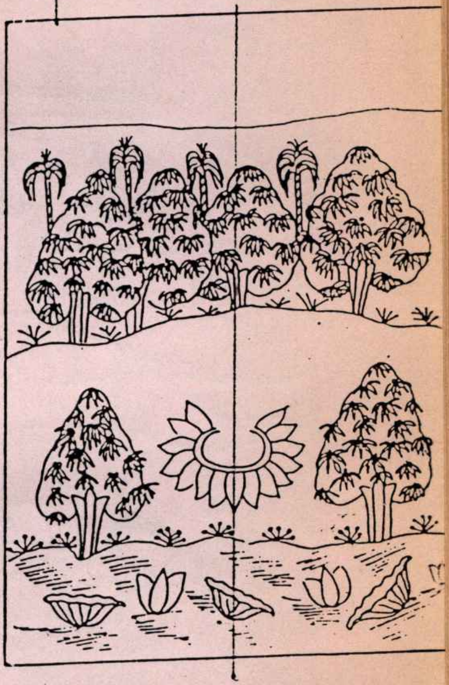

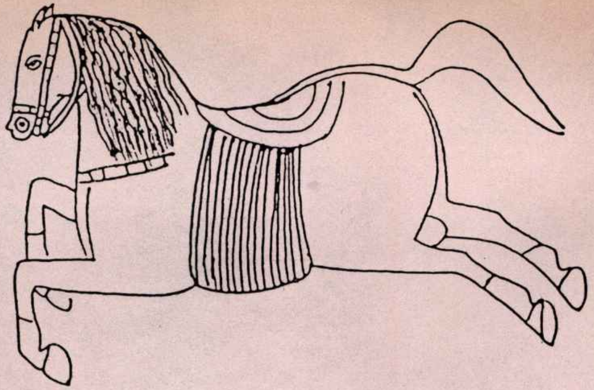

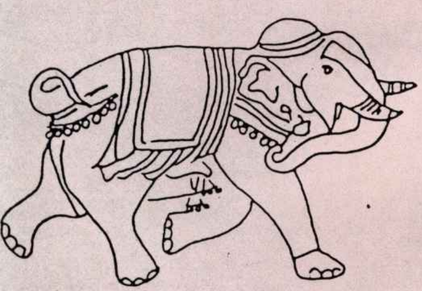

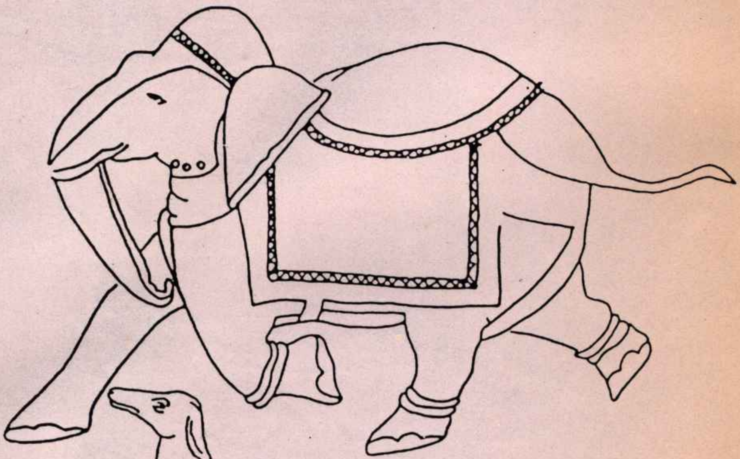

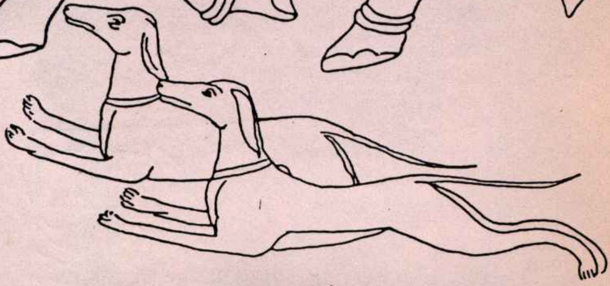

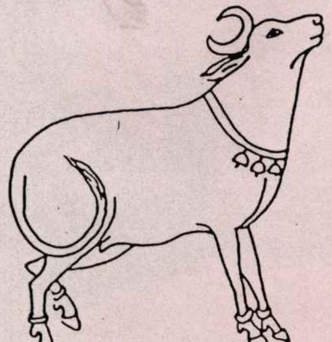

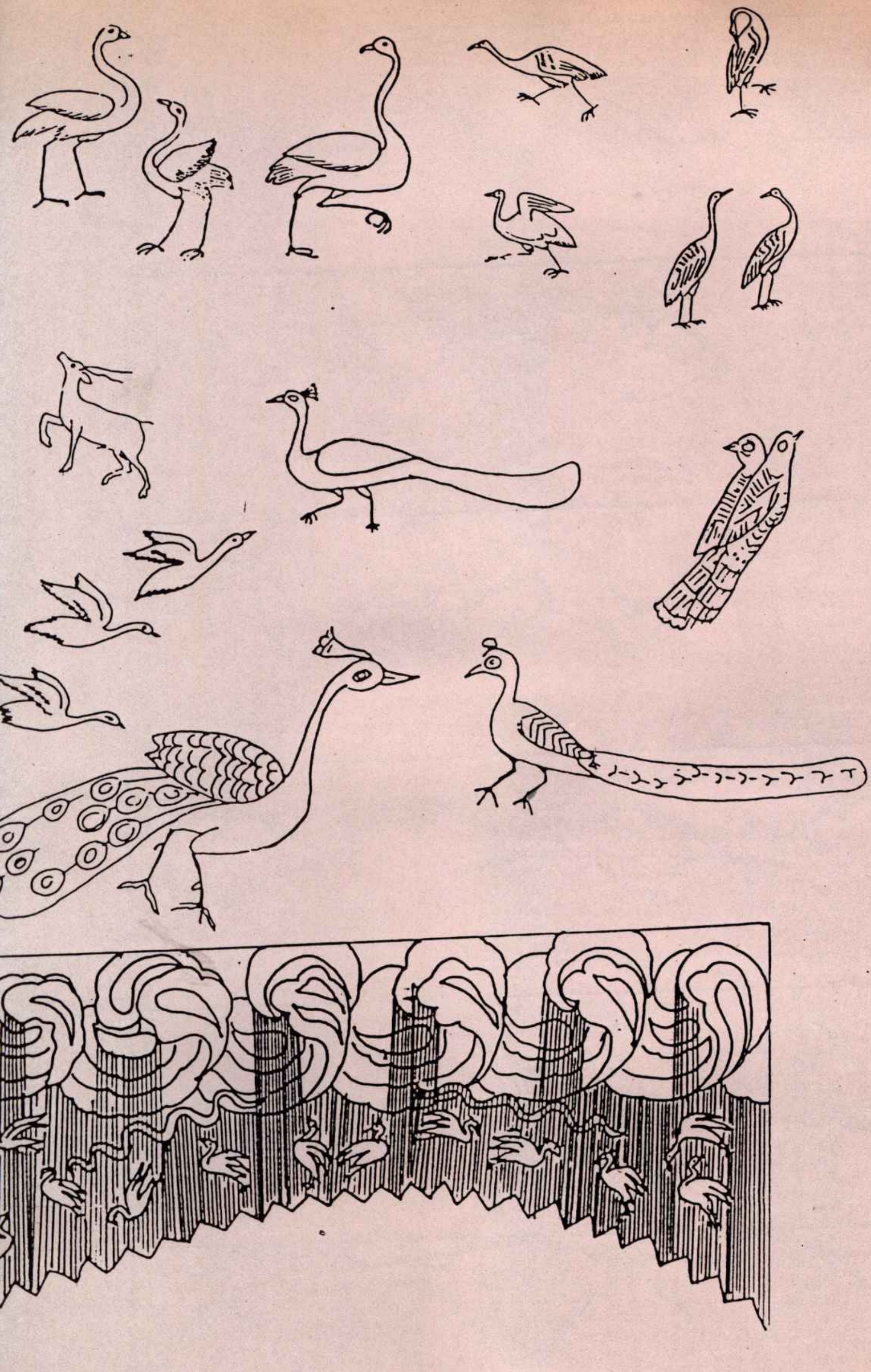

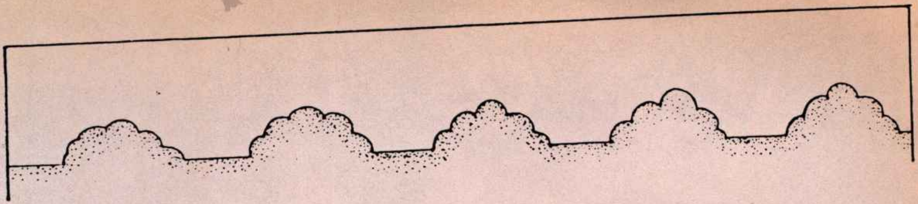

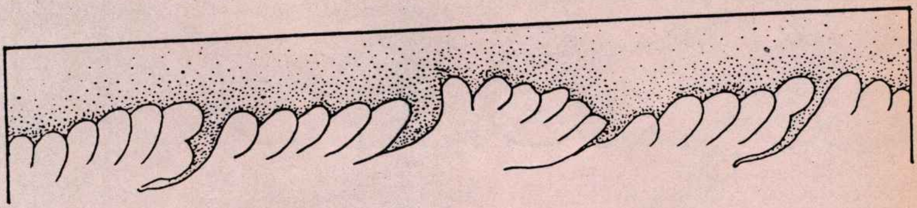

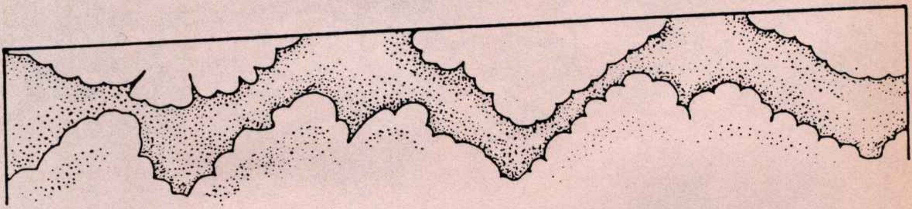

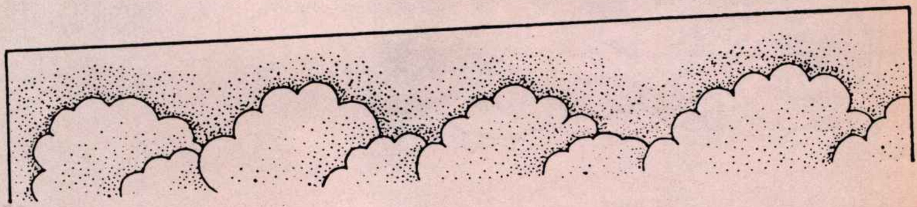

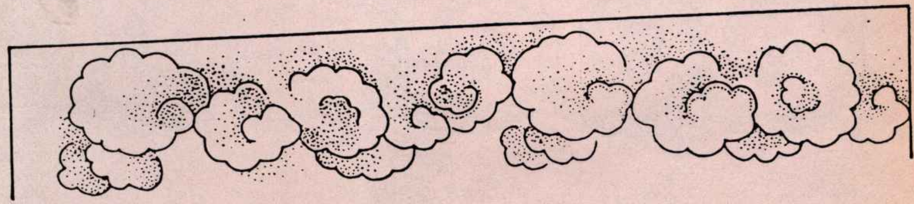

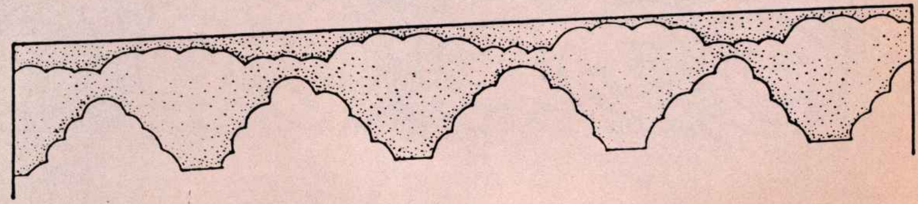

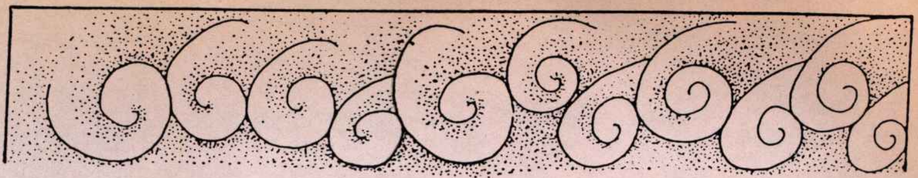

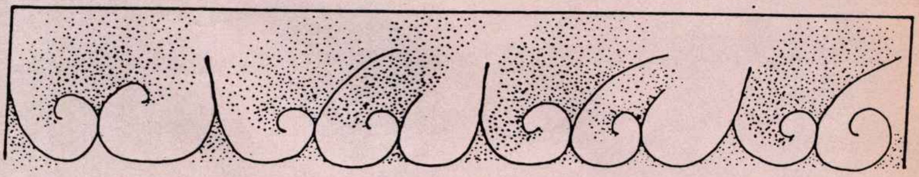

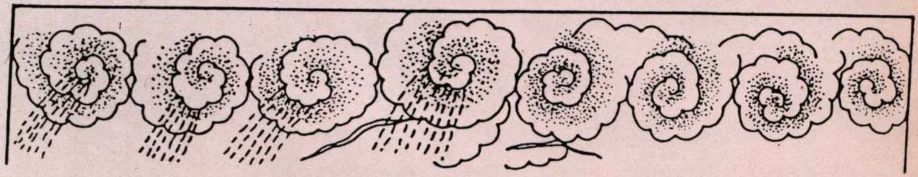

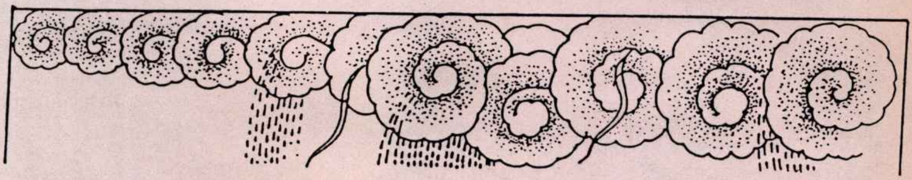

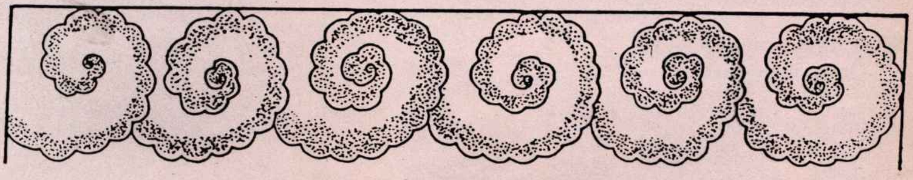

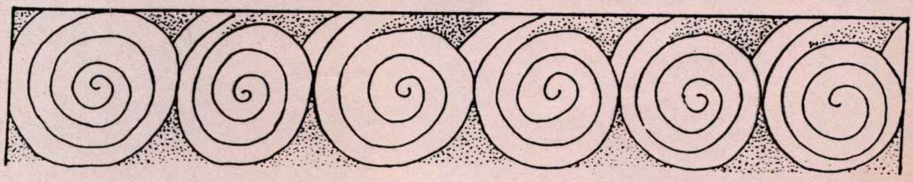

सन्दर्भ
ग्रन्थ
सूची

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


| क्र0 | | |
|---|---|---|
| 1. | डा0 अवध उपाध्याय | चित्रकला, हिन्दी सा0 सम्मेलन, प्रयाग 2005 वि0 |
| 2. | अशोक मित्र | चार चित्रकार प्र0 सं0, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1975 ई0 |
| 3. | अवनीन्द्र नाथ ठाकुर | भारत शिल्प की षडंग, नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद 1950 ई0 |
| 4. | अविनाश बहादुर वर्मा | भारतीय चित्रकला का इतिहास, प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली, 1973 ई0 |
| 5. | असित कुमार हाल्दर | ललित कला की धारा, प्र0 सं0 चन्द्र लोक प्रकाशन 1960 भारतीय चित्रकला [इतिहास] 1959 चन्द्र लोक प्रकाशन इलाहाबाद । |
| 6. | आस्कर वाइल्ड | सौन्दर्य की रेखाएँ, रामस्वरूप दुबे [अनुवादक] दिल्ली, आत्मा राम एण्ड संस, प्र0 सं0 1957 |
| 7. | इरविन एडमेन | ललित कलाएँ और मनुष्य [अनु0] डा0 विश्वनाथ मिश्र, दिल्ली, 1966 |
| 8. | कालिंग उड़, आर0जी0 | कला के सिद्धान्त [अनु0] पालीवाल, राजस्थान ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, राज0 |

9· कृष्ण दत्त बाजपेयी — भारतीय कला का इतिहास, पु0 सं0 हिन्दी समिति लखनऊ, 1972, भारतीय वास्तु कला का इतिहास, पु0 सं0 हिन्दी समिति लखनऊ, 1975

10· डा0 गिरिराज किशोर — कला और कलम, अशोक प्रकाशन मंदिर 68 सराय दुबे अलीगढ़ {1970} पु0सं0, कला – समीक्षा, देव ऋषि प्रकाशन, {तिथिरहित} पु0 सं0 {अनुमानत – 1974} अलीगढ़ {

11· डा0 चिरंजी लाल झा — भारतीय चित्रकला का विकास द्वि सं0 1989 लक्ष्मी कला कुटीर, नयागंज, गाजियाबाद {उ0प्र0}

12· डा0 जगदीश गुप्त — प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1967 पु0 सं0

13· जय सिंह नीरज — राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

14· नन्दलाल बोस — रूपावलि, कलकत्ता विश्वभारती ग्रन्थालय, 19@, भाग 1,2,3, शिल्प कथा, साहित्य भवन, इलाहाबाद, द्वि सं0 1952

15· नाना चमन लाल मेहता — भारतीय चित्रकला, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1933

16· डा० प्रसन्न कुमार भट्टाचार्य भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता
17· पूर्णचन्द्र भट्टाचार्य कलाबोध ﴾ तिथिरहित﴿
18· प्रेमचन्द्र गोस्वामी कला, सन्दर्भ और प्रकृति 1975
19· विन्ध्येश्वरी प्रसाद सिंह भारतीय कला को बिहार की देन, पटना 1958

20· बद्री नाथ मालवीय विष्णु धर्मोत्तर पुराण में चित्रकला
21· वाचस्पति गैरोला भारतीय चित्रकला प्र० सं० 1963 मित्र प्रकाशन प्र० सं० इलाहाबाद, भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास, प्र०सं०

भारतीय संस्कृति और कला " 1950 - उ० प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

22· वासुदेव शरण अग्रवाल कला और संस्कृति, इलाहाबाद, 1952
23· अग भारतीय कला ﴾ प्रारम्भिक युग से तीसरी शती तक﴿ पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी -5·

23· भगवत शरण उपाध्याय भारतीय चित्रकला की कहानी, 1955 भारतीय कला और संस्कृति की भूमिका, दिल्ली, 1965 ई०

24· भीष्मपाद, एच० कलात्मक राजस्थान, 1971
25· डा० मोती चन्द्र दक्खिनी कलम, बनारस कला - भवन ﴾ तिथि रहित ﴿

26• एम0 डी0 खरे — बाघ गुफाएँ – मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल ।

27• मोहन लाल महतो, वियोगी — कला का विवेचन, 1963 वि0

28• मनोहर लाल — कला एक अध्ययन, चतुर्थ संस्करण, इलाहाबाद रामनारायण लाल, 1955

29• माणिक चन्द — कला का मूल्य 1961

30• राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह — महाराज संसार चन्द्र, 1959, दिल्ली आत्मा एण्ड संस

31• रामगोपाल विजयवर्गीय — राजस्थानी चित्रकला, 1953, जयपुर विजय वर्गीय कला मण्डप

32• डा0 राधाकमल मुकर्जी — भारत की संस्कृति और कला (अनु0) दिल्ली 1959, भारतीय कला का विकास (अनु0) इलाहाबाद, 1964

33• डा0 रघुनन्दनप्रसाद तिवारी — भारतीय चित्रकला और उसके मूल – तत्व 1973 प्र0 सं0 भारतीय पब्लिशिंग हाउस सुनारपुरा, वाराणसी

34• राधाकान्त वर्मा — भारतीय प्रागैतिहास, इलाहाबाद, 1970

35• रामचन्द्र शुक्ल — कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ, 1958 लखनऊ सूचना विभाग

चित्रकला का दर्शन 1964, करोना आर्ट, पब्लिशर्स, मेरठ

| | | |
|---|---|---|
| | | चित्रकला का रसास्वादन, हिन्दी - प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-1· |
| 36· | रामनारायण टंडन [आर०एन० टंडन] | भारतीय चित्रकला की रूपरेखा, भारत भारती, मेरठ |
| 37· | रमेश कुन्तल मेघ | कला शास्त्र और मध्यकालीन भाषिकी जातियाँ, 1975 |
| 38· | राय आनन्द कृष्ण दास | अजन्ता के चित्रकूट, प्र० सं० 1958 राजकमल प्रकाशन देहली |
| 39· | राय कृष्ण दास | भारत की चित्रकला, 1939, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी |
| 40· | रणवीर सक्सेना | कला और कलाकार, रेखा प्रकाशन कार्यालय, देहरादून |
| | | कला सौन्दर्य और जीवन 1967 रेखा प्रकाशन कार्यालय देहरादून |
| 41· | लोकेश चन्द्र शर्मा | भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास, 1974· |
| 42· | शची रानी गुर्टू | कला दर्शन, साहिनी प्रकाशन दिल्ली 1953, कला के प्रणेता, इण्डिया पब्लिशिंग हाउस करौल नगर -नई दिल्ली - 5· |
| 43· | डा० सत्येन्द्र | कला, कल्पना और साहित्य, आगरा, द्वि० सं० |

| | | |
|---|---|---|
| 44. | सीताराम के० ए० | बृहद भारतीय चित्रकला में रामायण, चतुर्थ सं० लाहौर, मोती लाल बनारसी दास, 1690 वि० |
| 45. | हंस कुमार तिवारी | कला मानसरोवर प्रकाशन, गया |
| 46. | हजारी प्रसाद द्विवेदी | प्राचीन भारत के कला विनोद 1950 ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई |
| 47. | हरिदत्त दुबे | कला साहित्य शास्त्र, 1961 |
| 48. | ए० के० कुमार स्वामी | राजस्थानी चित्रकला |
| 49. | डा० आर० ए० अग्रवाल | मारवाड़ म्यूरल, कला विलास |
| 50. | डा० रामकुमार विश्वकर्मा | भारतीय चित्रांकन ‖ भारतीय चित्रकला, एक अध्ययन ऐतिहासिक अध्ययन ‖ किशन लाल भार्गव एण्ड संस कटरा, इलाहाबाद । |
| 51. | प्रो० सी० एस० मेहता | राजस्थानी चित्रों में अन्तराल - व्यवस्था, शोध प्रबन्ध - अप्रकाशित 1984 |
| 52. | डा० शकुंदेव श्रोत्रिय | जैसलमेर का चित्र वैभव शोध प्रबन्ध - अप्रकाशित, 1983 |
| 53. | केशव | कवि प्रिया |
| 54. | कालिदास | ऋतु संहार |

| | | |
|---|---|---|
| 55. | रेउ, विश्वेश्वर नाथ | राष्ट्र कूटों का इतिहास, जोधपुर |
| 56. | " | मारवाड़ का इतिहास भाग-1, 2 जोधपुर । |
| 57. | शास्त्री चक्रधर | भारतीय प्रतीक विद्या एवं कला |
| 58. | सकारिया बी0 पी0 | मुहन्ता नैनसी री ख्यात, भाग चार जोधपुर । |
| 59. | एस0 बी0 एल0 सक्सेना | कला सिद्धान्त एवं परम्परा |
| 60. | अग्रवाल एण्ड शर्मा | रूपप्रद कला के मूलाधार |
| 61. | गोयल एण्ड अग्रवाल | चित्र संयोजना |
| 62. | रामनाथ | मध्यकालीन कलाएँ और उनका विकास |
| 63. | पी0एल0एम0 विद्यालंकार | हमारा राजस्थान |
| 64. | कुमारी राशिमी मित्तल | जोधपुर शैली का समीक्षात्मक अध्ययन शोध प्रबन्ध [अप्रकाशित] |


---

## पत्र - पत्रिकाएँ

| | | |
|---|---|---|
| 1. | कला त्रैमासिक | राज्य ललित कला अकादमी, लखनऊ, उ0 प्र0 |
| 2. | आकृति | राजस्थान ललित कला अकादमी, रवीन्द्र मंच जयपुर । |
| 3. | वार्षिकी | " |
| 4. | सृजन | " |
| 5. | कलानिधि | त्रैमासिक भारत कला भवन, वाराणसी |
| 6. | विश्वभारती पत्रिका | शान्ति निकेतन |
| 7. | रसवा | त्रैमासिक श्री मधुकर वारासैनी कालेज, अलीगढ़ |
| 8. | लय | सत्यदेव राजहंस अभियान प्रकाशन सांची |
| 9. | धर्मयुग | टाइम्स आफ इंडिया, दिल्ली |
| 10. | मरु भारती | |
| 11. | वैचारिकी | |
| 12. | राजस्थान भारती | |
| 13. | कला समकालीन | |
| 14. | सम्मेलन पत्रिका | कला अंक - 1972 |

---

## शास्त्रीय ग्रन्थ


| | | |
|---|---|---|
| 1. | समरांगण सूत्रधार | भोज देव गायकवाड़, ओरिएन्टल सिरीज, बड़ौदा 1924-25 |
| 2. | रूप मंडन | मंडन कलकत्ता संस्कृत ग्रन्थ माला 12 1936 |
| 3. | अपराजित पृच्छा | भुवन देव गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज बड़ौदा 1950 |
| 4. | शिल्पारत्न | श्री कुमार त्रिवेन्द्रम, संस्कृत सिरीज, 1928-29 |
| 5. | वाल्मीकि रामायण | भाग एक, गीता प्रेस, गोरखपुर {अनुवादक जानकी दास} |
| 6. | विष्णु धर्मोत्तर पुराण | भाग तीन, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज बड़ौदा 130 {1958} {अनुवादक -डा0 प्रियबला शाह} |
| 7. | काम सूत्र | वात्स्यायन बनारस, 1929 {अनुवादक शास्त्री जी0 डी0} |
| 8. | नाट्य शास्त्र | अनुवादक - शर्मा बटुकनाथ |


---

अंग्रेजी पुस्तकें :


| | | |
|---|---|---|
| 1. | आर्चर, डब्लू.जी. | सेन्ट्रल इण्डियन पेन्टिंग, लन्दन, फेबर एण्ड फेबर; 1958 |
| 2. | चन्द्र, मोती | स्टडीज इन अर्ली इण्डियन पेन्टिंग, 1970, रु0 200/- नवरंग पब्लि. |
| 3. | चन्द्र, पी0 | बूँदी पेन्टिंग, न्यू देलही अकादमी, न्यू देलही. |
| 4. | कुमार स्वामी. ए0के0 | हिस्ट्री आफ इण्डियन एंड इण्डोनेशियन आर्ट, लन्दन, एडवर्ड गोडस्टन, 1927 |
| 5. | गांगुली औ0 सी0 | इण्डियन आर्ट एण्ड हेरीटेज, कलकत्ता, आक्सफोर्ड बुक एण्ड स्टेशनर कम्पनी, 1957 |
| 6. | हैवेल ई0 बी0 | (ए) हैण्डबुक आफ इण्डियन आर्ट, लन्दन, जान मुरे, 1920 |
| 7. | फिलिप्स एस, रासन | इण्डियन पेन्टिंग युनिवर्सल बुक कम्पनी, इलाहाबाद, रु0 16-00; तारा पोरवाल पब्लि. |
| 8. | मेहता, एन0सी0 | स्टडीज इन इण्डियन पेन्टिंग: ए सर्वे आफ सम न्यू मेटीरियल रेन्जिंग फ्राम द कमेन्समेन्ट आफ दि 7 थ सेन्चुरी टु 1870 ए0 डी0, बोम्बे, तारा पोरवाल, 1986 |

9· मोतीचन्द्र — दक्खिनी कलम, बीजापुर कला निधि, 1·, नं0 1, 1948, पेज 25-42

10· सिवराममूर्ति एस· — दि आर्ट आफ इण्डिया·
स्मिथ, विन्सेंट, ए0 — [ए] हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट्स इन इण्डिया एण्ड सीलोन, आक्सफोर्ड, क्लेरेन्डन प्रेस; 1930

## इण्डियन जर्नल्स :

1· जर्नल आफ दि एसिआट सोसायटी ओर बेंगाल

2· मार्ग पब्लिकेशन आर्मी बिल्डिंग फोर्ट बाम्बे

3· माडर्न रिव्यू कलकत्ता

4· रूप - लाल्हा, दि आल इण्डिया फाइन आर्ट्स सोसायटी राज मार्ग, न्यू देलही [ इण्डिया]

5· इण्डियन आर्ट एण्ड लेटर्स, दि इण्डिया सोसायटी 3 विक्टोरिया स्ट्रीट, लन्दन एस0 डब्लू0 आई0

6· दि जर्नल आफ दि इण्डियन सोसायटी आफ ओरिएण्टल आर्ट, कलकत्ता,

7· दि आफ इण्डिया एनुअल

---

# चित्र - सूची

| क्रमांक | चित्र विषय | शैली/प्राप्ति स्थान | कालावधि |
|---|---|---|---|
| 1. | कृष्ण की ताम्बूल सेवा | किशनगढ़ | 1750 ई० |
| 2. | पक्षियों का शिकार करती रानियाँ | जोधपुर | 1684 ई० |
| 3. | हिरन के साथ नायिका | बीकानेर | 17 वीं शती |
| 4. | हाथियों की लड़ाई | नागौर | |
| 5. | हनुमान | जैसलमेर | |
| 6. | राधा कृष्ण | जैसलमेर, संग्रह मानकलाल सोनी | |
| 7. | बारहमासा | जैसलमेर " | |
| 8. | मूलराज द्वितीय | जैसलमेर, नथमल दीवान संग्रह | |
| 9. | नर-नारी अश्व | जैसलमेर देवी लाल संग्रह | |
| 10. | बारहमासा | जैसलमेर नथमल दीवान संग्रह | |
| 11. | रागिनी कामोद | जैसलमेर, जैसलमेरग्रंथ भंडार | |
| 12. | रनजीत सिंह | जैसलमेर, व्यक्ति चित्र, लघु चित्र | |
| 13. | हिंडोला | जैसलमेर, नथमल दीवान संग्रह | |
| 14. | वार्ता चित्र (लघु चित्र) | जैसलमेर " | |
| 15. | राम हनुमान | " ~~जैसलमेर ग्रंथ भंडार~~ " | |
| 16. | पार्श्व नाथ | जैसलमेर, जैसलमेर ग्रन्थ भंडार | |
| 17. | शिकार | जैसलमेर, नथमल दीवान संग्रह | |
| 18. | विप्र-भाव-सूर सागर | मारवाड़ | 17 वीं शती |
| 19. | बसंत रागिनी | मेवाड़ | 18 वीं " |
| 20. | ग्रामीण दृश्य | राजस्थानी | " |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 21. | कृष्ण द्वारा केशी-वध | राजस्थानी | 1680 ई0 |
| 22. | कालिय नाग दमन | राजस्थानी [नाथद्वारा] | |
| 23. | भैरवी रागिनी [रागमाला] | मारवाड़ [ पाली], कु.संग्राम सिंह संग्रह | 1623 ई0 |
| 24. | हिन्दोला राग | " | " |
| 25. | गोड कली रागिनी | " | " |
| 26. | जंगली सुअर का शिकार | मारवाड़ [फूल महल ] | " |
| 27. | रागिनी कमोदनी | जोधपुर | 1623 ई0 |
| 28. | गोपियाँ कृष्ण से प्रार्थना करती हुयी | " | " |
| 29. | नारी परियाँ | नागौर [भित्ति-ख्वामहल] | |
| 30. | दान लीला | बूँदी [रसिक प्रिया] | 1700 ई0 |
| 31. | एक प्रसंग [रसिक प्रिया] | बूँदी शैली | 1700 ई0 |
| 32. | प्रेमिका से मिलने जाते हुए नायक | " | 1780 ई0 |
| 33. | प्रणय दृश्य [केलि] | " | 1782 ई0 |
| 34. | श्रीनाथ जी के मन्दिर जाती गोपियाँ | किशनगढ़ | 1820 ई0 |
| 35. | बाँसुरी में मग्न श्री कृष्ण | जयपुर शैली [आर्कियालाजी विभाग, नई दिल्ली] | 18 वीं शती |
| 36. | जहाँगीर की ताजपोशी का जुलूस | मुगल शैली | 1605 ई0 |
| 37. | शिकार करती राजपूत नारियाँ | कोटा शैली | 17वी शती |
| 38. | घरेलू जीवन | गुलेर शैली | 1750 ई0 |
| 39. | कृष्ण तथा गोपियों के साथ जंगल में भोजन करना | काँगड़ा शैली | |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 40· | महाराजा आशीर्वाद लेते हुए | जोधपुर शैली | |
| 41· | राम -राज्याभिषेक | जोधपुर [तीजा माँजी मंदिर] | |
| 42· | वर्षा से बचाव | कांगड़ा शैली | 19 वीं |
| 43· | दीपावली | किशनगढ़ | 1742 ई0 |
| 44· | प्रेम की नौका | " | 1738-40ई0 |
| 45· | राजा का बाज पक्षी द्वारा शिकार करना | बीकानेर | 18 वीं |
| 46· | पागल हाथी | उदयपुर [बारहठ हवेली] | 1850 ई0 |
| 47· | साँझी लीला | किशनगढ़ | 1735 ई0 |
| 48· | राधा कृष्ण का श्रृंगार | " | 1755 ई0 |
| 49· | गोपियों के साथ नृत्य | किशनगढ़ | 1735 ई0 |
| 50· | रागिनी ककुभ | राजस्थानी [कोटा] | 1770ई0 |
| 51· | हुक्का पान | राजस्थानी [बूंदी] | " |
| 52· | मध्य अभिसारिका | राजस्थानी [कोटा] | 1760 ई0 |
| 53· | सचित्र रागमाला का एक पृष्ठ | मुगल शैली | 1625 ई0 |
| 54· | विपलब्धा नायिका | पहाड़ी शैली [गढ़वाल] | 18वीं शती का अंत |
| 55· | नर्तकी | जयपुर शैली | 18वीं शती का मध्य |
| 56· | राग बसंत | राजस्थानी [मालवा] | 1660 ई0 |
| 57· | लक्ष्मी नारायण | कोटा शैली | 1760 ई0 |
| 58· | हाथी को वश में लाना | कोटा शैली | 1725 ई0 |
| 59· | सचित्र अमरु शतक का एक पृष्ठ | राजस्थानी [मालवा] | 1680 ई0 |
| 60· | गौरी रागिनी | मालवा शैली | 1700 ई0 |
| 61· | राग बसंत | बूंदी शैली | 1690 ई0 |
| 62· | ढोलामारु | जोधपुर शैली | 18वीं शती |
| 63· | बनी - ठनी | किशनगढ़ | 1740-50 |

# चित्रावली

-1

-2

-3

-4

-5

-6

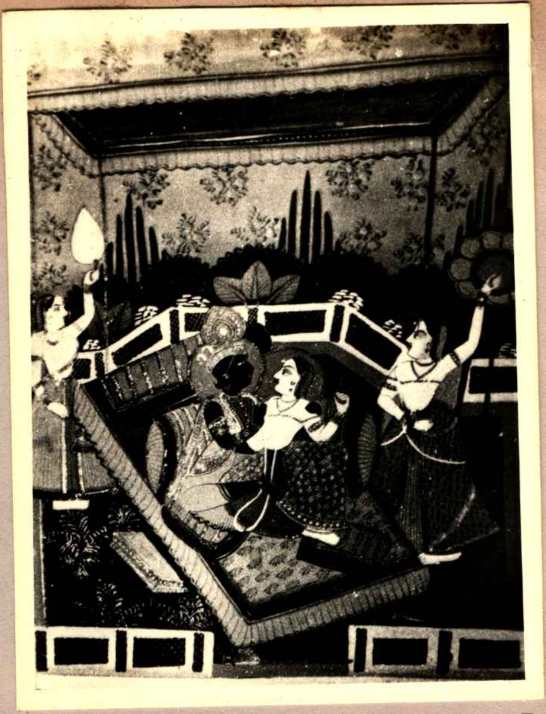

-7

-8

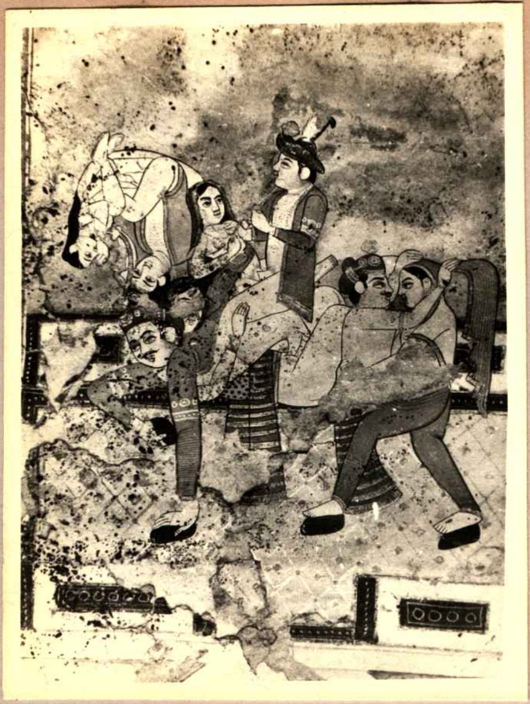

-9

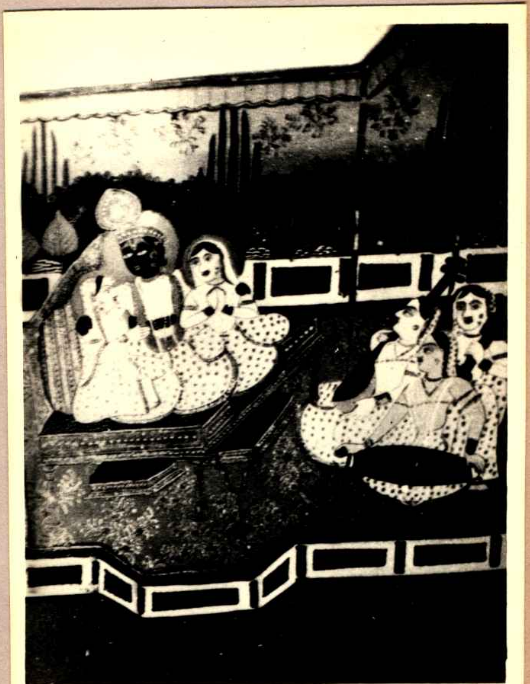

-10

- 11

12

-13

-14

-15

-16

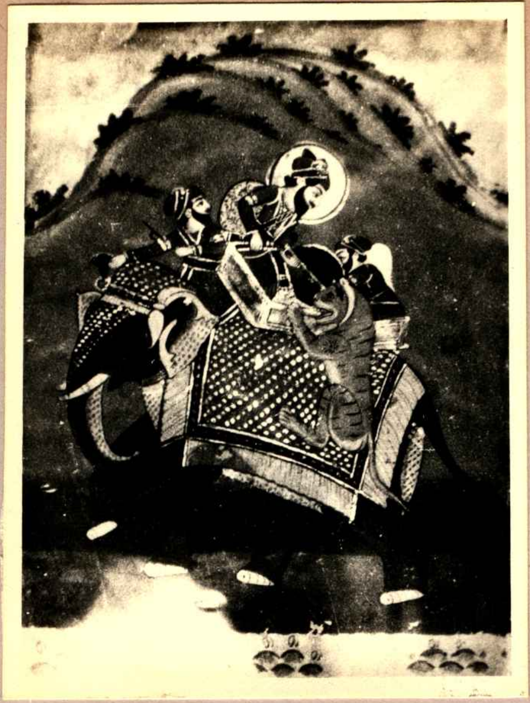

-17

- 18

-19

20

– 21

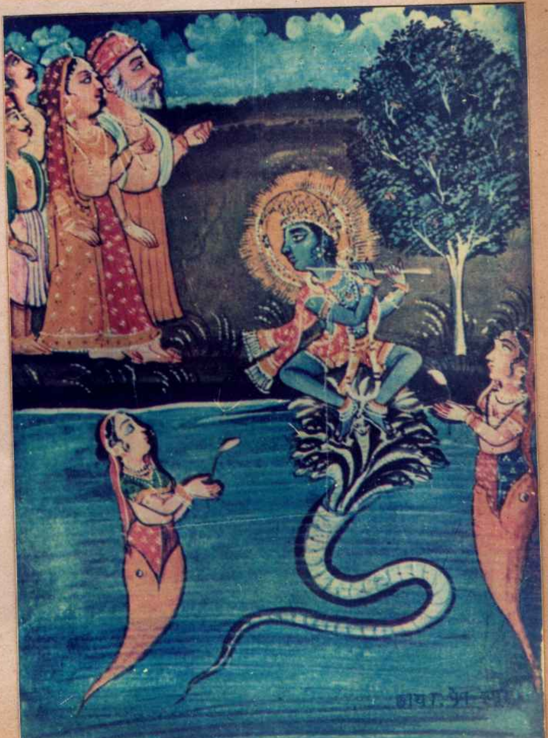

– 22

–23

– 24

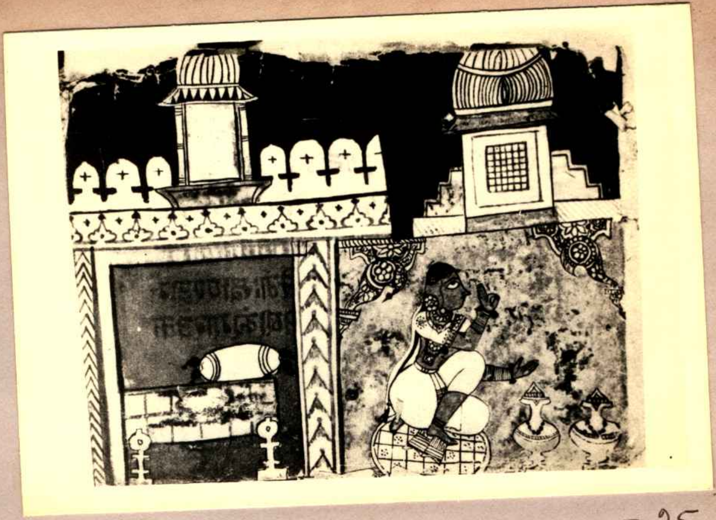

-25

-26

- 27

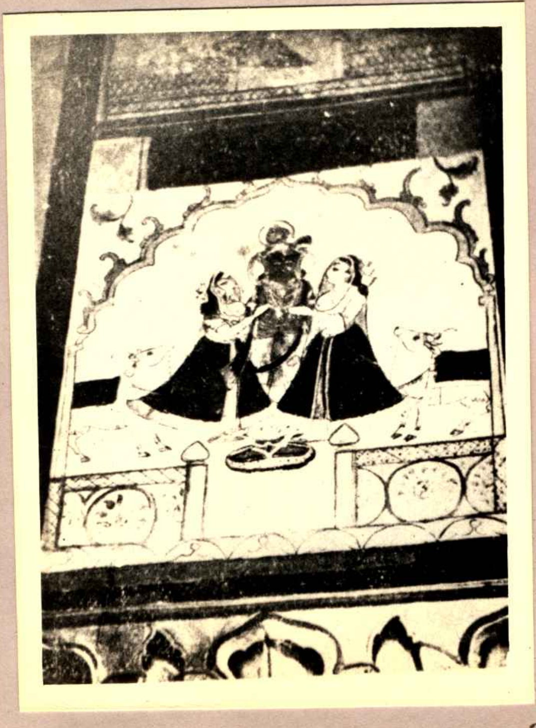

- 28

- 29

39

-31

32

-33

34

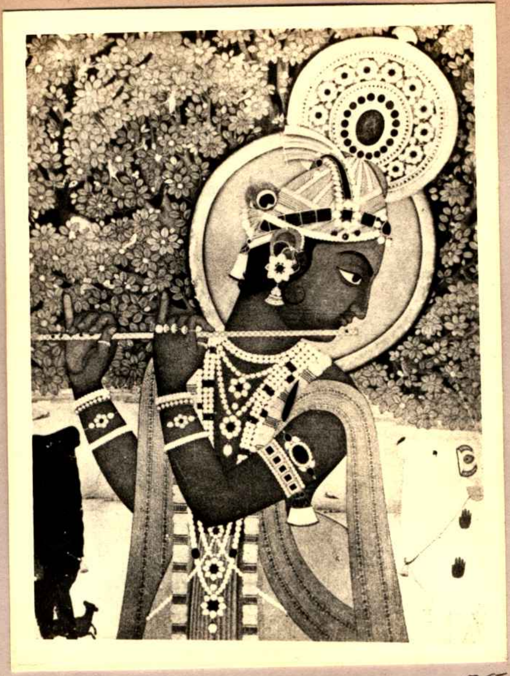

— 35

36

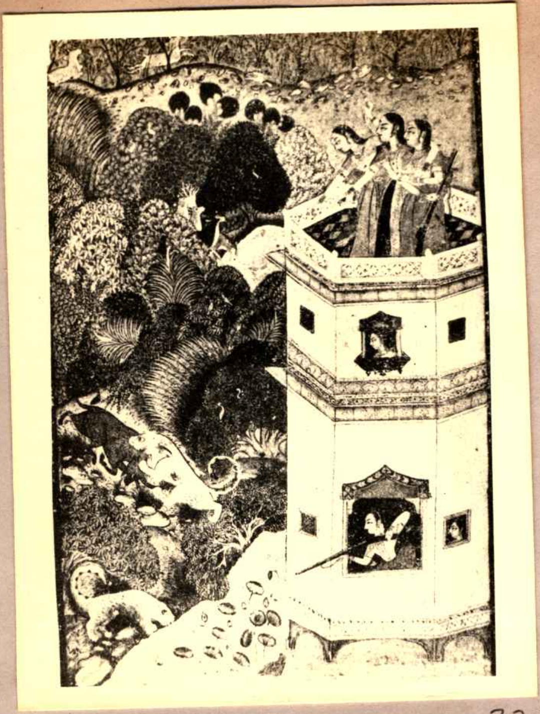

-37

-38

-39

40

- 41

- 42

– 43

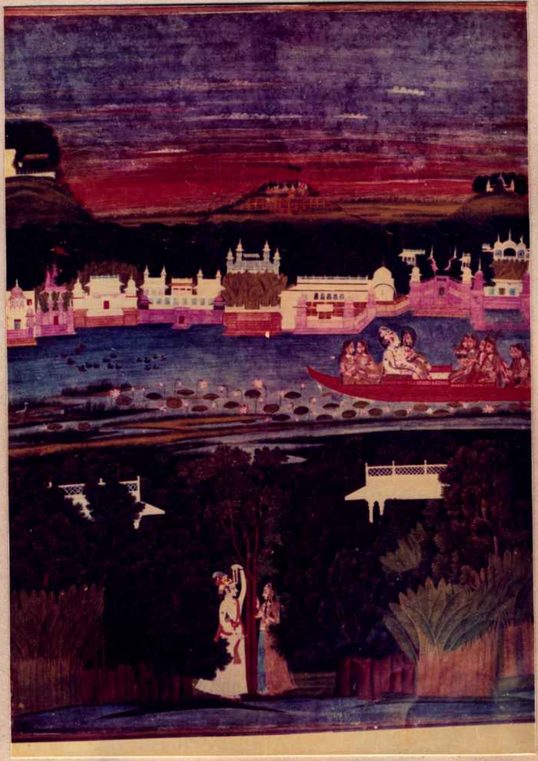

– 44

| चि.सं. | |
| --- | --- |
| ४६ | मुख पृष्ठ |
| ५० | आमुख |
| ५१ | प्रथम अध्याय |
| ५२ | द्वितीय अध्याय |
| ५३ | तृतीय अध्याय |
| ५४ | चतुर्थ अध्याय |
| ५५ | पंचम अध्याय |
| ५६ | षष्ठम अध्याय |
| ५७ | परिशिष्ट |

- 45

46

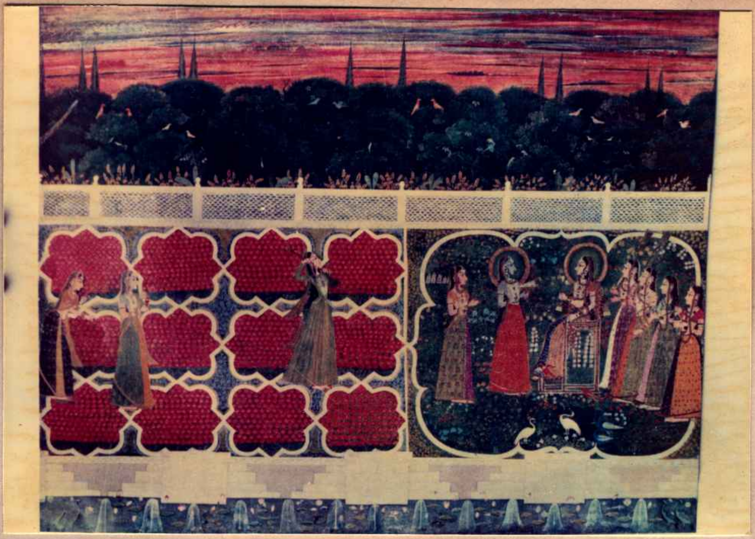

- 47

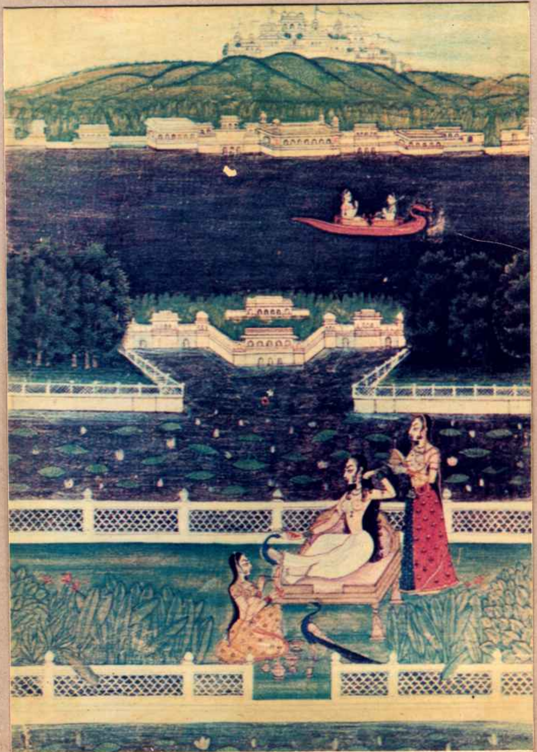

- 48

62

63

-58

- 59

-60

61

कानपुर विश्वविद्यालय, [illegible]

[illegible] विषय में [illegible] की उपाधि [illegible]

# शोध-प्रबन्ध

[illegible]

"मारवाड़ के [illegible] व्यवस्था"

निर्देशक :
डा० [illegible]
डी० लिट०
[illegible] विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोधार्थी :
[illegible]
[illegible] (शोधछात्रा)
[illegible]